5214/1

त्रैमासिक शोधपत्रिका

अनेकान्त

सम्पादक-मण्डल

डा० आ. ने. उपाध्ये

डा० प्रेमसागर जैन

यशपाल जैन

प्रकाशचन्द्र जैन

वर्ष २७

किरण १

मई १९७४

प्रकाशक

सांस्कृतिक सचिव

वीर सेवा मन्दिर २१, दरियागंज, दिल्ली

विषय-सूची

●

अनेकान्त में प्रकाशित विचारों के लिए सम्पादक मण्डल उत्तरदायी नहीं है। —व्यवस्थापक

वीर सेवा मन्दिर का अभिनव प्रकाशन

जैन लक्षणावली भाग दूसरा

चिर प्रतीक्षित जैन लक्षणावली (जैन पारिभाषिक शब्दकोश) का द्वितीय भाग भी छप चुका है। इसमें लगभग ४०० ग्रन्थों से वर्णानुक्रम के अनुसार लक्षणों का संकलन किया गया है। लक्षणों के संकलन में ग्रन्थकारों के कालक्रम को मुख्यता दी गई है। एक शब्द के अन्तर्गत जितने ग्रन्थों के लक्षण संगृहीत हैं उनमें से प्रायः एक प्राचीनतम ग्रन्थ के अनुसार प्रत्येक शब्द के अन्त में हिन्दी अनुवाद भी दे दिया गया है। जहाँ विवक्षित लक्षण में कुछ भेद या हीनाधिकता दिखी है वहा उन ग्रन्थों के निर्देश के साथ २-४ ग्रन्थों के आश्रय से भी अनुवाद किया गया है। इस भाग में केवल 'क' से 'प' तक लक्षणों का संकलन किया जा सका है। कुछ थोड़े ही समय में इसका तीसरा भाग भी प्रगट हो रहा है। प्रस्तुत ग्रन्थ संशोधकों के लिए तो विशेष उपयोगी है ही, साथ ही हिन्दी अनुवाद के रहने से वह सर्वसाधारण के लिए भी उपयोगी है। द्वितीय भाग बड़े आकार में ४१८+८+२२ पृष्ठों का है। कागज पुष्ट व जिल्द कपड़े की मजबूत है। मूल्य २५-०० रु० है। यह प्रत्येक यूनीवर्सिटी, सार्वजनिक पुस्तकालय मन्दिरों में संग्रहणीय है। ऐसे ग्रन्थ बार-बार नही छप सकते। समाप्त हो जाने पर फिर मिलना अशक्य हो जाता है।

प्राप्तिस्थान

वीर सेवा मन्दिर, २१ दरियागंज, दिल्ली-६

अनेकान्त का वार्षिक मूल्य ६) रुपया

एक किरण का मूल्य १ रुपया २५ पैसा

ॐ अर्हम्

अनेकान्त

परमागमस्य बीजं निषिद्धजात्यन्धसिन्धुरविधानम् ।
सकलनयविलसितानां विरोधमथनं नमाम्यनेकान्तम् ॥

वर्ष २७ किरण १ | वीर-सेवा-मन्दिर, २१ दरियागंज, दिल्ली-६ | मई
वीर-निर्वाण सवत् २४९९, वि० सं० २०३० | १९७४

सिद्धस्तुतिः

ये जित्वा निजकर्मकर्कशरिपून् प्राप्ताः पदं शाश्वतं,
येषां जन्मजरामृतिप्रभृतिभिः सीमापि नोल्लङ्घ्यते ।
येष्वैश्वर्यमचिन्त्यमेकमसमज्ञानादिसंयोजितं,
ते सन्तु त्रिजगच्छिखाग्रमणयः सिद्धा मम श्रेयसे ॥
सिद्धो बोधमितिः स बोध उदितो ज्ञेयप्रमाणो भवेत् ।
ज्ञेयं लोकमलोकमेव च वदन्त्यात्मेति सर्वस्थितः ।
मूषायां मदनोज्झिते हि जठरे यादृग् नभस्तादृशः ।
प्राक्कायात् किमपि प्रहीण इति वा सिद्धः सदानन्दति ॥

अर्थ—जो सिद्ध परमेष्ठी अपने कर्मरूपी कठोर शत्रुओं को जीतकर नित्यपद को प्राप्त हो चुके है; जन्म जरा एवं मरण आदि जिनकी सीमा को भी नही लांघ सकते । तथा जिनमें असाधारण ज्ञान आदि के द्वारा अचिन्त्य एवं अद्वितीय अनन्त चतुष्टय स्वरूप ऐश्वर्य का संयोग कराया गया है । ऐसे वे तीनों परमेष्ठी मेरे कल्याण के लिए होवें ॥ सिद्ध जीव अपने ज्ञान के प्रमाण हैं, और वह ज्ञान ज्ञेय के प्रमाण कहा गया है । वह ज्ञेय भी लोक एवं अलोक स्वरूप है । इसी से आत्मा सर्व व्यापक कहा जाता है । सांचे में से मैन के पृथक् हो जाने पर उसके भीतर जैसा शुद्ध आकाश शेष रह जाता है ऐसे आकार को धारण करने वाला तथा पूर्ण शरीर से कुछ हीन ऐसा वह सिद्ध परमेष्ठी सदा आनन्द का अनुभव करता है ।

तत्त्वार्थसूत्र का लघु संस्करण

अनूपचन्द न्यायतीर्थ

तत्वार्थसूत्र जैनों का एक महान् सूत्र ग्रथ है जिसकी रचना आचार्य उमास्वामि ने तीसरी शताब्दी मे की थी। यह ग्रन्थ इतना महत्वपूर्ण है कि इसका प्रचार दिगम्बर तथा श्वेताम्बर दोनो ही सम्प्रदायो मे समान रूप से है। दोनो ही इसे एकमत होकर स्वीकार करते है। इसकी लोकप्रियता का पता तो इससे ही चल सकता है कि इसकी हजारो प्रतियां आज भी ग्रन्थ भण्डारो मे उपलब्ध है तथा उनका अनेक भाषाओं मे भाष्य, टीका और भावार्थ प्रकाशित हो चुका है। इस ग्रन्थ की जितनी अधिक प्रतियाँ हस्तलिखित व प्रकाशित भंडारो मे मिलती है उतनी अन्य किसी की शायद ही मिले।

श्रद्धालु जन प्रतिदिन इसका पाठ करते है। कितनी ही महिलाएं तो आज भी इसका स्वाध्याय किये बिना भोजन तक नही करती है। खुद पढ़ती है अथवा औरों के मुख से इसका पाठ सुन लेती है। इस ग्रथ पर अनेक आचार्यो एव पडितो ने भाष्य संस्कृत टीकाए तथा भावार्थ लिखे है जो इसकी महानता का द्योतक है।

इस महान ग्रन्थ पर बड़े-बड़े आचार्यो तथा विद्वानो ने लेखनी चलाई है तथा इसके गहनतम तल मे प्रवेश कर नये तथ्यउद्घाटित किये है। भट्यकलक देव का तत्वार्थ-राजवार्तिक, पूज्यपाद की सर्वार्थसिद्धि, विद्यानन्द की श्लोकवार्तिक, योग देव की तत्वार्थ वृत्ति, प० सदासुख जी की अर्थ प्रकाशिका, श्रुत सागरी संस्कृत टीका तथा अन्य पचासों टीकाएँ एवं भाष्य उपलब्ध होते है। इसकी अनेक सुन्दर टीकाऐ लिखी गई है। यही नही इसकी कितनी ही स्वर्णाक्षरी तथा रूपान्तरी प्रतियाँ देश के विभिन्न भण्डारों मे सुरक्षित है।

आचार्य उमास्वामि ने उस ग्रथ की रचना कर गागर मे सागर भरने की कहावत चरितार्थ की है। उन्होने सारे जैन सिद्धान्त को इस ग्रंथ में सूत्र रूप मे गूथ दिया है। इस ग्रन्थ का दूसरा नाम मोक्ष शास्त्र भी है।

तत्वार्थ सूत्र इतना लोकप्रिय ग्रथ है कि इसका प्रतिदिन पाठ करना प्रत्येक श्रावक के लिए आवश्यक समझा जाता है। इसके अतिरिक्त ऐसा भी विश्वास है कि तत्वार्थ सूत्र का एक बार पाठ करने से एक उपवास का स्वत ही फल मिलता है। इसलिए महिला समाज या तो इसका स्वयं पाठ करती है या फिर अन्य किसी से इसके पाठ को सुनती है। पर्यूषण पर्व के दिनो मे भी इसके एक-एक सूत्र के अर्थों का प्रतिपादन दस दिनो तक किया जाता है। दस दिन मे दस सूत्रो का अर्थ वाचन पूरा हो जाता है।

ज्यो-ज्यो इस महान ग्रथराज का प्रचार बढ़ा लोगो ने इसे कण्ठस्थ किया तथा इसे और भी छोटे रूप मे देखना चाहा। सम्भव है इसके पाठ करने मे अधिक समय लगने के कारण ही कुछ छोटे सूत्र ग्रथो का भी निर्माण किया गया और उसमे दस के स्थान पर पाँच ही अध्याय कर दिये गये हो।

अभी राजस्थान के दिगम्बर जैन शास्त्र भडारों के ग्रथो की सूची बनाते समय कुछ ऐसे ही ग्रथ उपलब्ध हुए जिनमें तत्वार्थ सूत्र को सक्षिप्त कर दिया गया है। इसका नाम 'लघु तत्वार्थ सूत्र', 'लघु पंच सूत्र' तथा 'अर्हत प्रवचन' नाम मिलता है। उक्त तीनों ग्रथो मे ५ ही अध्यायों में दस सूत्रो का समावेश कर दिया गया है। उक्त तीनो ग्रंथो मे केवल नाम भेद है सूत्र भेद नही। प्रस्तुत लेख मे 'लघु तत्वार्थ सूत्र' पर ही प्रकाश डाला जा रहा है।

ग्रंथकर्ता अथवा रचनाकार का नामोल्लेख नही होने से यह तो नही कहा जा सकता कि इसके रचनाकार कौन है किन्तु इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि इसका रचनाकार कोई प्रतिभाशाली निर्भय आचार्य अथवा विद्वान हो सकता है जिसने परम्परागत मान्य तत्वार्थ सूत्र के दस अध्यायों को पाच ही अध्यायो मे और वह भी बहुत

कम सूत्रों में सीमित कर दिया। यह कार्य किसी अधिकारी विद्वान का ही हो सकता है। इस ग्रंथ की प्रतियां हमें निम्न भण्डारों से उपलब्ध हुई है—

लघुतत्वार्थ सूत्र—शास्त्र भंडार गोधों का मन्दिर, जयपुर। सं. ३८५ (गुटका नं० ६३)

लघु पंच सूत्र—शास्त्र भंडार मंदिर चौधरियो का, जयपुर स. ६६३।

लघु तत्वार्थ सूत्र—आमेर शास्त्र भडार, जयपुर स. (अर्हत् प्रवचन) १५७४ (गुटका)

उक्त तीनों ग्रंथो मे ५ ही अध्याय है तथा वर्ण्य विषय भी एक सा है। ग्रंथ का नाम 'लघु तत्वार्थ सूत्र' है किन्तु पुष्पिका में 'अर्हत् प्रवचन' लिखा है। 'लघु पंच सूत्र की पुष्पिका मे भी अर्हत् प्रवचन का उल्लेख है। लघु पंच सूत्र मे प्रारम्भ तथा अत में विशेष पाठ दिया है। प्रारम्भ मे "त्रैकाल्य द्रव्यषटकं········ तवाण माराहणा भणिया" तक तथा अत मे "मोक्षमार्गस्य नेतार" देकर श्रुत भक्ति का उल्लेख किया गया है, जिसे प्रति के पाठ भेद मे दिखाया गया है।

प्रस्तुत ग्रथ मे ५ अध्याय है। प्रथम अध्याय मे भगवान महावीर को नमस्कार कर अर्हत् प्रवचन सूत्र की व्याख्या करने की प्रतिज्ञा की गई है। इसमे षट्जीव काय, १२ व्रत, तीन गुप्ति, पांच समिति, दश धर्म, सोलह कारण भावना, १२ अनुप्रेक्षा तथा २२ परीषहो का वर्णन हैं। दूसरे अध्याय में ६ पदार्थ, ७ तत्व, ४ प्रमाण, ६ द्रव्य, पंचास्तिकाय, पाच ज्ञान, ४ दर्शन, १२ अंग, १४ पूव १२ तप, १२ प्रायश्चित, ४ प्रकार विनय, १० वैयावृत्य, ५ प्रकार स्वाध्याय तथा चार ध्यान और दो व्युत्सर्ग का वर्णन है।

तीसरे अध्याय मे तीन काल, छ प्रकार काल समय तीन लोक, साढे तीन द्वीप समुद्र, १५ क्षेत्र, १५ कर्म भूमि, ३४ वर्ष धर पर्वत, ३० भोग भूमिया, सप्त अधो भूमि तथा ७ नर्क, १४ कुलकर, २४ तीर्थंकर, ६ बलदेव, ६ वासुदेव, ६ प्रति वासुदेव, ११ रुद्र, १२ चक्रवर्ती, नव निधि, १४ रत्न तथा दो प्रकार के पुद्गल का वर्णन मिलता है।

चौथे अध्याय मे भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क, वैमानिक कल्पवासी तथा अहमिंद्रो के वर्णन के अतिरिक्त ५ जीवगति, आठ प्रकार आत्मसद्भाव, ५ शरीर, आठ ऋद्धि, ५ इन्द्रियां, ६ लेश्या तथा दो प्रकार के शील का वर्णन है।

५ वें अध्याय मे तीन योग, चार कषाय, तीन दोष, ५ आस्रव, ३ प्रकार संवर, २ प्रकार की निर्जरा, ५ लब्धिया, ४ प्रकार के बंध तथा ५ प्रकार के बध का कारण, त्रिविध मोक्ष मार्ग, ५ प्रकार के निर्ग्रंथ साधु, १२ अनुयोग द्वार, आठ सिद्धों के गुण, दो प्रकार सिद्ध, तथा वैराग्य का वर्णन मिलता है।

प्रस्तुत लघु तत्वार्थ सूत्र मे कुछ ऐसे भी वर्णन है जो मूल तत्वार्थ सूत्र मे नही है। तीसरे अध्याय मे साढ़े तीन द्वीप समुद्र, चौदह कुलकर, चौबीस तीर्थंकर, नौ बलदेव नौ वासुदेव, नौ प्रति वासुदेव, ग्यारह रुद्र, बारह चक्रवर्ति, नौ निधि, तथा चौदह रत्नो का उल्लेख है।

इसके अतिरिक्त तत्वार्थ सूत्र मे वर्णित अनेक अंशों को छोड भी दिया गया है— औपशमिकादि भाव, पुद्गल कर्म तथा मोक्ष तत्व का वर्णन आदि।

वैसे ग्रथाकार ने दस अध्यायो मे वर्णन करने का पूरा प्रयास किया है। प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ अध्याय मे वर्ण्य विषय को ४ अध्यायो मे तथा पांचवे से दसवें अध्याय तक के वर्णन को पाचवें अध्याय मे सम्मिलित किया गया है। तत्वार्थ सूत्र तथा लघु सूत्र के अध्यायो मे किये गये वर्णन का विवरण निम्न तालिका से स्पष्ट हो जाता है। ५ वें अध्याय में आस्रव, बध, संवर, निर्जरा का वर्णन किया गया है। सभव है मोक्ष तत्व को सिद्ध वर्णन मे ले लिया गया है। पुद्गल तत्व का कही उल्लेख नही है।

तत्वार्थ सूत्र	लघु तत्वार्थ सूत्र
प्रथम अध्याय	**प्रथम अध्याय**
ज्ञान दर्शन तथा तप आदि तत्वों का वर्णन।	१२ व्रत, छह काय के जीव गुप्ति समिति आदि का वर्णन।
द्वितीय अध्याय	**द्वितीय अध्याय**
जीव के भाव, जीव लक्षण तथा गति आदि वर्णन।	ज्ञान, दर्शन, तप, पंचास्तिकाय, अंग पूर्व आदि का वर्णन।

तृतीय अध्याय	तृतीय अध्याय
अधोलोक, मध्यलोक द्वीप, समुद्रादि तथा कर्म भूमि का वर्णन।	अधोलोक, मध्यलोक, द्वीप समुद्रादि, त्रैसठशलाका, पुरुष आदि का वर्णन।
चतुर्थ अध्याय	**चतुर्थ अध्याय**
देवगति, स्थिति, उर्ध्व लोक आदि का वर्णन।	देवगति स्थिति, ५ प्रकार शरीर, ५ इन्द्रिया, लेश्या आदि का वर्णन। स्वर्गादि का वर्णन नही है)।
पंचम अध्याय	**पंचम अध्याय**
पुद्गल द्रव्य वर्णन।	आश्रव, बंध, सवर और निर्जरा का वर्णन (मोक्ष का उल्लेख कर सिद्ध का वर्णन किया है)।
छठा—सातवां अध्याय	
आस्रव तत्व वर्णन, भेद प्रभेद तथा कारण, महाव्रतों का वर्णन।	
आठवां अध्याय	
बंध तत्व, भेद, कारण, कर्म उदय तथा सत्ता आदि।	
नौवां अध्याय	
संवर भेद कारण, निर्जरा कारण भेद आदि का वर्णन।	
दसवां अध्याय	
मोक्ष तत्व वर्णन।	

प्रस्तुत 'लघु तत्वार्थ सूत्र' को पाठकों की जानकारी हेतु पूर्ण रूप से यहां दिया जा रहा है। मूल पाठ गोंधो के मन्दिर की प्रति का है। आमेर शास्त्र भण्डार की 'लघु तत्वार्थ सूत्र (अर्हत् प्रवचन)' की प्रति का उल्लेख (क) तथा चौधरियों के मंदिर की प्रति 'लघु पंच सूत्र' का उल्लेख (ख) संकेत से किया यया है। मूल पाठ के नीचे पाठ भेद भी दे दिया गया है। जिस पाठ का मूल प्रति में उल्लेख नहीं हुआ हैं उसे □ से दिया है।

लघु तत्वार्थ सूत्र

दृष्ट[1] चराचरं येन केवलज्ञानचक्षुषा[2]।
तं प्रणम्य[3] महावीरं वेदिकान्त[4] प्रचक्षते ॥

[5]अथातोर्हत प्रवचन सूत्रं व्याख्यास्यामः। स्तद्यतो[6] तत्र इमे षट् जीवनिकाय। पच महाव्रतानि[7]। त्रिणि[8] गुणव्रतानि चत्वारि शिक्षाव्रतानि[9] तिस्त्रो गुप्त.[10]। पंच समितय[11]। दशधर्मानुभावना[12] षोडष भावना। द्वादशानुप्रेक्षा द्वाविशति परीपहा। इत्यर्हन्प्रवचने[13] प्रथमोध्यायः।

तत्र नव पदार्थाः सप्ततत्वानि चतुर्विधन्यासः सप्तनयाः[14] चत्वारि प्रमाणानि[15] षट् द्रव्याणि। पचास्ति काया। द्विविधो गुणः। पंच ज्ञानानि[16]। चत्वारि दर्शनानि द्वादशांगानि। चतुर्दश पूर्वाणि द्वि विधं[17] तप। द्वादस प्रायश्चि-

---

(ख) □ लघु पंच सूत्र। आरम्भ मे (ख) प्रति मे ही निम्न पाठ विशेष है—"ॐ नमः सिद्धेभ्यः। अथ श्री लघु सूत्र जी लिख्यते॥ त्रैकाल्य द्रव्य षटक········· तवाण माराहणा भणिया ॐ नम. सिद्धेभ्य ॥

१ (ख) दृष्टश्चरंयेन।
२ (क) भास्कर।
३ (ख) प्रणमामि महावीर।
४. (क) वेदकाति प्रचक्षते (ख) वेदिकाते प्रवक्षते।
५. (ख) अथातोह्रत प्रवचनं सूत्रं व्याख्यास्यामि। (ख) अर्हत् प्रवचने पानयामि।
६. (क) तथ्यमथा तत्र मे षट् जीवनि काया। (ख) तत्र षट् जीवनिकाया।
७. (क) (ख) विशेष पाठ—पचाणुव्रतानि।
८. (क) त्रण (ख) तीन।
९. (क) सख्या।
१०. (ख) गुप्तः।
११. (क) सुमतयः (ख) सुमितयः।
१२. (ख) दशविधो धर्मः।
१३. इति तत्वार्थ अर्हत् प्रवचने
१४ (ख) द्विविधो सप्त नया च।
१५. (ख) चत्वारि प्रमाण।
१६. विशेषपाठ (क) त्रीणि अज्ञानानि (ख) तीन ज्ञानानि
१७. (ख) द्वादशविध तपः।

त्तानि। चतुर्विधो विनयः। दश वैयावृत्यानि। पंच विधः स्वाध्यायः। चत्वारि ध्यानानि। द्विविधोः व्युत्सर्ग।

इत्यर्हत् प्रवचने द्वितीयोध्यायः[१]।

त्रिविधकालः षट् विध काल समय. त्रिविधो लोक[२] अर्द्धतृतीया द्वीप समुद्रा.[३] पंच दश क्षेत्राणि। चतुस्त्रिंशत् वर्ष धर पर्वताः पंच दश कर्म भूमयः त्रिशद् भोग[४] भूमयाः[५] सप्ताधो[६] भूमय सप्तैव महा नरका। चतुर्दश कुलकरा.। चतुर्विंशति तीर्थकरा। नव कुलदेवा नव वासुदेवाः नव प्रतिवासुदेवा। एकादश रुद्रा। द्वादशचक्रवर्तिन.। नव निधयः। चतुर्दश रत्नानि द्विविधा[७] पुद्गला।

॥ इत्यर्हत् प्रवचने तृतीयोध्याय[८] ॥

देवाश्चतुर्णिकाया। भवन वासिनो दश विधा व्यंतरा. अष्ट विधा। ज्योतिष्क पचविधा। द्विविध वैमानिका.। द्विविधा[९] कल्प स्थिति अहमिन्द्रश्चेति। पचजीव गतयः। अष्ट विध आत्म सद्भाव। पच विधं शरीर। अष्ट[१०] गुणार्द्धि. पंचेन्द्रियाणि षट् लेश्या.। द्वि विधशीलं[११]।

॥ इत्यर्हत् प्रवचने चतुर्थोध्याय.[१२] ॥

त्रिविधो योगः। चत्वारि कषायाः। त्रयो दोषाः। पंचाश्रव.। त्रिविध[१३] संवरा। द्विविध निर्जरा पंच लब्धयः। चतुर्विधो बंधः। पंच लब्धयः। चतुर्विधो बंधः। पंच विध बंध हेतव.[१४]। त्रिविधो[१५] मोक्षमार्ग.[१६]। पंचविध निर्ग्रंथाः। द्वादश सिद्धस्यानुयोग[१७] द्वाराणि- अष्टा सिद्धगुणाः। द्विविध सिद्धा। वैराग्यंचेति।

॥ इत्यर्हत् प्रवचने पचमोध्याय[१८] ॥

+ इति लघु तत्वार्थ सूत्र समाप्त.।

---

१. (ख) इति तत्वार्थ अर्हत् प्रवचने द्वितीयोध्याय ॥
२. (ख) विशेष पाठ—त्रिविध काल प्रमाण।
३. (ख) विशेष पाठ—मनुष क्षेत्र।
४. (ख) त्रिशत भागानुम।
५. (ख) विशेष पाठ—सप्तधानुत्तय।
६. (ख) सप्ताधोधा सप्त महा नरका।
७. (ख) द्विविध पुद्गल।
८. इति तत्वार्थाधिगमे मोक्ष शास्त्रे तृतीयोध्यायः।
९. (ख) आत्म सद्भावः (द्विविधा·········२ चेति के स्थान पर)।
१०. (क) अष्ट गुण सिद्धा।
११. (ख) द्विविधशील वैराग्यानि।
१२. (ख) इति तत्वार्थ अर्हत् प्रवचने चतुर्थोऽध्यायः।
१३. (ख) द्विविध सवरा।
१४. (क) विशेषपाठ पंच विधो बंध हेतव।
१५. (क) (ख) विशेष पाठ—अष्टौ कर्माणि, द्विविधो मोक्ष।
१६. (क) विशेष पाठ चत्वारि मोक्ष हेतवे।
१७. (ख) द्वादशसिद्धानुयोगनामानि।
१८. (ख) यह सूत्र ही नही है।
१९. (ख) इति तत्वार्थ अर्हत् प्रवचने पंचमोध्यायः।
++ (ख) प्रति मे निम्न अतिम पाठ विशेष है।

मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्म भूभृतां।
ज्ञातारं विश्व तत्वानां वंदे तद्गुण लब्धये ॥
पूर्वाणिक पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकल कर्म क्षयार्थं भाव पूजा बंदना स्तव समेत श्री श्रुतभक्ति कायोत्सर्ग करोम्यहं। णमो अरिहंताणं इत्यादि पठेत।
कोटिशंत द्वादस चैव कोटया।
अरहंत मा० गुरुवः पांतुवः ॥
इति श्री लघु पंच सूत्र जी संपूर्ण।

धर्म की बिक्री

श्री ठाकुर

१

देवकोटपुर की जनता को सहसा विश्वास ही नही हुआ कि चारो वेदों का पाठी और पारगामी विद्वान् सोमशर्मा जैन मुनि बनकर काफी समय पश्चात् यहाँ आया है। और जब उसने यह सुना कि मुनि सोमशर्मा अपना धर्म बेच रहे है तो उसके आश्चर्य का पार नही रहा।

सोमशर्मा को जो जानते है, उनकी धारणा थी कि वह अत्यन्त उच्चकोटि का विद्वान् है। अत्यन्त शान्त, मननशील और विचारक है। क्षणिक आवेश या भावुकता में वह कभी कोई काम नही करता। उसने स्वयं ही अपने दोनो पुत्रो—अग्निमूर्ति और वायुमूर्ति को अध्ययन कराया है। जिनकी विद्वत्ता की कीर्ति का सौरभ सारे पूर्व देश में व्याप्त है। तब जिसने अपने पैतृक धर्म को, उस धर्म को जिसका तलस्पर्शी ज्ञान उसे स्वय भी था। तिलाञ्जलि देकर जैन धर्म को अगीकार किया वह अवश्य ही जैन धर्म के सत्य का साक्षात्कार करके किया होगा और जैन मुनि बनने के बाद जिसने धर्म को बेचना चाहा, वह रहस्य से खाली तो न होगा।

इस रहस्य का उद्‌घाटन किया सोमशर्मा के मित्र विष्णुदत्त ने। वह सब कही कहता फिरता था—तुम्ही देखो न, विश्वासघात की भी हद होती है। सोमशर्मा को तो तुम जानते ही होगे, वही कर्म-काण्डी चतुर्वेदी। अरे वही तो, जिसके शतसहस्र शिष्य है। मन्त्र घोकते-घोकते जन्म बीत गया। उसने जितना हवन किया है अगर उसके धुएँ का काजल बनाया जाता तो मनो बन जाता। एक बार मेरे कहने से ही उसने व्यापार करने की सोची। मैने उसे व्यापार के निमित्त बहुत-सा धन दे दिया। वह लेकर वाल्हीक पुरुषपुर की ओर चला गया। मैने सोचा—कोई बात नही है। मेरे धन से मेरे मित्र को लाभ होता हो तो मुझे प्रसन्नता ही है। लेकिन उसका विश्वासघात तो देखो—अब मुह छिपाता फिरता है।

सुनने वाला पूछता—क्यो विष्णु मुह क्यो छिपाता फिरता है, क्या उसने वह धन वापिस नही देना चाहा ?

विष्णुदत्त उत्तर देता—अगर न देना चाहता तो मुझे सन्तोष होता, लेकिन मुझे तो आज उससे ही मालूम हुआ कि व्यापार मे उसे लाभ नहीं हुआ। बस, उसने मित्रता छोड़ दी। ऋण से मुह मोड़ लिया। अपना धर्म छोड़ दिया और नंगटा हो गया। सुनने वाले तन्मयता से सुनते। सच-झूठ से उन्हे कोई मतलब न था। उनमें से कोई एक कहता—उसके पितामहो ने भी कभी व्यापार किया है या वही करेगा। वेद घोके है और किया ही क्या है। चले थे लक्ष्मीपति बनने।

इस व्यंग्य को सुनकर एक कोई वृद्ध कह उठते। अरे सरस्वती और लक्ष्मी में तो सहज विरोध है।

तीसरा बीच में ही बोल उठा—क्यो भाई विष्णु ? तुमने उससे अपना धन नहीं माँगा ?

विष्णु उत्तेजित हो उठता और कहता—तुम भी क्या कहते हो—माँगा नहो। अरे, मै छोड़ने वाला था उसे। जो मन्त्र दृष्टा महर्षियो की वाणी को ठुकरा कर नंगटो की शरण मे जा पहुचा, उस पर मैं अपना धन छोड़ देता। आज वह इधर होकर निकला जा रहा था, मैने बीच में ही पकड लिया। मैंने तो कह दिया—मेरा धन दे दो तब छोडूगा।

वह विष्णुदत्त के पास और खिसक आए। वे एक साथ ही बोले—तब उसने क्या जवाब दिया ?

जवाब क्या देता खाक! कहने लगा—मेरे पास धन नही है। सासारिक बातो से अब मुझे कोई प्रयोजन भी नही। मेरे लडके समर्थ है। वे तुम्हारा ऋण चुका देगे। लेकिन मै इन चलताऊ बातो मे आने वाला नही था। मैने साफ कह दिया—मुझे तुम्हारे लडकों से कोई मतलब नहीं। मैंने ऋण तुम्हे दिया है। तुमसे ही मै लूगा।

एक श्रोता ने उत्सुक होकर पूछा—जब वह मुनि बन

गया है, तब धन चुकाएगा कहाँ से ? विष्णुदत्त कुटिल हास्य के साथ बोला—विष्णुदत्त कच्ची गोली कभी नही खाता। मैने देखा, धर्म परिवर्तन का प्रतिशोध लेने का इससे अच्छा अवसर फिर नही मिलेगा। अतः मैने कह दिया—तुम्हारे पास जो भी मूल्यवान वस्तु हो, उसे बेच कर तुम ऋण चुका सकते हो। अगर कुछ भी नही है तो तुम्हारा धर्म तो है ही, उसे बेच दो।

सब विस्मय से एक साथ बोल उठे—धर्म बेचकर वरुण देवता ? क्या कलिकाल आ गया ?

विष्णुदत्त खिलखिलाकर हँस पड़ा—अरे धर्म बेचकर वह कहाँ से पायेगा। आखिर आना पडेगा उसे मेरे पास ही। तब उसे फिर महर्षियो की वाणी का अनुसरण करना होगा। मेरे धन का क्या है। वह तो मै कमाता ही रहता हूं। अगर सोम जैन बना रहा तो उसके दोनो पुत्र भी जैन बने बिना न रहेंगे। कल प्रातःकाल ऋण चुकाने का वचन तो दे गया है किन्तु पायगा कहाँ से। मेरा नाम भी विष्णुदत्त नही, अगर मैंने उसे अपौरुषेय वाणी का उपासक न बना दिया।

सब विष्णुदत्त की वणिक बुद्धि की सराहना करते हुए कहने लगे—धन्य है विष्णुदत्त ! धर्म के लिए इतना बड़ा त्याग क्या कोई कर सका है। एक सोम के बिना हमारे यज्ञ अधूरे है। हमारे धर्म का तो वह आधार था। उसे लाकर एक बार वेदो की पवित्र ध्वनि से चारो दिशाओ को गुंजित करना ही चाहिए।

और यो विष्णुदत्त के मुह से निकली साधारण सी घटना देवकोटपुर की वीथियो और प्रासादो मे कहानी बन कर गूज गई। सब आकुल उत्सुकता से धर्म की बिक्री देखने को लालायित हो उठे।

× × ×

देवकोटपुर का श्मशान आज जनता के आकर्षण का केन्द्र बन रहा है। शोक के अवसर को छोड़कर नगर की जनता कभी श्मशान गई हो, ऐसा दावा तो वहाँ के वृद्ध जन भी नही करते। वह स्थान ऐसा है भी नही जिसकी अधीरता से स्पृहा की जाए। किन्तु आज ऐसी ही स्पृहा वहाँ के जन-जन में जाग उठी है। मुनिराज सोमशर्मा वहीं मिलेंगे। धर्म की बिक्री वे कैसे करते है, सबको यही देखना है। यही देखने को व्याकुलता है।

२

सूर्य देव तप्त कांचन का पिण्ड बने हुए देवकोटपुर के श्मशानमें निकले, उस काँचन की दीप्ति ने दसों दिशाओं को आलोक से भर दिया।

भूत-चुड़ैलों की भयानक किवदन्तियों ने रात्रि में जिन्हे प्रतीक्षा की कठोर आग में तपाया था, वे इस आलोक को पाकर श्मशान की ओर चल पडे।

विष्णुदत्त बहुसंख्यक जनता की श्रद्धा का मंजुल भार उठाए विशाल समूह के साथ उधर जा रहा था उसके पैरों का भार आग, वायु उठा रही थी। ऊँचा आकाश उसके मस्तक को अपनी गोद मे लिए सहला रहा था। सारे व्यक्ति उसकी अपेक्षा बौने बन गये थे। आज वह पुरातन ऋषियो की नाव की पतवार संभालने का गौरव पाने गगन मे उडा जा रहा था। सोमदेव आज उसकी कृपा का भिखारी था। सोम को सत्य-सनातन अपौरुषेय वाणी के त्यागमय ग्लानि थी। वह पश्चात्ताप से विह्वल हुआ उसके चरणों मे खडा रो रहा था। और वह ? वह अपना हाथ उठाए आश्वासन अकस्मात् उसका ध्यान भीषण जन रव से भग हो गया। सामने मुनिराज खड्गासन में ध्यानावस्थित खडे है। उसके चारों ओर रत्नोका विशाल स्तूप खड़ा है। मुनिराज के मुख के चारों ओर प्रभा का जो वर्तुल खिच गया है उससे ही मानों वह स्तूप उद्भासित है। श्मशान मे व्याप्त आलोक भी मानो उस वर्तुल से फूट-फूट कर बह रहा है। चारो ओर विशाल जनमेदिनी मुनिराज के आगे श्रद्धा का अर्घ लिए खड़ी है। विष्णुदत्त अवाक् देखता रहा। सारी इन्द्रियां मानों निश्चेतन हो गईं। ज्ञान-तन्तु मानों वर्फ बन गए। उसे जब चैतन्य आया तो उसके मन मे एक ही प्रश्न चिन्ह था—रत्नों की इतनी बड़ी राशि वह कहाँ से पा गया।

मुनिराज थे ध्यानस्थ, अचल अडिग मौन।
किन्तु तभी उसके प्रश्न का उत्तर आया॥

गुरु गम्भीर निर्घोष दिशाओ मे व्याप्त हो गया। मुनिराज अपना धर्म बेच रहे थे। किन्तु जैन धर्म की अनन्त सत्य का मूल्य चुका सके, ऐसी शक्ति किसमें है। किन्तु अपनी भक्ति की यह ब्याज देकर मैं आज धन्य हो गई। मुनिराज के चरणो मे इसे निवेदन करके मैं मानों

जैन संस्कृति

प्रेमचन्द जैन एम. ए.

भारत की अनेकविध संस्कृतियों में जैन संस्कृति एक प्रधान एवं गौरव पूर्ण संस्कृति है। समता प्रधान होने के कारण यह सस्कृति श्रमण संस्कृति कहलाती है।

जिसके मन में समता की सुर-सरिता प्रवाहित होती है वह न किसी पर द्वेष करता है और न किसी पर राग ही करता है अपितु अपनी मन. स्थिति को सदा सम रखता है, इस कारण वह श्रमण कहलाता है[1]।

श्रमण वह है जो पुरस्कार के पुष्पों को पाकर प्रसन्न नही होता अपितु सदा मान और अपमान में सम रहता है[2]।

आगम साहित्य में अनेक स्थलो पर समय के साथ समता का सम्बन्ध जोड़कर यह बताया गया है कि समता *ही जैन संस्कृति (श्रमण संस्कृति) का प्राण है*[3]।

जैन संस्कृति की साधना समता की साधना है। समता, समभाव, समदृष्टि एव साम्यभाव ये सभी जैन संस्कृति के मूल तत्व है। जैन परम्परा मे सामायिक की साधना को मुख्य स्थान दिया गया है। श्रमण हो श्रावक हो, श्रमणी हो या श्राविका हो, सभी के लिए सामायिक की साधना आवश्यक मानी गई है। षडआवश्यक मे भी सामायिक की साधना को प्रथम स्थान दिया गया है।

समता के अनेक रूप है। आचार को समता अहिंसा विचारो की समता अनेकान्त है। समाज की समता अप-रिग्रह है. और भाषा की समता स्याद्वाद है। जैन संस्कृति का सम्पूर्ण आचार विचार समता पर आधारित (आधृत) है। जिस आचार और विचार में समता का अभाव है वह आचार विचार जैन संस्कृति को कभी मान्य नही रहा।

समता किसी भौतिक तत्व का नाम नही है। मानव मन की कोमल वृत्ति ही समता तथा क्रूर वृति ही विषमता

---

१. नत्थि य सि कोई वेसो पिओ य सव्वेसु चेव जीयेसु।
एएण होई समणो ऐसो अन्नोऽवि पज्जावो॥
दशवैकालिक निर्युक्ति गा. १५५

२. वो सम्मणो जई सुमणो भावेण य जइ न होइ पावमणो।
समणे य जणो य जणे समो य माणावमाणेसु॥ वही १५६

३. न वि मुण्डिएण समणो न ओंकारेण बम्भणो।
न मुणी रयणवासेण, कुसचीरेण न तावसो।
समणाए समणो होई बम्मचेरेण बम्भणो।
नाणेण य मुणी होई, तवेणं होई तावसो॥

ऋण पा गई। जिसका जो ऋण मुनिराज पर हो, वह इसमे से यथेच्छ ले लो मैं यही निवेदन करने आई हूं। विष्णुदत्त ने देखा—एक रूपवती नारी पारिजात के पुष्पो के आभरण पहिने अपनी दीप्ति से प्रभा बरसाती मुनि-राज के चरणो मे नतमस्तक हो रही है। उसके पैर धरती पर नही टिक रहे, उसके पलक नही गिरते, उसकी छाया नहीं पड़ रही।

रूप की देवी उठी और देखते-देखते अन्तर्धान हो गई।

विष्णुदत्त विस्मयाभिभूत सा खड़ा देखता रहा। उसके कानो मे एक ही वाक्य गूज रहा था—जैन धर्म का मूल्य चुका सके, ऐसी शक्ति किसमे है।

अकस्मात् ही वह गुनगुना उठा। निश्चय ही किसी में नही है। इस अमूल्य धन का मोल क्या ?

सत्य का प्रकाश धीरे-धीरे उसके अन्तर मे भर गया। वह तब जागा जब उसने अपने को मुनिराज के चरणो मे पाया। वही देवी जहां प्रणिपात कर रही थी। वह कह रहा—भगवन् क्षमा करो! इस अमूल्य धन को आप मुझे भी दे दे। मुझे भी अपना जैसा बना लें। मुझे भी इस अनन्त सत्य का वरदान दे दें।

जनभेदिनी जयघोषो से आकाश के पर्दे फाड़ रही थी।

मुनिराज तब भी खडे थे निर्लेप, निस्पृह, अचल, मौन।

है, प्रेम समता है वैर विषमता है विष है। समता जीवन है और विषमता मरण है। समता धर्म है और विषमता अधर्म है। समता एक दिव्य प्रकाश है और विषमता घोर अन्धकार है। समता ही जैन संस्कृति के विचारो का निचोड है।

आचार की समता का नाम ही वस्तुत अहिंसा है। समता, मैत्री, प्रेम, अहिंसा ये सभी समता के अपर नाम हैं। अहिंसा जैन संस्कृति के आचार एव विचार का केन्द्र है अन्य सभी आचार और विचार उसके आस पास घूमते है। जैन संस्कृति मे अहिंसा का जितना सूक्ष्म विवेचन और विशद विश्लेषण हुआ है उतना विश्व की किसी संस्कृति मे नहीं हुआ। जैन संस्कृति के कण कण मे अहिंसा की भावना परिव्याप्त है। जैन संस्कृति की प्रत्येक क्रिया अहिंसा-मूलक है। खान पान, रहन-सहन, बोल-चाल आदि सभी मे अहिंसा को प्रधानता दी गई है। विचार वाणी और कर्म सभी मे अहिंसा का स्वर मुखरित होता है। यदि जैन संस्कृति के पास अहिंसा की अनमोल निधि है तो सभी कुछ है और वह निधि नही तो निश्चय ही कुछ भी नही है। आज के अणुयुग मे सास लेने वाली मानव जाति के लिए अहिंसा ही प्राण की आशा है। अहिंसा के अभाव मे न व्यक्ति सुरक्षित रह सकता है, न परिवार पनप सकता है और न समाज तथा राष्ट्र ही अक्षुण्ण रह सकता है। अणुयुग मे अणुशक्ति से सत्रस्त मानव जाति को उबारने वाली कोई शक्ति है, तो वह अहिंसा है। आज अहिंसा के आचरण की मानव समाज को महती एव नितान्त आवश्यकता है। अहिंसा ही मानव जाति के लिए मगलमय वरदान है आचार विषयक अहिंसा का यह उत्कर्ष जैन संस्कृति के अतिरिक्त कही भी नही निहारा जा सकता अहिंसा को व्यवहारिक जीवन मे ढाल देना ही संस्कृति की सच्ची-साधना है।

जैसे वेदान्त दर्शन का केन्द्र बिन्दु अद्वैतवाद और मायावाद है, साख्य दर्शन का मूल प्रकृति और पुरुष का विवेकवाद है, बौद्ध दर्शन का चिन्तन विज्ञानवाद और शून्यवाद है वैसे ही जैन संस्कृति का आधार अहिंसा और अनेकान्तभाव है। अहिंसा के सम्बन्ध मे इतर दर्शनो ने भी पर्याप्त मात्रा मे लिखा है उसे अन्य सिद्धान्तो की तरह प्रमुख स्थान भी दिया है। तथापि यह स्पष्ट है कि उन्होंने जैनों की तरह सूक्ष्म विश्लेषण व गम्भीर चिन्तन नही किया है। जैन संस्कृति के विधायको ने अहिंसा पर गहराई से विवेचन किया है। उन्होने अहिंसा की एकांगी और सकुचित व्याख्या न कर सर्वांगपूर्ण व्याख्या कीं है। हिंसा का अर्थ केवल शारीरिक हिंसा ही नही अपितु किसी को मन और वचन से पीडा पहुचाना भी हिंसा माना गया है।

जैनो मे प्राणी (जीव) की परिभाषा केवल मनुष्य और पशु तक ही सीमित नही है, अपितु उसकी परिधि एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय तक है। कीड़ो से लेकर कुजर तक ही नही परन्तु पृथ्वीकाय, अपकाय, तेजस्काय, वायुकाय और वनस्पतिकाय के सम्बन्ध मे भी गम्भीर किया गया है।

अहिंसा के सम्बन्ध मे प्रबलतम युक्ति यह है कि सभी जीव जीना चाहते है कोई भी मरना नही चाहता अत. किसी भी प्राणी का बध न करो[1]।

जिस प्रकार हमे जीवन प्रिय मरण अप्रिय है, सुख प्रिय है दुख अप्रिय है, अनुकूलता प्रिय है प्रतिकूलता अप्रिय है, स्वतन्त्रता प्रिय है परतन्त्रता अप्रिय है, लाभ प्रिय है अलाभ अप्रिय है उसी प्रकार अन्य जीवो को भी जीवनादि प्रिय है और मरणादि अप्रिय है। यह आत्मोपम्य दृष्टि ही अहिंसा का मूलाधार है। प्रत्येक आत्मा तात्विक दृष्टि से समान है अतः मन, वचन और काया से किसी सन्ताप पहुचाना ही हिंसा है।

जैन संस्कृति ने जीवन की प्रत्येक क्रिया को अहिंसा के गज से नापा है। जो क्रिया अहिंसा मूलक है वह सम्यक है, और जो हिंसा मूलक है वह मिथ्या है। मिथ्या क्रिया कर्म बन्धन का कारण है, और सम्यक क्रिया कर्म क्षय का कारण है। यही कारण है कि संस्कृति मे धार्मिक विधि विधानो मे ही अहिंसा को स्थान नही दिया अपितु जीवन के दैनिक व्यवहार मे भी अहिंसा का सुन्दर विधान किया है। अहिंसा माता के समान सभी की हितकारिणी है

१. सव्वे जीवा इच्छन्ति, जीविउं न मरिज्जिउं।
तम्हा पाणिवह घोरं णिग्गन्था वज्जयंतिण॥
दशवैकालिक ६।१०

हिंसा के बढ़ते हुए दिन दूने रात चौगुने साधनों को देख आज मानवता कराह रही है, भय से कांप रही है। विश्व के भाग्य विधाता विचिन्तित है। ऐसी विकट वेला मे अहिंसा माता ही विनाश से बचा सकती है सम्भवतः उतनी पहले कभी नही रही।

इस समय व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र और सम्पूर्ण विश्व को अहिंसा की अनिवार्य आवश्यकता है। अहिंसा के अभाव मे न व्यक्ति जिन्दा रह सकता है और न परिवार, समाज और राष्ट्र ही पनप सकता है। अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखने के लिए अहिंसा ही एक मात्र उपाय है। व्यक्ति, परिवार, समाज और देश के सुख-शान्ति की आधारशिला अहिंसा, मैत्री और समता है। महावीर ने कहा है कि जो दूसरो को अभय देता है वह स्वय भी अभय हो जाता है। अभय की भव्य भावना से ही अहिंसा, मैत्री और समता का जन्म होता है। मेरा सुख सभी का सुख है और मेरा दुख सभी का दुख है यह अहिंसा का नीति मार्ग, व्यवहार पक्ष है।

विचारात्मक अहिंसा का ही अपर नाम अनेकान्त है। अनेकान्त का अर्थ है बौद्धिक अहिंसा। दूसरे के दृष्टि-कोण को समझनेकी भावना एवं विचार को अनेकान्त दर्शन कहते है। जब तक दूसरो के दृष्टिकोण के प्रति सहिष्णुता व आदर भावना न होगी तब तक अहिंसा की पूर्णता कथमपि सम्भव नही। सघर्ष का मूल कारण आग्रह है। आग्रह मे अपने विचारो के प्रति राग नही होने से वह उसे श्रेष्ठ समझता है और दूसरों के विचारो के प्रति द्वेष होने से उसे कनिष्ठ समझता है। एकान्त दृष्टि मे सदा आग्रह से असहिष्णुता का जन्म होता है और असहिष्णुता से ही हिंसा और संघर्ष उत्पन्न होते है। अनेकान्त दृष्टि में आग्रह का अभाव होने से हिंसा और संघर्ष का भी उसमें अभाव होता है विचारों की यह अहिंसा ही अने-कान्त है।

स्याद्वाद के भाषा प्रयोग मे अपना दृष्टिकोण बताते हुए भी अन्य दृष्टिकोणो के अस्तित्व की स्वीकृति रहती है। प्रत्येक पदार्थ अनन्त धर्म वाला है तब तक धर्म का कथन करने वाली भाषा एकांश से सत्य हो सकती है सर्वांश से नही। अपने दृष्टिकोण के अतिरिक्त अन्य के दृष्टिकोणो की स्वीकृति वह 'स्यात्' वह शब्द से देता है। स्यात् शब्द का अर्थ होता है वस्तु का वही रूप नहीं जो हम कह रहे है। वस्तु अनन्त—धर्मात्मक हैं। हम जो कह रहे हैं उसके अतिरिक्त भी अनेक धर्म हैं, यह सूचना स्यात् शब्द का अर्थ है सम्भावना और शायद सम्भावना मे सन्देहवाद को स्थान है जबकि जैन दर्शन मे सन्देहवाद को स्थान नहीं है किन्तु एक निश्चित दृष्टिकोण है।

वाद का अर्थ है सिद्धान्त या मन्तव्य। दोनो शब्दों को मिलाकर अर्थ हुआ—सापेक्ष सिद्धान्त, अर्थात् वह सिद्धान्त जो किसी अपेक्षा को लेकर चलता है और विभिन्न विचारों का एकीकरण करता हो अनेकान्तवाद, अपेक्षावाद, कथचिद्वाद और स्याद्वाद इन सबका एक ही अर्थ है।

स्याद्वाद की परिभाषा करते हुए कहा गया है— अपने या दूसरो के विचारों, मन्तव्यों, वचनों तथा कार्यों मे तन्मूलक विभिन्न अपेक्षा या दृष्टिकोण का ध्यान रखना ही स्याद्वाद है। इस प्रकार स्याद्वाद का अर्थ हुआ विभिन्न दृष्टिकोणों का बिना किसी पक्षपात के तटस्थ बुद्धि से समन्वय करना। जो कार्य एक न्यायाधीश का होता है, यही कार्य विभिन्न विचारो के समन्वय के लिए स्याद्वाद का है, जैसे न्यायाधीशवादी एवं प्रतिवादी के बयानो को सुनकर जाच-पड़ताल कर निष्पक्ष न्याय देता है, वैसे ही स्याद्वाद भी विभिन्न विचारो मे सम-न्वय करता है।

अनेकान्त का दर्शन अथवा प्रतिपादन ही अनेकान्त-वादी दृष्टि है। जैन दर्शन का मन्तव्य है कि विश्व की प्रत्येक वस्तु अनेकान्त रूप है। बौद्धो के 'सर्व क्षणिकम्', साख्यो के 'सर्वं नित्यम्,, वेदान्तियों के 'सर्व सत्' और शून्यवादियों के सर्वम् असत् की तरह जैनों का सिद्धान्त 'सर्वमैव अनेकान्तात्मकम्' है। वस्तु केवल क्षणिक या केवल नित्य या केवल सत् या केवल असत् ही नही है। अपितु वह क्षणिक और नित्य, सत् और असत् दोनों मे विरोधी धर्मो को लिए हुए है। ऐसी कोई भी वस्तु नही है। जिसमें अनेकान्त न हो। उदाहरणार्थ—एक ही पुरुष एक साथ भिन्न भिन्न पुरुषो की अपेक्षा, पिता, पुत्र, मामा, भानजा, दादा, नाती, बड़ा छोटा आदि व्यवहृत होता है। पुत्रों की अपेक्षा पिता अपने पिता की अपेक्षा पुत्र, भानजे का मामा, अपने मामा की अपेक्षा भानजा,

नाती की अपेक्षा दादा, दादा की अपेक्षा नाती, छोटे की अपेक्षा बड़ा और बड़े की अपेक्षा छोटा आदि कहा जाता है। इस तरह उसमें पितृत्व, अपितृत्व, पुत्रत्व, अपुत्रत्व, मातुलत्व-अमातुलत्व, भागिनेयत्व-अभागिनेयत्व आदि अनेक धर्म युगल रूप में उस पुरुष में उपलब्ध है या वह उनका समुदाय है। ये सभी धर्म पुद्गल इसमें स्वरूपता है कल्पित नहीं। क्योंकि उनसे तद् तद् व्यहार रूप क्रिया होती है।

अमृतचन्द्र लिखते है—जैसे ग्वालिन मन्थन करने की रस्सी के दो छोरो मे से कभी एक ओर कभी दूसरे को अपनी ओर खेंचती है, उसी प्रकार अनेकान्त पद्धति भी कभी एक धर्म को प्रमुखता देती है और कभी दूसरे धर्म को। वक्ता जब वचन द्वारा वस्तु के विवक्षित धर्म को लेकर इसे कहता है तो वह वस्तु उस धर्म वाली ही नही है, उसमे उस समय अन्य धर्म भी विद्यमान है जिनका उसे उस समय विवक्षा नही है। "अग्नि दाहक है", कहने पर अग्नि की पाचकता, प्रकाशकता आदि शक्तियों—स्वभावो का लोप नही होता अपितु अविवक्षित होने मे वे गौण हो जाते है।

एकान्तवादी का मन्तव्य है कि जो वस्तु सत् है, वह कभी भी असत् नही हो सकती, जो नित्य है वह कभी भी अनित्य नही हो सकती। इस प्रश्न के समाधान मे आचार्य समन्तभद्र ने कहा है—विश्व की प्रत्येक वस्तु स्वचतुष्टय की अपेक्षा लिए है और चतुष्टय की अपेक्षा असत् है। इस प्रकार की अव्यवस्था के अभाव मे किसी भी तत्व की सुन्दर व्यवस्था सम्भव नही है। प्रत्येक वस्तु का अपना निजी स्वरूप होता है जो अन्य के स्वरूप से भिन्न होता है। अपना द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव है पर वह चतुष्टय है। जैसे एक घड़ा स्वद्रव्य (मृत्तिका) की अपेक्षा से है, पर क्षेत्र की अपेक्षा से नही है, स्वकाल जिसमे वह है कि अपेक्षा से घट का सद्भाव है पर काल की अपेक्षा से असद्भाव है। अपने स्वभाव की अपेक्षा से घट का अस्वित्व है, पर भाव की अपेक्षा से अस्तित्व नही है घट की तरह अन्य सभी वस्तुओं के सम्बन्ध मे यही समझना चाहिए। जब एकान्त का कदाग्रह त्याग कर अनेकान्त का आश्रय लिया जाता है तभी सत्य तथ्य का सही निर्णय होता है।

इस अनेकान्त को प्रकट करने वाला एक दृष्टान्त और प्रस्तुत है—एक जगह छह अन्धो ने एक हाथी को पकड कर अपने अपने स्पर्शानुभव से उसके स्वरूप की अवधारणा की। जिसने हाथी के पैर पकड़े उसने कहा कि हाथी खम्भे जैसा है जिसने पूछ पकड़ी वह चिल्लाकर कहने लगा कि हाथी रस्से जैसा है जिसने उसकी छाती पकडी वह बोला हाथी तो दिवाल जैसा है। चौथा बोला नही हाथी तो खूटी जैसा है, जिसने हाथी के दांत पकड़े थे। पाचवां कहने लगा हाथी मूसल की तरह है, इसने उसकी सूंड ही पकडी थी। छठा बोला सब तुम झूठ बोलते हो, हाथी तो सूप जैसा है इसने उसके कान पकडे थे उसी बीच एक आदमी आया जिसने अपनी आखो से हाथी को देखा था बोला भाई ! तुम सब ठीक ही कहते हो, अपनी अपनी अपेक्षा तुम सब सही हो, पर इतर को गलत मत कहो, सबको मिलाने से ही हाथी बनता है इतर का निराकरण करने पर तो हाथी का स्वरूप अपूर्ण रहेगा। स्वाद्वाद कहता है कि अनित्यवाद, नित्यवाद, सद्वाद और असद्वाद आदि वस्तु के एक एक अश के प्रकाशन है और यह तथ्य है कि अनित्य, नित्य, सद्-असद् आदि पुद्गल धर्मो का उसमे सद्भाव है।

समता का भव्य भवन अहिसा और अनेकान्त की भित्ति पर आधारित है जब जीवन मे अहिसा अनेकान्त मूर्त रूप धारण करता है तब जीवन मे समता का मधुर सगीत झंकृत होने लगता है। जैन सस्कृति का सार यही है कि जीवन मे अधिकाधिक समता को अपनाया जाय और 'तामस' विषम भाव छोडा जाय तामस समता का ही तो उल्टा रूप है। समता जैन सस्कृति की साधना का प्राण है और आगम साहित्य का नवजीवन है। भारत के उत्तर मे जिस प्रकार चांदनी की तरह चमचमाता हुआ हिमगिरि का उत्तुग शिखर शोभायमान है वैसे ही जैन सस्कृति के चिन्तन मनन के पीछे समत्व योग का दिव्य और भव्य शिखर चमक रहा है जैन संस्कृति का यह गम्भीर उद्घोष रहा है कि समता के अभाव मे आध्यात्मिक उत्कर्ष नही हो सकता और न जीवन मे शान्ति ही प्राप्त हो सकती है। भले ही कोई साधक उग्र तपश्चरण करले, भले ही उसकी वाणी मे द्वादशांगी का स्वर मुखरित हो, यदि उसके आचरण मे, वाणी में, और मन मे समता की सुर-सरिता प्रवाहित नही हो रही है, तो उसका समस्त क्रिया काण्ड और आगमों का परिज्ञान प्राण रहित ककाल की तरह है। आत्म विकास की दृष्टि से उसका कुछ भी मूल्य नही है। आत्मविकास की दृष्टि से जीवन के कण कण मे, मन के अणु अणु मे समता की ज्योति जगाना आवश्यक है। साध्य भाव को जीवन मे साकार रूप देना ही जैन संस्कृति की आत्मा है।

जैन मत में मूर्ति पूजा की प्राचीनता एवं विकास

शिवकुमार नामदेव

जैन मूर्तिया दो प्रकार की बताई गई है कृत्रिम एव अकृत्रिम। अकृत्रिम प्रतिमायें सारे लोकों मे फैली हुई है एव कृत्रिम प्रतिमायें मनुष्य निर्मित है। इस अल्पकाल मे सबसे पहले ऋषभदेव के पुत्र प्रथम सम्राट भरत चक्रवर्ती ने जिन प्रतिमाओ की स्थापना की थी। जिस समय ऋषभदेव सर्वज्ञ होकर इस धरातल को पवित्र करने लगे तो उस समय भरत चक्रवर्ती ने तोरणो और घटाओं पर जिन प्रतिमाये ही बनवाकर भगवान का स्मारक कायम किया था[1]। उपरान्त उन्होने ही भगवान के निर्वाणधाम कैलास पर्वत पर तीर्थकरो की चौबीस स्वर्णमयी प्रमतिये निर्मापित कराई थी[2]।

जैन मत दो प्रमुख पंथो पे विभाजित है—श्वेताम्बर एवं दिगम्बर। श्वेताबर (जिसके देवता श्वेत अबर धारण करते हों) सदैव ही अपनी प्रतिमाओ को वस्त्र आभूषण से सुसज्जित रखते थे। ये पुष्पादि द्रव्यों का प्रयोग करते है तथा अपने देवालयों मे दीपक भी नही जलाते इसके विपरीत दिगम्बर (दिक्+अम्बर) शाखा की मूर्तियाँ नग्न रहती थीं। ये अक्षत आदि चढ़ाते है तथा मूर्ति के स्नान मे प्रचुर जल का प्रयोग करते है एव मन्दिरों मे दीपक जलाते है।

वैदिक कालीन मूर्तिया अभी तक उपलब्ध नही हुई है। भारत की सबसे प्राचीनतम मूर्तिया सिधु की घाटी मे मोहनजोदड़ो एव हड़प्पा आदि स्थलों से प्राप्त हुई है। उस सभ्यता मे प्राप्त मोहनजोदड़ो के पशुपति को शैवमत का देव मानें तो हड़प्पा से प्राप्त नग्न धड को दिगम्बर की खंडित मूर्ति मानने मे कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

सिन्धु सभ्यता मे पशुओ में एक विशाल स्कंध युक्त वृषभ का अकन तथा एक जटाधारी का अकन है। वृषभ तथा जटाजूट के कारण इसे प्रथम जैन तीर्थकर आदिनाथ का अनुमान कर सकते है[3]।

जैनकला मे स्थानक मूर्ति को कायोत्सर्ग एव आसवन मूर्ति को समवशरण कहते है। हड़प्पा मे प्राप्त मुद्रा (सील) क्रमाक ३००, ३१७ एव ३१८ मे अकित प्रतिमा अजानुलम्बित, बाहुद्वय सहित कायोत्सर्ग मुद्रा मे है[4]। हड़प्पा के अतिरिक्त उपरोक्त साक्ष्य हमे मोहनजोदड़ो से भी प्राप्त होते है[5]।

मथुरा और उदयगिरि खण्डगिरि का पुरातत्व भी जिन मूर्तियो के प्राचीन अस्तित्व को सिद्ध कर सकते है जैन स्तूप पर मूर्तिया अंकित रहती थी। ईसा की पहली शताब्दी मे मथुरा मे वह प्राचीन स्तूप विद्यमान था जो इस काल मे देव निर्मित समझा जाता था और जिसे बुल्हर तथा स्मिथ ने भगवान पार्श्वनाथ के काल (ई. पू. ८ वी सदी का बताया था[6]।

नदिवर्धन जैन धर्म का अनुयायी था। उसने मगध तक अपने साम्राज्य का विस्तार किया था एवं कलिग को विजितकर अनेक विधियों के साथ उसने कलिग की जिन मूर्ति को भी ले आया था हाथीगुम्फा अभिलेख से ज्ञात होता है कि एक नद राजा कलिग मे अग्रजिन की

१. आदि पुराण १ - ८।

२. श्री कामताप्रसाद जैन— जैन सिद्धान्त भास्कर १६३२ पृ. ८।

३. सरबाइबल आफ दि हड़प्पा कल्चर—टी. जी अर्मूसन पृ. ५५।

४. वत्स एम. एस.—हड़प्पा, ग्रथ १ पृ. १२६-३० फुलक ६३।

५. वही पृ. २८, मार्शल—मोहनजोदड़ो एन्ड इन्डस वैली सिविलिजेशन ग्रथ १, फुलक १२ आकृति—१३, १४, १८, १६, २२।

६. जैन स्तूप एन्ड अदर एंटीक्वीसाज आफ मथुरा पृ. १३।

प्रतिमा को मगध ले गया था उसे कलिग चक्रवर्ती गेल खारवेल वापस कलिग ले आये थे[७]।

उदयगिरि एवं खन्डगिरि (भुबनेश्वर) के अतिरिक्त गणेश गुम्फा, हाथीगुम्फा, मचपुरी, अनतगुम्फा आदि के अनुसधान से जैन मूर्तियाँ प्राप्त हुई है। अभिषेक लक्ष्मी जैनो द्वारा अपनाया गया प्रसिद्ध मोटिफ था। जो उदय गिरि के रानीगुम्फा तोरण पर मिलता है।

भारतीय कला का क्रमबद्ध इतिहास मौर्यकाल मे प्राप्त होता है। अशोक के पौत्र सम्प्रति ने जैन धर्म को ग्रहण कर उसका प्रसार किया था। इस काल मे जैन कला के अवशेष उदयगिरि गुफाओ, बिहार मे पटना के आसपास तथा मथुरा आदि मे प्राप्त हुए है। खारवेल द्वारा कलिग जिन मूर्ति लाने का वर्णन किया जा चुका है।

कुषाणकालीन अनेक जैन मूर्तिया प्राप्त हुई है इस काल के कलात्मक उदाहरण मथुरा के ककाली टीले की खुदाई प्राप्त मे हुए है। उनमे तीर्थकरो की प्रतिमाये एव आयागपट्ट प्रमुख है। अयागपट्ट पूजा निमित गोलाकार शिलापट्ट है जिसके मध्य मे तीर्थंकर प्रतिमा एव चारो ओर आठ जैन मत के मागलिक चिन्ह रहते है।

कुषाणकाल में प्रधानत. तीर्थकरो की प्रतिमायें खुदी है जो कायोत्सर्ग अथवा समवशरण मुद्रा मे है। इस काल मे ऋषभनाथ, नेमिनाथ तथा महावीर की मूर्तिता समवशरण मुद्रा मे तथा शेष कायोत्सर्ग मुद्रा मे प्राप्त होती है।

गुप्तकाल जिसे भारतीय इतिहास का स्वर्णयुग कहा जाता है मे कला प्रौढता को प्राप्त हो चुकी थी गुप्तकालीन जैन प्रतिमाये सुन्दरता कलात्मक दृष्टि से उत्तम है अधोवस्त्र तथा श्रीवत्स ये विशेषतायें गुप्तकाल में परिलक्षित होती है। कुमार गुप्त के एक लेख मे पार्श्व नाथ मूर्ति के निर्माण का तथा स्कदगुप्त के लेख में जैन पंचतीर्थी प्रतिमा की स्थापना का वर्णन है। जो किसी भद्र द्वारा निर्मित कराई गई थी। स्तम्भो पर उत्कीर्ण आकृति में आदिनाथ, शातिनाथ, पार्श्वनाथ एवं महावीर है[८]।

चन्द्रगुप्त द्वितीय काल की एक मूर्ति वैभर पहाड़ी से प्राप्त हुई थी जिस पर चन्द्र II का का लेख अंकित है: अभी कुछ पूर्व विदिशा के निकट एक ग्राम से गुप्त नरेश रामगुप्त के काल की लेख युक्त जैन तीर्थकरो चन्द्रगुप्त आदि की प्रतिमायें प्राप्त हुई है। सीरा पहाड की जैन गुफायें तथा उनमे उत्कीर्ण मनोहर तीर्थकर प्रतिमाओं का निर्माण इसी काल मे हुआ यहा से प्राप्त भगवान पार्श्वनाथ की मूर्ति सप्तफणो से युक्त पद्मासन मे बैठे है भारतकला भवन काशी मे सग्रहीत राजघाट से प्राप्त धरमेन्द्र–पद्मावती सहित पार्श्वनाथ की मूर्ति कला की दृष्टि से सुन्दर है।

उत्तर गुप्त काल मे जैन कला के अनेक केन्द्र थे अतएव उस काल की प्रतिमाये पर्याप्त सख्या मे प्राप्त होती है। तात्रिक भावनाओ ने कला को प्रभावित किया शास्त्रीय नियमो मे बद्ध होने के कारण जैन कलाकारो को स्वतत्रता नही रही। इस युग मे चौबीस तीर्थंकरो से सम्बन्धित चौबीस यक्षयक्षिणी की कला में स्थान दिया गया।

दक्षिण भारत मे जैन मूर्तिया अनेकों स्थलों से प्राप्त हुई है। प्रसिद्ध लेखक एव पुरातत्व अन्वेषक टी. एम. रामचन्द्रन के अनुसार "दक्षिण मे जैन धर्म के प्रचार एव प्रसार का इतिहास द्रविडो को आर्य सभ्यता का पाठ पढाने का इतिहास है इस महान अभियान का प्रारम्भ ३ री सदी ई. पू. में आचार्य भद्रबाहु की दक्षिण यात्रा से हुआ। पैठन में सातवाहन राजाओ द्वारा निर्मित दूसरी सदी ई. पू. के जैन स्थापत्य उपलब्ध है। कर्नाटक में जैन कला का स्वर्णयुग का आरम्भ गंग वंश के राजत्वकाल मे हुआ।

★

७. नर्जल आफ बिहार एन्ड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी भाग २ पृ. १३।

८. स्कंदगुप्त का कहाव स्तंभ लेख—का. इ. इ. ३ पृ. ६५।

९. आर्कि. रिपोर्ट—आर्कि. सर्वे. आफ इंडिया १९२५-२६ पृ. १२५।

१०. जे. ओ. आई. वी.—मार्च ६९ पृ. २४७–५३।

११. जैन मा० न्युमुमेंटस आफ इडिया पृ. १६।

(गतांक से आगे)

पुण्यतीर्थ पपौरा

सुधेश

दिखती 'अहारजी' कुन्डलपुर,
'खजुराहों, में वह मञ्जुलता।
जिसको विलोक कर भक्तों के,
अन्तस का कल्मष है धुलता। ३६
'चन्देरी' 'द्रोणाचल' 'पबा' 'बधा',
की जन मन मोहक झांकी है।
श्रद्धालु जनों के द्वारा जो,
जाती श्रद्धा से आंकी है। ३७

अवलोक 'देवगढ़' 'सोनागिरि,
दर्शक की दृष्टि न थकती है।
'नैनागिरि' और 'पपौरा' में,
भी अनुपम छटा झलकती है। ३८
सन्देश शान्ति का देते है,
युग से इन तीर्थों के पत्थर।
आंधी, वर्षा, भूचाल, इन्हे,
कर सके न अब तक भी जर्जर। ३९

हैं अभी गिनाये मात्र,
कुछ जैन धर्म के तीर्थ स्थल।
पर यहां हिन्दुओं के भी तो,
है कई मनोहर पुण्य स्थल। ४०
इनमें 'कुण्डेश्वर' चित्रकूट,
पन्ना के प्राणनाथ' सुन्दर।
है विन्ध्यवासिनी भीम कुण्ड,
बालाजी और जटा शंकर। ४१
हर वर्ष सहस्रों नर नारी,
करने आते इनका दर्शन।
जो अपनी भक्ति मान्यता के,
अनुसार किया करते अर्चन। ४२
है भरा ऐतिहासिक महत्व,
के दुर्गों से भी यह प्रदेश।

जिनमें न शत्रुओं की सेना,
करने भी पाती थी प्रवेश। ४३
कालिंजर और अजयगढ़ के,
दुर्गम गढ़ इनमें हैं प्रधान।
अपना शिर ऊँचा किये हुए,
जो खड़े अडिग प्रहरी समान। ४४
इनके अतिरिक्त अनेक और,
भी दर्शनीय हैं धाम यहां
जा रहे लिखे है जिनमें से,
केवल कुछ के ही नाम यहां। ४५
एरन, गढ़ पहरा, गुप्तेश्वर,
झांसी, धामौनी, धुंवाधार,
दतिया, राहत गढ़, मदन महल,
ये दर्शनीय हैं बार बार। ४५
इन पुरातत्त्व की विधियों से,
परिपूर्ण यहाँ की धूलि है,
जिनकी नवीनता पर मोहित,
ये प्रजा यहाँ की भूली है। ४७
भू खोद निकाली जा सकती,
प्रतिमाए कई अंधेरे से,
मिल सकती कितनी ही कृतियां,
कमनीय यहां पर हेरे से। ४८
प्राचीन काल में इस प्रदेश,
के चेदि आदि हैं नाम रहे,
वनवास समय में इसी प्रान्त,
में आकर सीता राम रहे। ४९

जब लक्ष्मण को थी शक्ति लगी,
औ होकर वे म्रियमाण पड़े,
तब संजीवना जड़ी लाने,
को दौड़ शीघ्र 'हनुमान' पड़े। ५०

उनने इसके ही द्रोणाचल,
पर आ वह बूटी पाई थी,
जिसके प्रयोग से लक्ष्मण में,
तत्क्षण चेतना आई थी । ५१
है यही 'द्रोण गिरि' तो जैनों,
का तीर्थ स्थान पुनीत सभी,
जिसको लख आंखों के आगे,
उठता है नाच अतीत अभी । ५२
आ इसी प्रान्त में पाण्डव ने,
अपना बनवास बिताया था,
इसके विपिनों ने उन्हे शरण,
दे अपना धर्म निभाया था । ५३
कवि कालिदास ने मेघदूत,
में इसे दशाण बताया था,
उस समय यहाँ की राजपुरी,
विदिशा को गया बनाया था ।५४
उसी दशार्ण के चिन्ह-रूप,
में ही घसान अब बहती है ।
जो अपने उस कल-कल स्वर में,
उस युग की गरिमा कहती है ।५५
प्रत्येक दृष्टि से यों इसका,
इतिहास सदैव महान् रहा ।
हर युग में कवियो के द्वारा,
होता इसका गुण गान रहा ।।५६
अब मध्यप्रान्त के अन्तर्गत,
है समाविष्ट यह पुण्य मही ।
फिर भी इसका मौलिक महत्व,
हो सका अभी भी लुप्त नहीं ।।५७

× × ×

इस ही पावन बुन्देलखण्ड,
में टीकमगढ़ से तीन मील,
की दूरी पर है विद्यमान,
शुभ क्षेत्र पपौरा पुण्य शील ।।५८
इसके इक्यासी जिन मन्दिर,
भक्तों के मन को मोह रहे ।
शोभित हो मानस्तम्भ रहे,
मठ, मेरु, यों भरे सोह रहे ।।५९

जिस पम्पापुर का वर्णन है,
श्री बाल्मीकि रामायण में ।
सम्भवतः वही पपौरा अब,
बन गया आज उच्चारण में ।।६०
यदि यह है सत्य, यहीं तो फिर,
हनुमान राम संयोग हुआ ।
आरम्भ यही से सीता के,
अन्वेषण का उद्योग हुआ ।।६१
कारण यह, इसके पास एक,
विस्तृत वन घना रमन्ना है ।
जो लगता रामारण्य शब्द,
ही तो अब बना रमन्ना है ।।६२
अनुमान मात्र यह, कौन आज,
सकता वास्तविक रहस्य बता ।
पर यदि अन्वेषक खोज करे,
तो इसका लगे अवश्य पता ।।६३
सभव है यह बात सिद्ध,
होवे इतिहास पुराणों से ।
इसकी विशेषता और अधिक,
जानी जा सके प्रमाणों से ।।६४
हो भले वास्तविकता जो भी,
पर यह शुभ तीर्थ पुरातन है ।
इसकी सुख्याति नवीन नहीं,
पर अति प्राचीन सनातन है ।।६५
इस पुण्य क्षेत्र के उत्तर में,
जो वनस्थली लहराती है ।
प्रत्येक प्रकृति के प्रेमी के,
मन को वह अतिशय भाती है ।।६६
कंजी, अचार, जामुन, महुवा,
की तरुश्रेणी अभिराम कही ।
तो आम, आंवला, और चिरौल,
की विटपावली ललाम कही ।।६७
बाँस औ सेमर के वृक्षों,
की भी तो छटा निराली है ।
औ सुरभि करौंदी के फूलों,
की हृदय मोहने वाली है ।।६८

राजुल

मिश्रीलाल जैन

कक्ष मे दीपिका जल रही थी। पवन के मन्द मन्द झकोरों से बाती काप-काप जाती थी। पलंग पर दूधिया चादर बिछी थीं और चारो ओर पारदर्शी पर्दे लगे थे। कक्ष भित्तिया कलात्मक चित्रो से चित्रित की गई थी। रात्रि का प्रथम पहर था। तकिए का सहारा लिए एक सुडौल लावण्यमयी रमणी बैठी थी। कक्ष जूनागढ के राजमहल का था। पलंग पर लेटी युवती थी महाराज उग्रसेन की दुहिता राजकुमारी राजुल। हथेलियो और पावों मे कलात्मक शैली से मेहदी रची हुई थी। वेषभूषा नव-बधू होने का संकेत दे रही थी। आँखो की नीद न जाने कहा उड़ गई थी। मन मे तरह तरह की सम्मोहक कल्पनायें फुगडी खेल रही थी। नारी के मन मे उमगित विवाह पूर्व अनुभूतियो की अभिव्यक्ति सहज नही है मन मे मधुर सपने सुखद भविष्य, पति की सुन्दर छवि का चिन्तन, उसके पौरुष की पराक्रम गाथाये सभी एक सुर से राजुल के कोमल, तरुण हृदय मे गूंज रहे थे। रात्रि के दूसरे पहर मे निद्रा देवी के दुलार भरे स्पर्श से उसकी पलके उनीदी हो उठी। नयनाकाश के दोनो क्षितिज मिले और वह निद्रा देवी की नीद मे सो गई। एक पहर हुआ ही था कि प्रभाती ने उसे जगा दिया। उसके मधुर स्वर स्पर्श से राजुल की नीद टूट गई। वह उठ कर बैठ गई वातायन से अरुणोदय झाक रहा था। उठते सूरज की सुनहरी किरणें पृथ्वी को चूम रही थी। स्वर्णिम किरणो और शहनाई की प्रभात कालीन रागिनी की मधुर ध्वनि दोनो ने प्राकृतिक वातावरण को सजीव बना दिया। कुमारी राजुल झरोखे मे आकर खडी हो गई और प्रकृति के उस अकल्पित सौन्दर्य को अपलक देखने लगी। मध्याह्न मे द्वारिकापुरी से आयी बारात अभी जूनागढ की सीमा पर जा पहुची। महाराज उग्रसेन तथा जूनागढ के गण्य मान्य नागरिक बारात की भाव भीनी अगवानी के लिए वहा उपस्थित थे। बारात का प्रभावशाली स्वागत किया गया। अनेक वाद्ययन्त्रो के सामूहिक स्वर मे दिशाएं गूज उठी। उल्लास, साकार हो उठा। शोभा यात्रा बडे कलात्मक ढग से आयोजित हुई। सर्व प्रथम वाद्य वृन्द चल रहा था, जिसके मधुर स्वर से सभी के हृदय आनन्दोल्लास मे प्रफुल्लित हो रहे थे। उसके बाद पदातियो की पंक्ति मार्च कर रही थी, फिर अश्वारोही सैनिक चल रहे थे, इनके ठीक पीछे हाथियो की अद्वितीय कतार चल रही थी। इसके पीछे रत्न जटित आभूषणो मे सुसज्जित दो हाथी एक स्वर्णरथ को खीच रहे थे। रथ मे द्वारिकापुरी के अधिपति समुद्र विजय के पुत्र नेमिनाथ विराजमान थे। जूनागढ के राजपथ पर जब रथ चलने लगा तो आस पास की अट्टालिकाओ से पुष्पवृष्टि होने लगी। जूनागढ की प्रजा द्वारा की गयी पुष्पवृष्टि से वातावरण महक उठा।

धूम धाम से चली आ रही बारात अचानक रुक गई राजपथ मे बाई ओर कुंवर नेमिनाथ ने अनायास देखा कि अनेक प्रकार के सैकडो पशु एक बाड़े मे बन्द थे।

मौलिश्री के भी फूलों के,
उपवन अत्यन्त निराले हैं :
या दृश्य यहाँ के सारे ही,
मन हर्षित करने वाले है ।।६९
गौरैया, मोर, पिकी गोष्ठी,
करती रहती सप्रेम यहाँ ।
अभिराम हरिणियाँ चौकड़ियाँ,
भरती रहती सप्रेम यहा ।।७०
इसके पशुओ को अभयदान,
तो देते रहे नरेश सदा ।
पर वृक्षो की भी रक्षा का,
रखते थे ध्यान विशेष सदा ।।७१

(क्रमशः)

कुछ चीत्कार कर रहे थे। इस हृदयकंपी चीत्कार को सुन, कुमार नेमिनाथ का कोमल करुण हृदय विह्वल हो उठा। वे अपने कुतूहल को रोक न पाए। उन्होंने सारथी से पूछा! सारथी, पशुओं को क्यों घेरा गया है? सारथी ने नम्रता पूर्वक कहा—देव, आपके पाणिग्रहण के आनन्द में आयोजित भोज तथा बारात के स्वागत भोज के हेतु इन्हें एकत्रित किया गया है। इनके माँस से विविध प्रकार के स्वादिष्ट व्यञ्जन बनाए जाएगे। नेमिनाथ के हृदय में अहिंसा बीज रूप में विद्यमान थी। साधारण सी यह घटना कुंवर नेमिनाथ की जीवन सीपी मे स्वाति–बिन्दु सी ढलक गई। अहिंसा का बीज अंकुरित हो उठा। उन्होने कुछ स्वगत, कुछ प्रगट रूप मे एक दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए कहा—मेरे पाणिग्रहण के निमित्त इतने प्राणियों का बध, एक मानव के विवाह समारम्भ के उत्साह में इतने निरीह प्राणियो का बलिदान, क्या इन पशुओं को सुख दुःख की अनुभूति नही होती। क्या मूकता ही इनका अपराध है? मैं ससार मार्ग मे प्रवेश नही करूंगा? सारथी रथ यहीं रोक दो?

सारथी ने रथ रोक दिया। नेमि कुमार ने विवाह के सूचक सभी वस्त्राभरण उतार कर रख दिए और पैदल चल पड़े जूनागढ़ की विशद पर्वत शृखला की ओर। रथ के रुकते ही 'उग्रसेन' मन्त्रीगण तथा सम्मानितजन वहा आगए सबने नेमि प्रभु की ओर साश्चर्य देखा उन्होने उन्हे रोकने के प्रयत्न किए। नेमि प्रभु एक क्षण रुके और उपस्थित जन-समूह को सम्बोधित कर बोले जो शाश्वत सुख के मार्ग पर चल पड़ा हो, उसे कोई शक्ति नही रोक सकती। उनकी वाणी में अपार ऊर्जा थी। आँखें तेजस्वी थीं। सब चित्र लिखित से देख रहे थे और नेमिप्रभु गिरिनार पर्वत की ओर वेग से पांव उठा रहे थे।

जूनागढ़ से गिरिनार तक २४ मील का मार्ग तय करना था। मार्ग अत्यन्त कठिन, कंटकाकीर्ण, पथरीला और उबड़ खाबड था। इस विषम पथ पर नेमि प्रभु ऐसे बढ़ रहे थे जैसे नित्य के अभ्यस्त हों रथ से नीचे उतर कर जिनके सुकुमार चरणो ने कभी भूमि का स्पर्श तक नही किया था वे प्रसन्नवदन, उल्लसित चित्त उस दुर्गम वन्य पथ पर द्रुत गति से चले जा रहे थे, काटे और नुकीले पत्थर उनकी कोमल पगतलियों को बींध रहे थे। किन्तु उनको चुभन का भान उन्हें न था। रक्त रिसने लगा था, किन्तु ध्यान उधर भी न था। जब संसार के आकर्षणों से नाता टूट जाता है तब बाह्य जगत के सुख दुख प्रभावित नहीं कर पाते। तब मानव अपने महान लक्ष्य की ओर दत्त चित्त बढ़ा चला जाता है। हृदय में एक दिव्य ज्योति उद्भासित होती है जिसके पावन प्रकाश में वह शाश्वत आत्म सुख की अनुभूति का अनुभव करता है। नेमि प्रभु गिरिनार के सर्वोच्च शिखर पर पहुंच गये। वहां उन्होंने शेष वस्त्रो को भी एक ओर रख दिया और प्राकृतिक दिगम्बर वेश में आत्मचिन्तन मे निमग्न हो गए।

हाथ पैरो में मेहदी रचाए, मंगल परिधानों में सजी संवरी तथा आभूषणोसे अलंकृत वधू राजुलने जब यह सुना कि उसके भावी पति नेमि कुमार विरक्त होकर गिरिनार चले गए है तो क्षण भर को वह निस्तब्ध रह गई। उसे लगा मानो पुरुष के अहम ने नारी के आर्कषणों को चुनौती दी है। उसके मन ने कहा यदि वे मेरा सजा-सवरा अलंकृत रूप तथा लावण्ययुक्त देह देख भर लेते, तो क्या वह उसका मोह छोड़ सकते थे?

इस विचार के आते ही राजुल नेमिनाथ को गिरनार के उच्चतम शिखर से फिर भूमि तल पर लाने विचार करने लगी। कुछ क्षणो बाद वह उठ खड़ी हुई। इसी समय उसके माता पिता वहां आ पहुचे। माँ ने उसे गोद मे भर कर कहा—बेटी राजुल हृदय को दुखी मत करो। तुम्हारा विवाह शीघ्र ही दूसरे सुयोग्य राजपुत्र के साथ होगा। राजुल ने कहा—माँ, आत्म संकल्प से बरण किया हुआ पुरुष ही नारी का एकमेव आराध्य होता है। मैंने आत्म सकल्प पूर्वक नेमि कुमार का वरण किया है। अब इस जन्म में किसी और पुरुष के साथ मेरा विवाह न हो सकेगा। मैं अन्तः प्रेरणा से गिरिनार जा रही हूं। यदि नारी के आर्कषण की जीत होती है, तो प्रभु गिरिनार के सर्वोच्च शिखर से पृथ्वी तल पर उतर आयेंगे, और यदि पुरुष की संकल्प शक्ति विजयिनी होती है, तो मै पृथ्वी तल से गिरिनार के उच्चतम शिखर पर पहुंच जाऊंगी।

इतना कह कर वह चल पड़ी। मीलों मार्ग तय कर वह गिरिनार पहुंच गई। देखा उसके पति, उसके आरा ध्य

ध्यानस्थ हैं। उसने स्वामी स्वामी कहकर अनेक बार पुकारा, किन्तु वहां सुनने की सुध किसे थी ? राजुल समाधि टूटने की प्रतीक्षा में हाथ बांधे खड़ी रही। अपने स्वामी के उर्जास्वित मुख मण्डल को देखते ही उसके नारी हृदय का अहम् चूर-चूर हो गया। पार्थिव संकल्प टूट गए एक पवित्र विचारधारा उसके हृदय मे कौंध उठी, तभी नेम प्रभु की समाधि टूटी। नासिकाग्र से दृष्टि हटी। देखा, शोभन, वस्त्रालंकारों से सजी एक सौन्दर्य शलाका सामने खड़ी है। प्रभु बोले—कंटकाकीर्ण मार्ग चलकर इस निर्जन वन मे आने का प्रयोजन क्या है देवी ?

राजुल नारी सुलभ—भृकुटि—विलास अधरो का कुटिल हास्य, नयनों की मधुर चितवन जैसे सब भूल गयी। स्वामी के प्रथम दर्शन से ही नारी सुलभ हाव भाव न जानेकहा तिरोहित हो गए उसने सहज सरलता से कहा—नाथ मैं राजुल हूं, आपकी पत्नी। निष्कलुष अनासक्त भाव से प्रभु ने कहा—देवि मैंने पार्थव मार्ग छोड़ दिया है। ऐहिक सुखोपभोग को त्याग दिया है। वैवाहिक भाव और तज्जनित भोग विलासों को मैंने तिलाञ्जलि दे दी है। नारी का पत्नी भाव मेरे हृदय से तिरोहित हो गया है। संसार की समस्त नारियां मेरी भगिनियां तथा पुत्रियां है। अब सब मेरे लिए पूजनीय और श्रद्धास्पद है मैं दिगम्बर श्रमण हूं। मेरे लिए बाह्य सुख-दुख, जीवन-मरण, तथा हानि-लाभ सब समान है। देवी अभिलाषा पूरी न कर सकूगा। आप यथा स्थान लौट जाएं।

राजुल ने विनम्र होकर कहा—महा प्रभु, नारी संकल्प पर जीती है। जीवन में जो सकल्प वह कर लेती है, उसे वह आजीवन प्राणप्रन से निभाती है। जब मैने सुना कि मेरा जीवन सूत्र देव के जीवन सूत्र में बंधने जा रहा है तभी मेरी आत्मा ने आपका वरण कर लिया था। उसी प्राणवल्लभ के मौलिक रूप और आत्मिकभाव का पूजन करने का शाश्वत संकल्प मैंने ले लिया है। अब उस सकल्प से कोई मुझे डिगा नहीं सकता। पति रूप में एक पुरुष को स्वीकार कर लेने के पश्चात् दूसरे पुरुष की अभिलाषा व्यभिचार मात्र है।

प्रभु ने गम्भीर स्वर में कहा—देवी का कथन सत्य है। किन्तु यह मानव मन का भावात्मक पक्ष है। जब तक सप्तपदी न हो, नारी कुंवारी ही समझी जाती है। तब हम दोनों तो लग्न मण्डप में भी एकत्र नहीं हो पाए थे। अतएव सामाजिक नियमों के अनुसार आज भी आप विवाह करने के लिए स्वतन्त्र है।

राजुल ने कहा—नहीं, प्रभो, नहीं। इस जीवन में अब यह सम्भव नही, महाप्रभु ही विवाह कर मेरा उद्धार करें। प्रभु के महान् त्याग से जूनागढ़ राज्य के सभी प्रजा जन अहिंसा के अनन्य उपासक हो गए है। सभी पशुओ को मुक्त कर दिया गया है। सभी ने मास न खाने का आजीवन व्रत ले लिया है। देव, ससार मे रह कर भी अहिसा के चिरन्तन शीर्ष की प्राप्ति हो सकती है।

'देवि'—प्रभु ने प्रशान्त स्वर मे कहा—केवल जूनागढ राज्य के अहिसा के पुजारी होने से मेरे लक्ष्य की पूर्ति नही होगी। समस्त विश्व मे अहिंसा की दिव्य ज्योति का प्रसार मेरा परम लक्ष्य है, अतः जो पथ मैने स्वीकार किया है, उसका त्याग अब सम्भव नही।

राजुल ने कहा—किन्तु देह को भी तो भुलाया नहीं जा सकेगा देव !

'देवि'—महाप्रभु ने कहा—मैंने अनुभव किया है कि देह मे आत्मा पृथक् है। इन्द्रिय जनित सुख-दुख भ्राति मात्र है। अहिंसा के दिव्य ज्ञान को प्राप्त करना परम आवश्यक है। वह तभी प्राप्त हो सकता है, जब हम पार्थिव सुखो का त्याग कर दे और आत्मशक्ति को उपलब्ध करने के लिए घोर तपश्चर्या करें।

राजुल ने दृढ़तापूर्वक कहा—यदि संसार के सुख भ्रामक है तो देव, फिर अनादि काल से इस सुख के पीछे प्राणी मात्र पागल क्यों है। भ्रामक सुखों की दीवार अनन्त काल से ज्यों की त्यो क्यों खड़ी है ? ससार का मार्ग ही मिथ्या है तो भाई, बहिन, पुत्र, मां और पत्नी के सम्बन्ध युगों-युगों से अभी तक क्यों जीवित है ? देव संसार छलना नहीं है। सामाजिक शील में बध कर सांसारिक सुखों का उपयोग ही धर्म है। देव संसार से विरक्त होने का अर्थ है, संसार के कष्टों से भयभीत होकर उससे पलायन करना, कष्टों से दूर भागने का अर्थ है कायरता—

राजुल का आवेश देख महाप्रभु की मुख पर एक मधुर मुस्कान खेल गई। उन्होंने कहा देवि भावावेश में जो कुछ तुमने अभी कहा वह सासारिक मनुष्यो के लिए समीचीन है। संसारी मानव यदि उनसे दूर भागता है, तो वह वास्तव में कायर है। त्याग के बिना उज्ज्वल साधना, अहिंसक जीवन की परमोज्ज्वल साधना सम्भव नही है। आत्म और अनात्म का विश्लेषण करो देवि ! देखो, पृथ्वी से परे भी कुछ है। आत्मा के अजस्र शक्ति कोश को उन्मुक्त करने का आनन्द उपलब्ध करो देवि।

राजुल ने भावविह्वल होकर कहा—प्रभो ! आपकी वाणी से मैं कृतार्थ हुई। यदि मैने आपको वरण किया है तो अपने इस आत्म संकल्प पर स्वयं को निछावर कर देना मेरा परम कर्त्तव्य है। मै अब लौटकर नही आऊँगी। मेरा सकल्प था कि या तो मुनि को आपके चरणो का स्पर्श कराऊँगी या फिर गिरनार से नीचे नही उतरूँगी। यदि मै प्रभु को लौटा नहीं सकी तो प्रभु मुझे न लौटा सकेंगे। मुझे चरणों की रज समझ कर दीक्षा दीजिए प्रभो।

महाप्रभु ने राजुल की दृढ़ता की थाह पाने की दृष्टि से कहा—देवि एक बार पुनः सोचें। क्षणिक आवेश में स्वीकार किए गए व्रत, संयम, आवेश उतरने पर भंग हो जाते है। आपकी मनोदशा स्वस्थ नही है। कुछ दिन विचार करे। मुक्ति का द्वार सदैव खुला है देवि।

राजुल ने अविचल मुद्रा में कहा—नही प्रभो नारी को किसी संकल्प से विमुख करना असम्भव नहीं है। मैं यहां गिरनार पर बिना अन्न जल ग्रहण किसे दीक्षा की प्रतीक्षा करूँगी। मैं अडिग विश्वास पूर्वक इस दुर्गम पथ का अनुसरण कर रही हूँ। आप दीक्षा दीजिए।

नेमि प्रभु ने नारी का दृढ संकल्प देख उन्हे आर्यिका पदा की दीक्षा दी। गुरु चरणरज स्पर्श कर राजुल लौटी। किन्तु गिरनार के नीचे नही। वही एक गुफा में चट्टान पर बैठकर तपश्चर्या करने लगी। दोनों ने अपनी साधना से संसार से मुक्ति पायी और अपनी दिव्य वाणी से जन-जन का उद्धार किया।

गिरनार की सभी चोटियां आज भी महाप्रभु नेमि और महासती राजुल की गौरव-गाथा सुनती है। आज गुफा मुख पर राजुल की मूर्ति साकार है। जिसे देख भावभीने प्रणाम में हाथ स्वयं जुड़ जाते हैं। और श्रद्धा भाव से मस्तक अनायास झुक जाता है।

●

रचनाएं भेजिए

अनेकान्त के स्वरूप से आप सुपरिचित हैं। इस पत्र का एक विशेषांक शीघ्र प्रकाशित करने की योजना है। उक्त विशेषांक में जैन तत्त्वों पर आधारित मौलिक उच्चस्तर के शोध निबन्धों के साथ ही भगवान् महावीर के २५००वें निर्वाण महोत्सव से सम्बन्धित सामग्री भी प्रकाशित करने की योजना है। लेखकों, विद्वानों, व्रतियों एवं मुनिगण से प्रार्थना है कि उक्त विशेषांक के लिए अपनी अमूल्य रचनाएं शीघ्रातिशीघ्र भेज कर अनुगृहीत करें।

प्रकाशक

जैन दर्शन की सहज उद्भूति : अनेकान्त

[महावीर ने वस्तु की विराटता और हमारे सामर्थ्य की सीमा स्पष्ट करके हमारे अहंकार को तोड़ा है। उन्होंने कहा, वस्तु उतनी ही नहीं है जितनी तुम्हें अपने दृष्टिकोण से दिखाई दे रही है। वह इतनी विराट है कि उसे अनन्त दृष्टिकोणोंसे देखा जा सकता है। अनेक विरोधी प्रतीत होने वाले धर्म उसमें युगपत विद्यमान है।—**जयकुमार 'जलज'**]

अनेकान्त जैन दर्शन की सहज अनुभूति है। जैन दार्शनिकों के द्रव्य पदार्थ सत्ता या वस्तु का जैसा विवेचन किया है उससे उन्हें अनेकान्त तक पहुचना ही था। उनका द्रव्य-विवेचन एक अत्यन्त तटस्थ वैज्ञानिक विवेचन है। परवर्ती सूत्र विज्ञानों से दूर तक उसका समर्थन होता है। जैन दर्शन के अनुसार तथ्य के अनेक (अनन्त नही) गुण है—जैसे जीवद्रव्य के ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य आदि और पुद्गल द्रव्य के रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि। वस्तु या द्रव्य आकार मे कितना भी छोटा हो लेकिन हम उसे सम्पूर्णतः नही देख सकते। मैं उसके एक गुण को देखता हू, आप दूसरे गुण को, और लोग तीसरे, चौथे को भी देख सकते हैं। लेकिन एक व्यक्ति युगपत् सभी गुणों को देखने में समर्थ नही है। सबके देखे हुए का लोप नही किया जा सकता और लोप हो भी जाय तो भी वह सभी दर्शकों के लिए विश्वसनीय कहां हो पाएगा ! कई खण्ड ज्ञान मिलकर एक अखण्ड ज्ञान की प्रामाणिक प्रतीति शायद ही करा पाएं ! जगह-जगह टूटी हुई रेखा एक अटूट रेखा का भ्रम ही पैदा कर सकती है। वह वस्तुतः अटूट रेखा नही होती। इस प्रकार वस्तु अधिकाशतः अदेखी रह जाती है।

वस्तु के गुण परिवर्तनशील है। गुणों का परिवर्तन ही वस्तु का परिवर्तन है। इसीलिए वस्तु कोई स्थित सत्ता नहीं है। वह उत्पाद और व्यय के वशीभूत है। हर क्षण उसमें कुछ नया उत्पन्न होता है और कुछ पुराना व्यय होता है। वह अपने पर्याय बदलती है—पूर्व पर्याय को त्यागती है और उत्तर पर्याय की प्राप्ति करती है। यह क्रम अनादि अनन्त और शाश्वत है। यह कभी विच्छिन्न नहीं होता। हम पहले क्षण जिस वस्तु को देखते हैं दूसरे क्षण वही वस्तु नही होती। नदी के किनारे पर खड़े होकर हम एक ही नदी को नहीं देखते। हर क्षण दूसरी नदी होती है।

अनेक गुण वाली ये वस्तुए अनन्तमयी है। वस्तु के गुणों को गिना जा सकता है। गुण वस्तु के स्वभाव हैं, वस्तु मे ही रहते है और स्वयं निर्गुण होते हैं[1]। उनकी सत्ता सापेक्ष है। इसके विपरीत वस्तु के धर्म अनन्त है। वे वस्तु मे नही रहते। उनकी सत्ता सापेक्ष है। इसलिए वे किसी की सापेक्षता मे ही प्रकट होते है। सापेक्षता नहीं तो वह धर्म भी गया। परिप्रेक्ष या दृष्टि बिन्दु के बदलते ही दृश्य बदल जाता है। दूसरे परिप्रेक्ष्य से देखने पर दूसरा दृश्य होता है। धर्म व्यवहार क्षेत्रीय है। वस्तु का छोटा होना, बड़ा होना, पति, पिता, पुत्र आदि होना व्यवहार और सापेक्षता का विषय है। इसलिए रूप, रस, गन्ध आदि जहा गुण है वही छोटापन, बड़ापन, पतित्व, पितृत्व, पुत्रत्व आदि गुण नहीं, धर्म है।

अनन्त वस्तुओ के कारण अनन्त सापेक्षताएं निर्मित होती है। सापेक्षताओं के गुण, मात्रा, लम्बाई, चौड़ाई, ऊंचाई, स्थान, काल आदि अनेक आधार होते है। वस्तु का अच्छा, भारी, लम्बा, चौड़ा, ऊँचा, दूर, प्रचीन आदि होना किसी सापेक्षता मे ही होता है। सापेक्षता प्रस्तुत करने का कार्य केवल उसी धर्म की वस्तु नही अन्य वर्गों की वस्तुएं (जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल) उनके भेद और उनकी अनन्त सस्थाएं करती है। अनन्त सापेक्षताओं से वस्तु के अनन्त धर्म निर्मित होते है। एक ही वस्तु अनन्त भूमिकाओं में होती है। एक ही व्यक्ति पिता, पुत्र, भाई, गुरु, शिष्य, शत्रु, मित्र, तटस्थ आदि कितने ही रूपों या धर्मों में प्रकट होता है। हम किसी एक कोण से देखकर वस्तु का नामकरण कर देते हैं। नामकरण वस्तु के सम्पूर्ण स्वरूप को संकेतित नहीं करता। वस्तु के नाना धर्मो से उसके केवल एक धर्म पर ही टिका होता है। नाम। शब्दो पर व्युत्पत्ति और अर्थ की दृष्टि

---

१. द्रव्याश्रय निर्गुणा गुणाः। —तत्त्वार्थसूत्र ५।४०

से विचार करते हुए आठवीं शताब्दी ईसा पूर्व के भारतीय आचार्य यास्क ने वस्तु की इस अनन्त धर्मिता को अपने ढग से अनुभव किया था—स्थूण (खम्भा) शब्द की व्युत्पत्ति स्था (खड़ा होना) धातु से मानी जाती है। यदि खम्भे को खड़ा होने के कारण स्थूणा कहा जा जाता है जो उसे गड्ढे में धँसे होने के कारण दरशया (गड्ढे में धँसा हुआ) और बल्लियो को सँभालने के कारण सज्जनी (बल्लियों को सँभालने वाला) भी कहा जाना चाहिए[1]।

क्या हम वस्तु के एक धर्म को भी ठीक से देख पाते हैं ? मैं समझता हूं, नहीं देख पाते। उदाहरण के लिए अध्यापक को लें। यह नाम व्यक्ति के एक धर्म पर आधारित है। हमने उसके अन्य सभी धर्मो को नकार दिया। सौदा खरीदते समय वह खरीदार है, पुत्र को चाकलेट खिलाते समय पिता है। हमने इस सबकी ओर ध्यान नही दिया। तहाँ तक कि कक्षा पढ़ाने से सफलतापूर्वक बचते समय भी उसे अध्यापक कहा। लेकिन उसके इस एक धर्म अध्यापन के भी तो अनेक स्तर है—कभी उसने बहुत तेजस्वी अध्यापन किया होगा, कभी बहुत शिथिल और इन दोनों के मध्य अध्यापन के सैकड़ो कोटि क्रम है। इन सब पर हमारी दृष्टि कहा जा पाती है।

इस प्रकार वस्तु के अनेक गुण है। वह निरन्तर परिवर्तनशील है और उसके अनन्त धर्म है। क्या हम वस्तु को उसकी सम्पूर्णता मे देख सकते है, जान सकते ? सम्भव ही नहीं है।

जितना भी हम देखें और जान पाते है वर्णन उससे भी कम कर पाते है। हमारी भाषा दृष्टि की तुलना मे और भी असर्थता, अपर्याप्त, अपूर्व और सयथार्थ है[2]। नाना धर्मात्मक वस्तु की विराट् सत्ता के समक्ष हमारी दृष्टि और दृष्टि को सूचित करने वाली भाषा बहुत बौनी है वह एक टूटी नाव के सहारे समुद्र के किनारे खड़े होने की स्थिति है। लेकिन हम अपने अहंकार में अपनी इस स्थिति को समझते ही नहीं है। महावीर ने वस्तु की विराटता और हमारे सामर्थ्य की सीमा स्पष्ट करके हमारे इसी अहंकार को तोड़ा है। उन्होंने कहा, वस्तु उतनी ही नहीं है जितनी तुम्हें अपने दृष्टिकोण से दिखाई दे रही है। वह इतनी विराट् है कि उसे अनन्त दृष्टिकोणों से देखा जा सकता है। अनेक विरोधी प्रतीत होने वाले धर्म उसमें युगपत् विद्यमान है। तुम्हें जो दृष्टिकोण विरोधी मालूम पड़ता है उसे निर्मित करने वाला धर्म भी वस्तु में है। तुम ईमानदारी से—थोड़ा विरोधी दृष्टिकोण से—देखो तो सही। तुम्हें वह दिखाई देगा। एकान्त दृष्टि के विपरीत यह अनेकान्त दृष्टि है। यही अनेकान्तवाद है। यह विचार या दर्शन है। एक ओर वस्तु के अनेक गुण, बदलते पर्याय और अनन्त धर्मिता का और दूसरी ओर मनुष्य-दृष्टि की सीमाओ का दोष होते ही यह सहज ही उद्भूत हो उठा। विचार मे सहिष्णुता आई वो भाषा में उसे आना ही था। विचार मे जो अनेकाता है वही वाणी मे स्याद्वाद है।

स्यात् शब्द शायद के अर्थ मे नही है। स्यात् का अर्थ शायद हो तब तो वस्तु को स्वरूप-कथन मे सुनिश्चितता नही रही। शायद ऐसा है, शायद वैसा है—यह तो बगले का झांकना हुआ। पाली और प्राकृत में स्यात् शब्द का ध्वनि-विकास से प्राप्ति रूह 'सिया' वस्तु के सुनिश्चित भेदों के साथ प्रयोग मे आया है। किसी वस्तु के धर्म कथन के समय स्यात् शब्द का प्रयोग यह सूचित करता है कि यह धर्म निश्चित ही ऐसा है, लेकिन, अन्य सापेक्षताओं सुनिश्चित रूप से सम्बन्धित वस्तु के अन्य धर्म भी है। इन धर्मों को कहा नहीं जा रहा है, क्योंकि शब्द सभी धर्मों को युगपत् संकेतित नही कर सकते। यानी स्यात् शब्द केवल इस बात का सूचक है कि कहने के बाद भी बहुत कुछ अनकहा रह गया है इस प्रकार वह सम्भावना, अनिश्चय, भ्रम आदि का द्योतक नहीं सुनिश्चितता और सत्य का प्रतीक है। वह अनेकान्त चिन्तन का वाहक है और हमें धोखे से बचाता है।

महावीर ने अनेकान्त को यदि चिन्तन और वाणी का ही विषय बनाया होता तो हमें उससे विशेष लाभ नहीं था। अनेकान्तवाद और उसका भाषिक प्रतिनिधि स्याद्वाद अनेक वर्षो में एक वाद और बन जाता है। उसकी किताबी महत्ता ही होती है, लेकिन महावीर

१. निरुक्त १-११।
२. भाषा पदार्थों को अपूर्ण और अयथार्थ रूप में लक्षित करती है।

किताबी व्यक्ति थे ही नहीं। दर्शन और ज्ञान तो उनके लिए रास्ता था। इस रास्ते से वे चारित्र्य तक पहुचे थे। मुक्ति का मार्ग भी उन्होंने इसी प्रकार निरूपित किया है— 'सम्यग् दर्शनज्ञानचारित्राणिमोक्षमार्गः।' चारित्र्य सर्वोच्च स्थान पर है। उस पर विशेष बल है। यह स्वाभाविक ही था कि ऐसा व्यक्ति अनेकान्त चिन्तन को आचार का विषय भी बनाता है। अनेकान्त चिन्तन ही आचार मे अहिसा के रूप मे प्रकट हुआ।

अनेक अहकार के कारण हम अपने आपको ही विराट् समझते है। शायद हम अपने आपको अपेक्षाकृत अधिक देख पाते है इसलिए अन्य वस्तुओं की तुलना मे जिन्हे हम अधिक नहीं देख पाते, अपने आपको बड़ा मान बैठते है। महावीर ने वस्तु की विराटता को अनेक गुण, बदलते पर्याय और नाना धर्मात्मकता के आधार पर इस प्रकार स्पष्ट किया कि हमें उसके लिए—दूसरो के लिए हाशिया छोड़ना पड़ा। उन्होने न तो आदेश दिया, न वस्तु के धर्म को अव्याकृत कहकर आव्याख्यायित रहने दिया—उन्होंने वस्तुस्वरूप की विराटता से हमे परिचित कराया। उन्होने विषय का ऐसा विवेचन किया कि हमने अहिंसा को अपने भीतर से उपलब्ध कर लिया। अहिसा को यदि अनेकान्त के रूप मे उन्होंने वैचारिक आधार न दिया होता तो वे एक दार्शनिक निराशा की सृष्टि करते। बिना वैचारिक आधार के अहिंसा बहुत दिन तक टिक नहीं पाती। उसका भी वही होता जो बहुत विचारहीन आचारों का होता है। इसके विपरीत यदि अनेकान्त केवल विचार का ही विषय रहता तो वह पण्डितो के वाद-विवाद तक ही सीमित होकर रह जाता।

यही अनेकान्त समाज-व्यवस्था के क्षेत्र में अपरिग्रह का रूप ग्रहण करता है। इस प्रकार एक निजी आचार तक ही वह सीमित नही है। सम्पत्ति का संग्रह हिंसक कार्य तो है ही वह एकान्त और अस्याद्वादी कार्य भी है। जब हम अपने लिए संग्रह करते हैं तो दूसरों की सापेक्षता में कुछ सोचते ही नही है। अपने आपको महत्त्व-केन्द्र मान लेते है। दूसरों के लिए हाशिया न छोड़ने के कारण विस्फोट और क्रान्ति होना स्वाभाविक है। महावीर के समय से आज का समय अधिक जटिल है। आज हम अधिक जटिल और परोक्ष अर्थ तथा राज व्यवस्था के अन्तर्गत रह रहे है। हमे पता ही नही चलता और हमारी सम्पत्ति तथा सत्ता अन्य हाथों केन्द्रित हो जाती है। इन हाथो के स्वामी एक स्वय के द्वारा संचालित जयजयकार से घिर जाते है। मालाएँ, अभिनन्दन, चमचे, भाट, अफसर और चपरासी, सट्टा और कालाबाजार उन्हें सर्वज्ञ बना देते है। यह अपनी औकात को भूलना है। वस्तु के स्वरूप की नासमझी है। यहाँ आम आदमी को केवल एक ही कोण से देखा जा रहा है। और उसे असहाय समझा जा रहा है। यह उसका दोष नही। हमारी दृष्टि का दोष है। काश हम उसे अन्य कोणों से भी देख पाते। व उतना ही नही है जितना हमे दिखाई देता है। निश्चित रूप से वह उसके अलावा भी है। वह अनन्तधर्मा विराट् महाशक्ति है। उसके लिए अपनी सत्ता और सम्पत्ति के परिग्रह को कम करें। यही अनेकान्त दृष्टि का, लोक-व्यवहार का रूप है। महावीर ने इसे अपने जीवन में घटित किया। वे परिग्रह से सर्वथा मुक्त हो गए। उन्हे न धन का परिग्रह था, न सत्ता का और न यश का। आज गृहस्थ ही नही सन्यासी भी इन परिग्रहो से मुक्त नही है। संन्यासियो के यश बटोरने की ही होड लगी हुई है और यश आ गया तो शेष सब कुछ तो स्वतः आता रहता है। परिग्रह हजार सूक्ष्म पैरों से चलकर हमारे पास आता है और हम गफलत में पकड़ लिए जाते है। हम संग्रह विश्वासी बन गए है। त्याग कर ही नही सकते। त्याग करते भी है तो और अधिक परिग्रह के लिए त्याग करते है। धन को त्याग कर यश और यश को त्याग कर धन घर मे रख लिया जाता है। महावीर की समाज-व्यवस्था अपरिग्रह पर आधारित है और एक न एक दिन हमे उसी की शरण मे जाना होगा।

इस प्रकार अनेकान्त सम्पूर्ण जैन दर्शन की आधार-शिला है। चिन्तन, वाणी, आचार और समाज-व्यवस्था सभी के लिए वह एक सही दिशा है। लेकिन वह आरोपित नही है। वस्तु-स्वरूप को वैज्ञानिक ढंग से समझने का सहज परिणाम है। ●

ओसियां का प्राचीन महावीर मन्दिर

श्री अगरचन्द जैन नाहटा

राजस्थान में जैन धर्म का प्रचार कबसे हुआ ? यह एक अन्वेषणीय विषय है। वैसे तो राजस्थान कई स्थानों के लिए यह मान्यता है कि भगवान महावीर वहां पधारे थे पर ऐतिहासिक दृष्टि से वह बात प्रमाणित नही होती। अतः इस बात को मध्यकालीन लोकमान्यता या धारणा ही कहा जा सकता है। पर मज्झिमका नगरी जो चित्तौड़ के पास है, वहाँ के उल्लेख वाला एक प्राचीनतम जैन शिलालेख है। वह वीर सम्वत् ८४ का ओझा जी ने बतलाया था। उनकी यह मान्यता थी कि इसकी लिपि मे अशोक आदि के लेखो मे प्रयुक्त ब्राह्मी लिपि से भी कुछ पुरानी मोड़ है। वर्त्तमान विद्वान उस शिलालेख को उतना पुराना नही मानते फिर भी वह प्राचीन तो है ही।

प्राचीन जैन आगमो मे राजस्थान के किसी ग्राम नगर का उल्लेख प्रायः नहीं मिलता। पीछे के कई उल्लेखों से मालूम होता है कि राजस्थान का श्रीमाल या भिन्नमाल नगर काफी प्राचीन है। इसी तरह मज्झमिका से भी जैन श्रमण संघ की एक शाखा निकली है। भिन्नमाल के सम्बन्ध मे यह उल्लेख उपकेशगच्छ प्रबन्ध मे मिलता है कि भगवान पार्श्वनाथ के संतानीय स्वयंप्रभ सूरि वहाँ पधारे और जैन धर्म का प्रचार किया। उनके शिष्य रत्नप्रभ सूरि ने ओसियाँ मे बहुत बड़ी संख्या में नये जैनी बनाये, जो आगे चलकर 'ओसवाल' कहलाये। श्रीमाल नगर के जैनी 'श्रीमाल' कहलाये और श्रीमाल नगर के पूर्व भाग मे रहने वाले जैनी 'प्रागवाट-पोखाड़' कहलाये।

उपकेशगच्छ प्रबन्ध १४वी शताब्दी की रचना है और उसमे लिखा है कि वीर निर्वाण के ७० वर्ष बाद रत्नप्रभ सूरि ने उपकेशपुर यानि ओसिया और कोरण्ट अर्थात् कोरदा दोनों नगरों में एक साथ ही महावीर बिम्बों की प्रतिष्ठा की। उपकेशगच्छ पट्टावली यही बात कह रही है :—

"सप्तत्या वत्सराणां चरमजिनपतेर्मुक्तजातस्य वर्षे,
पञ्चम्या शुक्लपक्षे सुरगुरुदिवसे ब्रह्मणः सन्मुहूर्ते।
रत्नाचार्यैः सकलगुणयुतैः सर्वसंघानुज्ञातैः
श्रीमहावीरस्य बिम्बे भवशतमथने निर्मितेयं प्रतिष्ठा॥
उपकेश च कोरण्टे, तुल्यं श्रीवीरबिम्बयोः।
प्रतिष्ठा निर्मिता शक्त्या, श्रीरत्नप्रभसूरिभिः॥"

उपकेशगच्छ प्रबन्धके अनुसार तो राजस्थान में भगवान महावीर के प्राचीनतम मन्दिर व मूर्तियाँ वीर निर्वाण के ७० वर्ष बाद ही ओसिया और कोरण्टामे प्रतिष्ठित हो गई थी अत राजस्थान मे इन्ही को प्राचीनतम महावीर मंदिर और मूर्तियाँ मानी जा सकती है। पर ऐतिहासिक दृष्टि से ओसिया नगर मे जैनेतर मन्दिर आदि प्राचीन अवशेष मिले है, वे आठवी-नवी शताब्दी से पुराने नही है। राजस्थान के महान ऐतिहासिक विद्वान गौरीशकर जी ओझा ने अपने जोधपुर राज्य के ईतिहास के प्रथम भाग में ओसिया का विवरण देते हुए लिखा है कि यह ओसवाल महाजनों का मूल स्थान है। यहाँ एक जैन मन्दिर है जिसमे विशालकाय महावीर स्वामी की मूर्ति है। यह मन्दिर मूलतः स० ८३० (सन् ७८३) के लगभग पडिहार राजा वत्सराज के समय में बनाया गया है। उसके उत्तर पूर्व में मानस्तम्भ है जिसमें सं० ९५२ का लेख है। पहले इसका नाम मेलपुर पट्टण था, श्री हेमचन्द्राचार्य के शिष्य श्री रत्नप्रभाचार्य ने यहाँ के राजा और प्रजा को जैन बनाया। ओझा जी के उल्लखित मानस्तम्भ के ९५२ वाला लेख का तो मुझे पता नही है पर महावीर मन्दिर मे जो प्रशस्ति लगी हुई है। वह सम्वत १०१७ की है। उसमें वत्सराज का उल्लेख है उसी के आधार से वत्सराज के समय को देखते हुए ओझा जी ने सम्वत ८३० के लगभग ओसिया के महावीर मन्दिर बनाने का

उल्लेख किया लगता है। सम्वत १०१७ वाला प्रशस्ति लेख इस दृष्टि से जीर्णोद्धार या नवीन मंडप देहरियों आदि की स्थापना का सूचक होगा। जैन तीर्थ सर्व संग्रह में ओसिया का विवरण देते हुए लिखा है कि यहाँ सौध-शिखरी विशाल मन्दिर बड़ा रमणीय है। मूलनायक श्री महावीर प्रभु की प्रतिमा ढाई फुट ऊँची है। मन्दिर के रंग मंडप में १०१३ वि० स० का शिलालेख: है जिसमें जिन्दक या उनके पुत्र भुवनेश्वर श्रावक के मंडप बनाने का उल्लेख है। सम्भव है इस जैन मन्दिर का उद्धार उसने करवाया है। इस शिलालेख के अतिरिक्त यहाँ संवत १०३५, सं० १०८८, सं० १२३४, सं० १२५६, संवत १३३८, स० १४९२, संवत १५१२, सं० १५३४, स० १५३६, सं० १६१२, सं० १६८३, सं० १७५८ के लेख मूर्तियो व स्तम्भों पर प्राप्त है। दसवी शताब्दी के पहले अलग-अलग शैली के शिल्प इस मन्दिर मे विद्यमान है जो इस मन्दिर की प्राचीनता के सूचक है।

मन्दिर के जीर्णोद्धार करते समय पाये में से एक खण्डित पादुका मिली थी, जिसकी चौक पर सं० १५०० का लेख है। निकटवर्ती धर्मशाला का पाया खोदते हुए श्री पार्श्वनाथ की धातु-प्रतिमा मिली थी जो अभी स्व० पूज्यचन्द्रजीनाहर के नम्बर ४८ इण्डियन मीर स्ट्रीट, कलकत्ता के मन्दिर में विद्यमान है। जिस पर सम्वत १०११ का लेख खुदा हुआ हुआ है और उसमें उपकेश-ओसिया के चैत्यग्रह का उल्लेख महत्त्वपूर्ण है।

"ॐ० सवत् १०११ चैत्र सुदी ६ कक्काचार्य शिष्य देवदत्त गुरूणा उपकेशीयचैत्यगृहें अश्वयुजचैत्यषष्ठयां शांति-प्रतिमा स्थापनीया गन्धोदकान् दिवालिका भासुल प्रतिमा इति ॥"

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि ओसियाँ का महा-वीर मन्दिर, नवमी शताब्दी जितना प्राचीन तो है ही। ओसवालों का यह मूल स्थान है पर आज वहाँ एक भी ओसवाल या जैनों का घर नही है केवल प्राचीन मन्दिर ही विद्यमान है और वहां एक जैन विद्यालय काफी समय से चल रहा है। इससे इस प्राचीन मन्दिर की देखभाल भी ठीक से हो रही है, सैकड़ों विद्यार्थी वहाँ पूजासेवा कर रहे है।

ओसवाल वंश की स्थापना रत्न प्रभ सूरि ने की, यह तो सर्वमान्य तथ्य है। परवर्ती आचार्यों ने जो नये जैन बनाये, वे ओसवाल वंश में ही सम्मिलित होते रहे। फलत: ओसवाल वश का विस्तार खूब होता रहा। आज भी लाखों व्यक्ति ओसवाल कहलाते है और इस वंश के गोत्रों की संख्या १४४४ तक पहुच जाने का प्रवाद है। सैकड़ों गोत्र तो आज भी विद्यमान है। ओसवाल, प्राय: सारे हमारे भारत मे ही फैले हुए है।

उपकेशगच्छ प्रबन्ध के अनुसार रत्नप्रभ सूरि जी ने प्रतिबोध देकर यहाँ बहुत बड़ी संख्या मे नये जैन बनाये मे, राजा और मन्त्री भी जैन बन गये थे। इससे पहले वे यहाँ की चण्डिका देवी के उपासक शाक्त थे। और वहाँ देवी मन्दिर मे पशु बलि बड़ी जोरो से होती थी, कहा गया है कि नये जैनी तब अहिसा धर्म के उपासक बन गये तब पशु बलि देना उनके लिए सम्भव ही नहीं रहा अत: उन पर देवी कुपित होकर उपद्रव करने लगी। तब जैनाचार्यो ने देवी को भी समझा-बुझाकर शान्त किया। पशु बलि या मास के बदले मिष्ठान्न व फल-फूल आदि से उसकी पूजा करने का विधान नये जैनियों की ओर से कर दिया अत: आज भी बहुत से ओसवाल घरानों मे नवरात्रि के दिनों मे देवी की पूजा आराधना की जाती है और बहुत से ओसवाल अपने बालकों के झडूले आदि उतारने के लिए ओसिया की यात्रा भी करने जाते रहते है। उस चाण्डिका देवी का नया नाम जैन आचार्य ने सच्चिका रख दिया और इसी नाम का उल्लेख करते हुए कई स्तुति श्लोक भी बनाये गए। और उस देवी की अन्य मूर्तियाँ स्थापित व प्रतिष्ठित की गई।

कुछ वर्ष पहले मुझे कुछ हस्तलिखित पत्र ऐसे भी मिले थे जिनमे एक पत्र में ओसवालो की उत्पत्ति का का उल्लेख करते हुए लिखा था।

"× × ऊहड ओसिया बसाई। सवत् १०११ दसँइ-ग्यारोत्तरै ओसिया माता सुप्रसन्न थई ओसवंसनी थापना की थी। सं. १०१७ तरै श्रीवीरप्रासाद ओहडसा कराण्यो, ते आज वर्तमान कालै तीर्थ छई। देहरानी प्रसस्तिमांहिसु विस्तर लिख्योछई। धर्मराज (रत्नप्रभसूरि)भट्टारकाना सूर प्रतिबोध्या इति शेठ ५ ॥"

इस उल्लेख के अनुसार तो सम्वत १०१७ में यहाँ का महावीर मन्दिर बनाया गया था। इसमें सम्वत १०११ में ओसवाल वंश की स्थापना का उल्लेख किया गया है। वह मन्दिर बनाने का न होकर जीर्णोद्धार का सूचक है।

प्रशस्ति के सम्वत के आधार पर ही श्री हीरउदय के शिष्य नयप्रमोद कवि ने ओसिया वीर स्तवन सम्वत १७१२ में बनाया है। उसमें सम्वत १०१७ के माघ वदी ८ को मन्दिर बनाकर उसमे मूर्ति प्रतिष्ठित करने का उल्लेख है, पर साथ ही नय प्रमोद के स्तवन में इसकी प्राचीनता का भी उल्लेख मिलता है। उसके अनुसार ओसिया के वीर मन्दिर की प्रतिमा मूलतः सम्प्रति राजा ने बालू की बनवाई थी। उसकी पूजा करने के बाद आसातना के भय से उस महावीर मूर्ति को भण्डारित कर दी गई और वह ११६४ वर्षो तक जमीन में ही रही। फिर ऊहड ने जब ओसिया नगर बनाया और रत्नप्रभ सूरि ने ऊहड के पुत्र को संकट से बचाकर जैनी बनाया, तब इस मूर्ति को जमीन में से निकाला गया। पहले तो महादेव के मन्दिर मे रखी गई, फिर स्वतन्त्र जैन मन्दिर बन गया तब उसमें स्थापित कर दी गई। कवि नय प्रमोद ने लिखा है कि १७५९ वर्ष की पुरानी इस वीर प्रतिमा को देखकर बड़ा आनन्द होता है। पर कवि की ये बातें सुनी-सुनायी या प्रचलित प्रवाह के आधार पर लिखित है अतः सम्प्रति के बनाने का उल्लेख जैसे अन्य बहुत सी मूर्तियों के लिए किया जाता है, वैसे ही इस मूर्ति के लिए कर दिया गया है। सम्प्रति के समय का भी कवि ने जो उल्लेख किया है, वह इतिहास को कुछ मेल नहीं खाता।

उपरोक्त विवरण इस उल्लेख मे देने का मतलब यही है कि ओसियां का महावीर मन्दिर काफी पुराना नवीं शताब्दी के लगभग का है। उसके सम्बन्ध मे समय-समय पर बहुत सी किवदन्तिया जुडती गई, कई तरह की मान्यताएं बन गई। पर ऐतिहासिक दृष्टि से भी राजस्थान के प्राचीन महावीर मन्दिरो में भी ओसिया के इस महावीर मन्दिर का विशिष्ट स्थान है, यह तो मानना ही पड़ेगा। ओसवाल वंश का उत्पत्ति स्थान होने के कारण ओसिया का वैसे भी बहुत महत्त्व है।

ओसियां गांव वर्तमान मे छोटा सा है पर वहां के कई जैनेतर मन्दिर भी बहुत प्राचीन और कलापूर्ण है अतः कला की दृष्टि से उनका विशेष महत्त्व है। जैनेतर मन्दिरो के सम्बन्ध में राजस्थान पुरातत्त्व विभाग के डायरेक्टर श्री रत्नचन्द्र अग्रवाल आदि के कई लेख प्रकाशित हो चुके है। राजस्थान की प्रचीन मन्दिर व स्थापत्य कला का यहाँ बड़े सुन्दर रूप में दर्शन होता है।

ओसियाँ स्टेशन जो जोधपुर से फलौदी जाने वाली रेलवे लाइन के बीच मे पड़ता है। ओसिया में जैन विद्यालय होने के कारण यात्रियों को वहाँ ठहरने और खाने की कोई असुविधा नही है।

●

मृत्यु पर दान

स्व० सेठ ज्ञानचन्द्र जैन (लखनऊ किराना कं०) के निधन पर निकाले गये दान द्रव्य में से बीस रुपये उनके सुपुत्र कैलाशचन्द्र जैन ने अनेकान्त पत्र को दान में दिये।

धन्यवाद !

मन्त्री

विदिशा से प्राप्त जैन प्रतिमायें एवं गुप्त नरेश रामगुप्त

शिवकुमार नामदेव

मध्य प्रदेश के महत्त्वपूर्ण प्राचीन ऐतिहासिक नगर विदिशा के निकट दुर्जनपुर ग्राम से कुछ वर्ष पूर्व जैन धर्मके ३ लेख एवं कुछ प्रतिमाएँ प्राप्त हुई थीं। भारतीय इतिहास विशेषकर गुप्त काल के इतिहास मे इन प्रतिमाओं का महत्वपूर्ण स्थान है।

गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त की मृत्यु के पश्चात् इस विशाल गुप्त साम्राज्य का उत्तराधिकारी कौन हुआ, इस विषय में विद्वानो ने भिन्न-भिन्न मत प्रकट किये थे। अर्द्धशताब्दी से भी अधिक समय तक भारतीय इतिहास मे रामगुप्त की ऐतिहासिकता सर्वमान्य नही थी। किन्तु विदिशा से प्राप्त इन जैन प्रतिमाओ ने उस विवाद को सुलझाने मे महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

रामगुप्त का ऐतिहासिक विवरण

प्रमाणों से ज्ञात होता है कि गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र रामगुप्त जो गुप्त वश के महान शासक चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का ज्येष्ठ भ्राता था सिहासनारूढ हुआ। उसके काल मे शको का आक्रमण हुआ और रामगुप्त पराजित होकर अपनी पत्नी ध्रुवदेवी को शक नरेश को सौपने को बाध्य हुआ। परन्तु रामगुप्त के ज्येष्ठ भ्राता चन्द्रगुप्त ने इस बात को सहन न किया। वह स्वयं ध्रुवदेवी का वेष धारण कर शक नरेश के खेमे मे गया और शक नरेश का वध कर दिया। तत्पश्चात् अपने ज्येष्ठ भ्राता को मारकार उसकी पत्नी ध्रुवदेवी से विवाह कर लिया।

उपरोक्त ऐतिहासिक विवरण का वर्णन विशाखदत्त द्वारा रचित 'देवी चन्द्रगुप्तं' नामक नाटक से प्राप्त होता है। इस नाटक के कुछ अंश हेमचन्द्र के शिष्य रामचन्द्र-गुणचन्द्रकृत 'नाट्य दर्पण' मे प्राप्त होते है। जिससे ज्ञात होता है कि "रामगुप्त समुद्रगुप्त के पश्चात् राजा बना जिसने ध्रुवस्वामिनी से विवाह किया। यही स्त्री बाद में चन्द्रगुप्त की रानी बनी। उपरोक्त ऐतिहासिक कथा का वर्णन बाणकृत 'हर्ष चरित', हर्ष चरित पर शंकराचार्य की टीका, राजशेखर कृत 'काव्य मीमांसा', धारा नरेश भोज के 'शृंगार प्रकाश' एवं अब्दुल हसन अली के 'मुजमलुत तवारीख' से भी प्राप्त होता है।

साहित्यिक साक्ष्यों के अतिरिक्त अभिलेखीय एवं मुद्रा सम्बन्धी साक्ष्य भी इस कथा की पुष्टि करते हैं। परन्तु अधिकांश विद्वान रामगुप्त की ऐतिहासिकता का ठोस प्रमाण के अभाव में विरोध करते थे। अभी तक रामगुप्त की ऐतिहासिकता को स्वीकार न करने का प्रमुख कारण पुरातात्विक साक्ष्यों का अभाव था। परन्तु पिछले कुछ वर्षों मे रामगुप्त की जो मुद्रायें ताल बेहट (झाँसी) एरण एवं बेस नगर (विदिशा) आदि से प्राप्त हुई है, वे उसे गुप्त सम्राट सिद्ध करती है।

रामगुप्त की ऐतिहासिकता के विरोध में जो मत प्रस्तुत किये गये है उनमे एक उसकी स्वर्ण मुद्रा की प्राप्ति का न होना भी है। परन्तु जैसा कि हमे ज्ञात है कि रामगुप्त का शासन अल्पकालीन एवं अशान्तिपूर्ण था, अतः इस कारण वह स्वर्णमुद्रा का प्रचलन न कर सका हो तो कोई आश्चर्य की बात नही होनी चाहिए। विरोधियों का दूसरा तर्क यह है कि रामगुप्त की मुद्राओ पर भिन्न-भिन्न नाम मिलते है तथा वे भिन्न-भिन्न प्रकार की है, इसके अतिरिक्त मुद्राओं पर उसके चित्र नहीं मिलते।

इन विरोधों के अन्तर में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि एक ओर तो यह स्थानीय प्रभाव का कारण हो सकता है और दूसरी ओर उस अशातिकाल के मुद्राकारों की कार्य अकुशलता मानी जाती है।

समस्याओं के निराकरण में लेख युक्त जैन प्रतिमाओं का योगदान :

विदिशा के निकट दुर्जनपुर ग्राम मे मिली इन लेख

युक्त तीन जैन प्रतिमाओं में से एक प्रतिमा अर्हंत पुष्पदंत की तथा शेष दो जैन धर्म के आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभ की हैं। प्रत्येक प्रतिमा में पादपीठ पर चार पंक्तियों का लेख उत्कीर्ण है। ऐतिहासिक दृष्टि से इन लेखों का महत्वपूर्ण योगदान है। यद्यपि अभिलेख तिथी हीन है परन्तु इनके अक्षर चन्द्रगुप्त द्वितीय के सांची लेख से साम्य रखते है। लिपि शास्त्रीय अध्ययन के दृष्टिकोण से हम इन्हें ४ सदी ई० में रख सकते है।

अभिलेख में हमें महाराजाधिराज श्री रामगुप्त अंकित मिलता है। परन्तु लेख में उसके वंशादि का कोई विवरण प्राप्त नहीं होता है। परन्तु लिपि एवं प्रतिमा शास्त्रीय अध्ययन की दृष्टि से इस नरेश को हम गुंप्त वंशीय शासक रामगुप्त मान सकते है। इस नरेश का शासन विदर्भ तक विस्तृत था यह उपरोक्त लेखों की प्राप्ति स्थान से सिद्ध होता है। उपरोक्त तीनों जैन प्रतिमा लेख गुप्त सम्राट रामगुप्त के सर्व प्रथम अभिलेखीय साक्ष्य है तथा इस लेख पर उल्लखित विरुद्ध 'महाराजाधिराज श्री राम–गुप्त' उसे गुप्त सम्राट सिद्ध करते है इसके पूर्व रामगुप्त के सम्बन्ध मे जो यह मान्यता थी कि वह गुप्त सम्राट नहीं अपितु मालवा का स्थानीय शासक था, इस भ्राति का अंत हो जाता है।

उपरोक्त जैन धर्म की लेख युक्त प्रतिमाओ से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि यद्यपि गुप्त सम्राट वैष्णव धर्मावलम्बी थे तथा 'परमभागवत' विरुद धारण करते थे उनमें पर्याप्त मात्रा मे धर्म के प्रति सहिष्णुता थी। इन प्रतिमाओं की विदिशा मे प्राप्ति इस बात की ओर 'इंगित करती है कि ४ सदी ई० मे मालवा में जैन धर्म का अच्छा प्रसार था।

जहां तक लक्षण शास्त्रीय अध्ययन का प्रश्न है उपरोक्त तीन प्रतिमाओं मे से दो जैन धर्म के आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभ की तथा एक अर्हंत पुष्पदंत की है। यद्यपि मूर्तियाँ काफी भग्न हो गई है परन्तु उनका कलात्मक वैभव बरवस ही कलाप्रेमियों को अपनी ओर आकर्षित किए बिना नही रहता। चन्द्रप्रभ की प्रथम मूर्ति के दक्षिण कर्ण में कड़ा एवं वक्ष पर श्रीवत्स चिन्हांकित है। मूर्ति ध्यानावस्था मे पद्मासनारूढ़ है मूर्तितल पर मध्य में चन्द्र एवं दोनों ओर सिह की आकृतियां बनी हुई हैं। मस्तक के पीछे भामण्डल है जिसका मात्र अर्धभाग ही शेष है। चन्द्रप्रभकी द्वितीय प्रतिमा का मुखभाग भग्न है पृष्ठभाग में तेजोमण्डल है। पादपीठ पर मध्य मे चक्र एवं दोनों ओर मूर्ति के चामरधारी उत्कीर्ण है। तृतीय प्रतिमा अर्हंत पुष्पदंत की हैं जो उपरोक्त प्रतिमाओ की ही तरह है। तीनों प्रतिमाओं के पादपीठ पर चक्र उत्कीर्ण किए गए हैं। तीर्थंकर प्रतिमाओं में उनके लांछन उत्कीर्ण नहीं किए गए है।

निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि विदिशा से प्राप्त लेख युक्त इन जैन प्रतिमाओं ने भारतीय इतिहास की उस समस्या को कि रामगुप्त कौन था, के चले आ रहे लगभग अर्द्धशताब्दी से भी अधिक के इस विवाद को सुलझाने में विशिष्ट योगदान प्रदान किया है। इन प्रतिमाओ से हमें रामगुप्त के प्रथम अभिलेख ज्ञात होते है। प्रतिमाओं में उल्लिखित रामगुप्त का विरुद 'महाराजाधिराज श्री रामगुप्त निःसंदेह गुप्त सम्राट की महानता की ओर इंगित करते है। ●

शान्ति कोई मूर्तिमान् पदार्थ नहीं, वह तो एक निराकुल अवस्था रूप परिणाम है। यदि हमारी इस अवस्था में शरीर से भिन्न आत्म प्रतीति हो गई तो कोई थोड़ी वस्तु नहीं। जब कि अग्नि की छोटी सी भी चिनगारी सघन जंगल को जला सकती है तो आश्चर्य ही क्या यदि शान्ति का एक अंश भी भयानक भव वन को एक क्षण में भस्मसात् कर दे।

—वर्णी वाणी

वीर सेवा मन्दिर विधान का स्मरणपत्र

१. इस सोसाइटी का नाम वीर-सेवा-मन्दिर होगा।

२. सोसाइटी का प्रधान कार्यालय देहली राज्य में रहेगा और शाखायें यथावश्यक भारत के दूसरे स्थानों तथा विदेशों में भी खोली जा सकेंगी।

३. सोसाइटी के उद्देश्य निम्न प्रकार होंगे।

(क) जैन और जैनेतर पुरातत्व सामग्री का अच्छा संग्रह, संकलन और प्रकाशन।

(ख) महत्व के प्राचीन जैन-जैनेतर ग्रन्थो का उद्धार।

(ग) लोक-हितानुरूप नव-साहित्य का सृजन, प्रकटीकरण और प्रचार।

(घ) 'अनेकान्त' पत्रादि द्वारा जनता के आचार विचार को ऊचा उठाने का सुदृढ़ प्रयत्न।

(ङ) जैन साहित्य, इतिहास और तत्वज्ञान-विषयक अनुसन्धानादि कार्यो का प्रकाशन और उनके प्रोत्साहनार्थ वृत्तियो का विधान तथा पुरस्कारादि का आयोजन।

४. अपने उक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सोसाइटी निम्न योजनायें करेगी :

(क) जैन सस्कृति, साहित्य, कला और इतिहास के अध्ययन मे सहायक विभिन्न ग्रंथो, शिलालेखो प्रशस्तियों, मूर्तियों, ताम्रपत्रो, सिक्को, यन्त्रों, स्थापत्य और चित्रकला के नमूनों आदि सामग्री का लाइब्रेरी तथा म्यूज़ियम आदि के रूप मे विशाल संग्रह।

(ख) लुप्तप्राय प्राचीन जैन साहित्य, इतिहास, तत्व ज्ञान, कला और जैन संस्कृति का उसके मूल रूप में अनुसंधान तथा अनुसंधान के आधार पर नये मौलिक साहित्य का निर्माण।

(ग) जैन ग्रन्थों का वैज्ञानिक पद्धति से उपयोगी प्रकाशन।

(घ) देशी तथा विदेशी भाषाओं में जैन ग्रंथों का समुचित अनुवाद।

(ङ) जैन संस्कृति के पुरातन केन्द्रों की खोज।

(च) अनेकान्त और अहिंसा के प्रचारार्थ लोक-हितकारी पैम्फ़लेट व ट्रैक्टों का प्रकाशन।

(छ) जैन साहित्य, इतिहास और संस्कृति सम्बन्धी अनुसंधान एवं नई पद्धति से ग्रंथनिर्माण के कार्यों में अभिरुचि उत्पन्न करने और यथावश्यकता शिक्षण (ट्रेनिग) दिलाने के लिए योग्य विद्वानो को स्कालरशिप (वृत्तियाँ) देना।

(ज) योग्य विद्वानों को उनकी साहित्यिक सेवाओं तथा इतिहासादि-विषयक विशिष्ट खोजों के लिए पुरस्कार या उपहार देना।

(झ) जैन संस्कृति साहित्य इतिहास और पुरातत्वादि विषयक गवेषणाओं के प्रकाशनार्थ सोसाइटी का एक मुखपत्र रहेगा।

(ञ) सोसाइटी के उद्देश्यों में रुचि रखने वाली संस्थाओ व ट्रस्टो का सहयोग प्राप्त करने के लिए उनसे सम्बन्ध स्थापित करना।

५. यह वीर-सेवा-मन्दिर अर्थोपार्जन करने वाली संस्था नही है और इस दृष्टि से वह सब आमदनी जो किसी भी मार्ग से प्राप्त होगी और संस्था की समस्त चल-अचल सम्पत्ति केवल संस्था के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए काम में आएगी और उसका कोई भाग संस्था के सदस्यो में उनके व्यक्तिगत उपयोग के लिए नहीं बांटा जाएगा; वे सब आनरेरी कार्यकर्ता होंगे।

६. प्रथम कार्यकारिणी समिति में निम्न सदस्य होंगे।

क्र. सं.	नाम व पता	पेशा-प्रवृत्ति	पद
१.	पं० जुगलकिशोर मुख्तार, सरसावा (सहारनपुर)	लोकसेवा	सदस्य

२. बा. छोटेलाल जैन, २६ इन्द्र विश्वास रोड़ कलकत्ता-३७ — व्यापार — सदस्य

३. बा. जयभगवान जैन, एडवोकेट पानीपत — वकालत — ,,

४. ला. राजकृष्ण जैन, २३ दरियागंज दिल्ली — प्रापर्टीडीलर — ,,

५. ला. कपूरचन्द जैन, किराचीखाना, कानपुर — टिम्बर मर्चेंट — ,,

६. ला. जुगलकिशोर कागजी, चावड़ी बाजार, दिल्ली — पेपर मर्चेन्ट — ,,

७. बा. जिनेन्द्रकिशोर जौहरी, ५४५ एसप्लेनेड रोड, दिल्ली — जौहरी — ,,

८. बा. नेमचन्द वकील, बड़तल्ला, सहारनपुर — वकालत — ,,

९. सेठ छदामीलाल जैन, फिरोजाबाद — मिल मालिक — ,,

१०. डा. श्रीचन्द जैन, संगल, एटा — डाक्टरी — ,,

११. जयवंती देवी जैन नानौता (सहारनपुर) — भूतपूर्व जमीदार — ,,

हम विभिन्न व्यक्ति जिनके नाम नीचे दिए गए है इस बात के इच्छुक है कि उक्त संस्था (सोसाइटी) भारतीय सस्था रजिस्ट्रेशन एक्ट नं० २१ सन् १८६० के अधीन इस स्मरणपत्र के अनुसार रजिस्टर्ड होवे।

क्र.सं.	नाम व पता	पेशावृति	हस्ताक्षर
१.	जुगलकिशोर मुख्तार, सरसावा (सहारनपुर)	लोकसेवा	जुगलकिशोर
२.	छोटेलाल जैन, २६ इन्द्र विश्वास रोड कलकत्ता	व्यापार	छोटेलाल जैन
३.	राजकृष्ण जैन, २३ दरियागंज दिल्ली	व्यापार	राजकृष्ण जैन
४.	जयवन्ती देवी ननौता जिला सहारनपुर	जमीदारी	जयवन्ती
५.	उल्फतराय न. ७/३३ दरियागंज, दिल्ली	सर्राफ	उल्फतराय
६.	प्रेमचन्द जैन, ७/३२ दरियागंज, दिल्ली	दुकानदारी	प्रेमचन्दजैन
७.	दयाचन्द जैन, १९ दरियागंज, दिल्ली	रिटायर्ड रेलवे आफीसर	Dayachand Jain
८.	प्रेमचन्द जैन, २३ दरियगंज	व्यापार	Premchand Jain

वीर सेवामन्दिर की नियमावली (१९७२ में संशोधित)

१. इस सोसायटी का नाम वीर सेवा मन्दिर होगा।

२. सोसायटी का प्रधान कार्यालय भारत की राजधानी दिल्ली रहेगा और शाखायें यथा आवश्यक देश के दूसरे स्थानों तथा विदेशों में भी खोली जा सकेंगी।

३. सोसायटी के उद्देश्य निम्न प्रकार होंगे :

(क) जैन जैनेतर पुरातत्व सामग्री का अच्छा संग्रह, संकलन और प्रकाशन।

(ख) महत्व के प्राचीन जैन-जैनेतर ग्रन्थों का उद्धार।

(ग) लोक-हितानुरूप नव-साहित्य का सृजन, प्रकटीकरण और प्रचार।

(घ) 'अनेकान्त' पत्रादि द्वारा जनता के आचार विचार को ऊंचा उठाने का सुदृढ़ प्रयत्न।

(ङ) जैन साहित्य, इतिहास और तत्व-ज्ञान-विषयक अनुसंधानादि कार्यो का प्रकाशन और उनके प्रोत्तेजनार्थ प्रवृत्तियों का विधान तथा पुरस्कारादि का आयोजन।

४. अपने उक्त उद्देश्यो की पूर्ति के लिए सोसायटी निम्न योजनाएं करेगी :

(क) जैन सस्कृति, साहित्य, कला और इतिहास के अध्ययन मे सहायक विभिन्न ग्रन्थों, शिला लेखो, प्रशस्तियों, मूर्तियों, ताम्रपत्रों, सिक्कों, यन्त्रों, स्थापत्य और चित्रकला के नमूनों आदि सामग्री का लाइब्रेरी तथा म्यूजियम आदि के रूप मे विशाल संग्रह।

(ख) लुप्तप्राय प्राचीन जैन साहित्य, इतिहास तत्व ज्ञान, कला और जैन सस्कृति का उसके मूल रूप मे अनुसंधान तथा अनुसंधान के आधार पर नए मौलिक साहित्य का निर्माण।

(ग) जैन ग्रन्थों का वैज्ञानिक पद्धति से उपयोगी प्रकाशन।

(घ) देशी तथा विदेशी भाषाओं में जैन ग्रन्थों का समुचित अनुवाद।

(ङ) जैन संस्कृति के पुरातन केन्द्रों की खोज।

(च) अनेकान्त और अहिंसा प्रचारार्थ लोक हितकारी पैम्फ्लेट व ट्रैक्टों का प्रकाशन।

(छ) जैन साहित्य, इतिहास और संस्कृति-सम्बन्धी अनुसन्धान और नई पद्धति से ग्रंथ निर्माण के कार्यों में अभिरुचि उत्पन्न करने और यथा आवश्यकता शिक्षण (ट्रेनिंग) दिलाने के लिए योग्य विद्वानों को स्कालरशिप (वृत्तियां) देना।

(ज) योग्य विद्वानों को उनकी साहित्यक सेवाओ तथा इतिहासादि-विषयक विशिष्ट खोजों के लिए पुरस्कार या उपहार देना।

(झ) जैन-जैनेतर संस्कृति, साहित्य, इतिहास और पुरातत्वादि-विषयक गवेषणाओं के प्रकाशनार्थ सोसायटी का एक मुख पत्र रहेगा, जिसका नाम 'अनेकान्त' होगा।

(ञ) सोसायटी के उद्देश्यों में रुचि रखने वाली संस्थाओं व ट्रस्टों का सहयोग प्राप्त करने के लिए उनसे सम्बन्ध स्थापित करना।

५. सदस्यता—

(१) प्रत्येक व्यक्ति जो सोसायटी के उद्देश्यों से सहमत हो और कम से कम १८ वर्ष की अवस्था का हो, सोसायटी का (१) साधारण (२) आजीवन, (३) विशिष्ट अथवा (४) संरक्षक सदस्य बन सकता है।

(२) सदस्य बनने से पूर्व प्रत्येक व्यक्ति को अधोलिखित उपधारा (३) में वर्णित शुल्क निर्धारित आवेदन पत्र के साथ देना होगा।

(३) सदस्यता शुल्क इस प्रकार होगा।

(१) साधारण सदस्य रु. १२ वार्षिक
(२) आजीवन सदस्य रु. २५१ एकबार
(३) विशिष्ट सदस्य रु. १००० एकबार
(४) संरक्षक सदस्य रु. ५००० एकबार

(४) सदस्यता आवेदन पत्र कार्यकारिणी समिति द्वारा स्वीकृत होने पर ही कोई व्यक्ति सोसायटी का सदस्य माना जायगा। यदि चार मास तक उसकी अस्वीकृति न हो तो सदस्यता स्वीकृत समझी जाएगी।

(५) उन विशिष्ट व्यक्तियों को जो सोसायटी के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए विशेष उपयोगी समझे जायें, कार्यकारिणी समिति द्वारा दो वर्ष के लिए निःशुल्क "सम्मानित सदस्य" बनाया जा सकता है। सदस्य बनने पर इन सदस्यों के अधिकार अन्य सदस्यों की भांति ही होंगे।

(६) नए सदस्य कार्यकारिणी द्वारा सदस्यता स्वीकार किए जाने के तीन मास बाद ही मतदान के अधिकारी होगे।

(७) प्रत्येक सदस्य को केवल एक मत देने का अधिकार होगा। दिल्ली राज्य से बाहर रहने वाले सदस्य, प्रतिपत्री (प्राक्सी) द्वारा भी मतदान कर सकते है। प्रतिपत्री को मतदान का अधिकार साधारण पत्र द्वारा दिया जा सकेगा। प्रतिपत्री को सोसायटी का सदस्य होना आवश्यक है।

(८) सदस्यो को सोसायटी के पत्र-पत्रिकायें तथा ट्रैक्ट निःशुल्क तथा अन्य प्रकाशन ३३-१/३% कम मूल्य पर प्राप्त होगे।

(९) साधारण सदस्य वार्षिक शुल्क अग्रिम देंगे। यदि तीन माह तक शुल्क प्राप्त न हो तो उनको वोट देने का अधिकार नही होगा। कार्यालय साधारणतः शुल्क समाप्ति की सूचना भेजेगा।

(१०) यदि किसी सदस्य का आचरण अथवा गतिविधि सोसायटी के हितों के प्रतिकूल अथवा सोसायटी के उद्देश्यो की पूर्ति या कार्य में बाधक समझे जाएँ तो उसकी सदस्यता कार्यकारिणी के प्रस्ताव पर आम सभा में ३।५ बहुमत से, समाप्त की जा सकती है।

(११) किसी सदस्य के निधन पर उसकी सदस्यता स्वयमेव ही समाप्त हो जाएगी।

(१२) कोई भी सदस्य, त्यागपत्र देकर सोसायटी की सदस्यता छोड़ सकता है।

६. कार्यकारिणी समिति।

(१) सोसायटी के उद्देश्यों, योजनाओं व कार्यक्रमों की व्यवस्था करने के लिए आमसभा द्वारा एक कार्यकारिणी समिति चुनी जाएगी जिसमे अधिक से अधिक २१ सदस्य होंगे। (उप धारा (४) मे वर्णित अन्य ट्रस्टों से लिए गए सदस्य इनके अतिरिक्त होंगे)। इनमें से एक तिहाई प्रतिवर्ष अवकाश प्राप्त करेंगे और उनके स्थान पर नए सदस्य चुने जायेंगे। अवकाश प्राप्त सदस्य भी फिर चुने जा सकेंगे।

नोट : पहले दो वर्षों में लाटरी के अनुसार सदस्य अवकाश प्राप्त करेंगे।

(२) विशेष आवश्यकता पड़ने पर कार्यकारिणी समिति स्वय अधिक से अधिक पाँच और सदस्य कार्यकारिणी समिति मे सहयोजित (कोआप्ट) कर सकती है। यह सहयोजन अगले चुनाव पर समाप्त हो जायेंगे।

(३) किसी भी कारण से वर्ष के मध्य में स्थान रिक्त होने पर उसकी पूर्ति कार्यकारिणी स्वयं करेगी।

(४) चुने गए सदस्यों के अतिरिक्त, यदि किसी अन्य ट्रस्ट का वीर सेवा मन्दिर में विलीनीकरण होता है तो प्रत्येक ट्रस्ट के अधिक से अधिक पांच ट्रस्टी भी कार्यकारिणी के सदस्य बनाए जा सकते है।

(५) कार्यकरिणी द्वारा समय-समय पर उसको परामर्श देने अथवा किसी कार्य विशेष को सम्पन्न करने के लिए उप समितियाँ बनाई जा सकती है।

(६) कार्यकारिणी समिति की बैठकों के लिए कोरम कम से कम सात होगा। परन्तु स्थगित मीटिंग के लिए कोरम की आवश्यकता नही होगी बशर्ते कि स्थगित मीटिंग का दुबारा नोटिस दिया जाए और उसके एजेण्डे में कोई नया विषय न हो। स्थगित मीटिंग में कम से कम ३ सदस्य अवश्य उपस्थित होने चाहिए।

(७) साधारणतः कार्यकरिणी समिति की बैठक के लिए तीन दिन का नोटिस दिया जाएगा परन्तु विशेष परिस्थितियों में बैठक अल्प नोटिस पर भी बुलाई जा सकती है।

(८) कार्यकारिणी समिति की वर्ष में कम से कम दो बैठक अवश्य होंगी।

७. पदाधिकारी

(१) आमसभा में निर्वाचित कार्यकारिणी के द्वारा अपने सदस्यों में से तीन वर्ष के लिए निम्नलिखित पदाधिकारी चुने जायेंगे :
- (क) अध्यक्ष
- (ख) उपाध्यक्ष (एक या अधिक)
- (ग) महासचिव
- (घ) सचिव (एक या अधिक)
- (ङ) कोषाध्यक्ष।

नोट : प्रथम दो वर्षमें लाटरीके अनुसार अवकाश प्राप्त करने पर पदाधिकारी भी स्वय ही अवकाश प्राप्त कर लेंगे चाहे उन्होने ३ वर्षकी कालावधि पूर्ण न की हो। उनके स्थान पर नए पदाधिकारी पुनः तीन वर्ष के लिए चुने जाएंगे।

(२) अध्यक्ष सोसायटी के उद्देश्यो और योजनाओं की समुचित प्रगति के लिए उसके समस्त कार्यों की देखभाल करेंगे, प्रेरणा देंगे और नियन्त्रण रखेंगे तथा कार्यकारिणी समिति की बैठकों और साधारण सभा व अधिवेशनों की अध्यक्षता करेंगे।

(३) अध्यक्ष की अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष उपर्युक्त दायित्वो का निर्वाह करेंगे।

(४) महासचिव (क) अध्यक्ष के निर्देशानुसार सोसायटी के प्रस्तावों को कार्यरूप में परिणत करेंगे, (ख) सोसायटी की ओर से सब प्रकार का पत्र व्यवहार करेंगे, (ग) सोसायटी के कार्यालय का नियन्त्रण और उसके विभिन्न विभागों का नियन्त्रण करेंगे तथा उसके सम्पूर्ण रिकार्ड को सुरक्षित रखेंगे। (घ) सोसायटी की सम्पत्ति का समुचित प्रबन्ध

करेंगे। (ङ) यथा आवश्यक कार्यकारिणी समिति की तथा साधारण सभा की बैठक बुलायेंगे और इन बैठकों की कार्यवाही को उचित रीति से रजिस्टर में दर्ज करेंगे।

(५) सचिव, महासचिव के कार्यों में सहयोग देंगे और उनकी अनुपस्थिति मे उनके दायित्वों का निर्वाह् करेंगें।

(६) कोषाध्यक्ष नियमानुसार सोसायटी की निधि व सब प्रकार की आय को सुरक्षित रखेंगे। सोसायटी के खर्च के लिए महासचिव को स्वीकृत रकम देंगे, आय-व्यय का समुचित हिसाब रखेंगे और सब बाउचरों और फाइलों को सुरक्षित रखेंगे।

(७) अध्यक्ष यदि चाहे तो किसी भी अकर्त्तव्य-निष्ठ पदाधिकारी से कार्यकारिणी के अनुमोदन पर त्यागपत्र मांग सकते है अथवा उसको पद से च्युत कर सकते है।

८. साधारण सभा

(१) साधारण सभा वर्ष में एक बार महासचिव द्वारा बुलाई जायगी।

(२) विशेष सभा आवश्यकता पढ़ने पर अध्यक्ष या महासचिव द्वारा अथवा कम से कम दस सदस्यो के लिखित अनुरोध पर बुलाई जायगी।

(३) साधारण सभा का कोरम प्रपत्रियों के अतिरिक्त सोसायटी के कुल वैध सदस्यों की सख्या का कम से कम छठा भाग अथवा ५१ सदस्य (जो भी कम हों) होगा। स्थगित मीटिंग के लिए कोरम की आवश्यकता नहीं होगी। परन्तु उसमें कम से कम पांच सदस्य उपस्थित होने चाहिए।

(३) साधारण सभा के लिए कम से कम १० दिन का नोटिस दिया जाना आवश्यक है।

(४) सोसायटी की नियमावली मे परिवर्तन साधारण सभा में उपस्थित सदस्यो तथा प्रतिपत्रियों की संख्या के कम से कम ३/५ बहुमत से किया जा सकेगा।

(५) लेखा निरीक्षक की नियुक्ति साधारण सभा द्वारा एक वर्ष के लिए की जाएगी। लेखा निरीक्षक कार्यकारिणी का सदस्य नहीं होगा।

९. निधि, सम्पत्ति तथा कर्मचारी

(१) सोसायटी की समस्त नकदी किसी राजकीय बैंक मे जमा रखी जाएगी। बैंक अकाउण्टों का संचालन अध्यक्ष, महासचिव, सचिव व कोषाध्यक्ष मे से किन्ही दो के हस्ताक्षरो से किया जाएगा।

(२) साधारणतः एक हजार से अधिक रुपया कोषाध्यक्ष, अपने पास नही रखेंगे।

(३) वार्षिक बजट महासचिव पेश करके कार्यकारिणी समिति से पास करायेंगे। कार्यकारिणी के द्वारा पास किए गए व्यय के अतिरिक्त एक बार मे अधिक से अधिक रु० २०० तक व्यय महासचिव द्वारा किया जा सकेगा जिसकी सूचना अगली कार्यकारिणी मे दी जाएगी।

(४) सोसायटी का वित्तीय वर्ष एक जुलाई से तीस जून तक होगा।

(५) सोसायटीकी समस्त चल अचल सम्पत्ति की देख भाल महासचिव के अधीन होगी और कानूनी कार्रवाई महासचिव अथवा सचिव के हस्ताक्षरो से की जाएगी। किसी विशेष कार्य के लिए कार्यकारिणी इनके अतिरिक्त भी किसी व्यक्ति को नियुक्त कर सकती है।

(६) सभी कर्मचारियों की नियुक्ति अथवा सेवा-मुक्ति अध्यक्ष की अनुमति से महासचिव उस वेतनमान के अन्तर्गत करेंगे जो कार्यकारिणी से पास किया गया हो।

(७) वीर सेवा मन्दिर दि सोसायटीज रजिस्ट्रेशन एक्ट १८६० के अर्न्तगत क्रमांक एस/७५७-१९५४-५५ पर पंजीकृत है और यह नियमावली उक्त एक्ट की सीमाओं का उल्लंघन नहीं करती। उक्त एक्ट की धारायें ४,५,१२, १३ और १४ वीर सेवा मन्दिर पर विशेषतः लागू मानी जाएंगी।

वीर सेवा मन्दिर के वर्तमान पदाधिकारी
तथा
कार्यकारिणी समिति के सदस्य

अध्यक्ष	श्री (साहू) शान्ति प्रसाद जैन, टाईम्स हाऊस, बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली।
उपाध्यक्ष (१)	श्री शाम लाल जैन (ठेकेदार), ४-६, टोडरमल रोड, नई दिल्ली।
(२)	श्री इन्दर सैन जैन, गली मुरारीलाल, ४ दरियागंज, दिल्ली।
महासचिव	श्री महेन्द्र सेन जैनी, मनोरंजन भवन, ११ दरियागंज, दिल्ली।
सचिव (कार्यालय)	श्री ओमप्रकाश जैन, २३ दरियागंज, दिल्ली।
सचिव (सांस्कृतिक कार्य)	श्री गोकुल प्रसाद जैन, ३ रामनगर, नई दिल्ली।
सचिव (पुस्तकालय)	श्री हेमचन्द जैन, १३।२६ शक्तिनगर, दिल्ली-७।
कोषाध्यक्ष	श्री नन्हे मल जैन, ७।३३ दरियागंज, दिल्ली।
सदस्य	श्री उल्फतराय जैन, ७।३३ दरियागंज, दिल्ली।
	श्री पन्नालाल जैन, ३८७२ चर्खेवालान, चावड़ी बाजार, दिल्ली।
	श्री बाबूलाल जैन, 'सन्मति विहार', २ दरियागंज, दिल्ली।
	श्री पारस दास जैन (मोटर वाले), नावल्टी सिनेमा के पीछे, दिल्ली।
	श्री यश पाल जैन, ७।८ दरियागंज, दिल्ली।
	श्रीमती जयवन्ती देवी, जैन महिलाश्रम, दरियागंज, दिल्ली।
	डा० गोकुल चन्द जैन, ४६ विजय नगर कालोनी, भेलुपुर, वाराणसी।
	श्री (राय साहब) जोती प्रसाद जैन, १४ लिंक रोड, जंगपुरा एक्सटेन्शन, नई दिल्ली।
	श्री श्रीपाल जैन, २६४४ गली पीपल वाली, धर्मपुरा, दिल्ली।
	श्री रमेशचन्द जैन, २४६६ सीताराम बाजार, दिल्ली-६।
	श्री लक्ष्मी चन्द जैन, भारतीय ज्ञान पीठ, बी० ४५-४७ कनाट प्लेस, नई दिल्ली।
	श्री शान्तिलाल जैन, २।४, अन्सारी रोड, दरियागंज, दिल्ली।
	श्री शील चन्द जैन, मित्र भवन, ११ दरियागंज, दिल्ली।

R. N. 10591/62

वीर-सेवा-मन्दिर के उपयोगी प्रकाशन

पुरातन जैनवाक्य-सूची : प्राकृत के प्राचीन ४६ मूल-ग्रन्थो की पद्यानुक्रमणी, जिसके साथ ४८ टीकादि ग्रन्थों मे उद्धृत दूसरे पद्यों की भी अनुक्रमणी लगी हुई है। सब मिलाकर २५३५३ पद्य-वाक्यों की सूची। संपादक मुख्तार श्री जुगलकिशोर जी की गवेषणापूर्ण महत्त्व की ७० पृष्ठ की प्रस्तावना से अलंकृत, डा० कालीदास नाग, एम. ए., डी. लिट् के प्राक्कथन (Forward) और डा० ए. एन. उपाध्ये एम. ए., डी. लिट्. की भूमिका (Introduction) से भूषित है, शोध-खोज के विद्वानो के लिए अतीव उपयोगी, बड़ा साइज, सजिल्द। १५-००

आप्तपरीक्षा : श्री विद्यानन्दाचार्य की स्वोपज्ञ सटीक अपूर्व कृति,आप्तों की परीक्षा द्वारा ईश्वर-विषयक सुन्दर विवेचन को लिए हुए, न्यायाचार्य पं दरबारीलालजी के हिन्दी अनुवाद से युक्त, सजिल्द। ८-००

स्वयम्भूस्तोत्र : समन्तभद्रभारती का अपूर्व ग्रन्थ, मुख्तार श्री जुगलकिशोरजी के हिन्दी अनुवाद, तथा महत्त्व की गवेषणापूर्ण प्रस्तावना से सुशोभित। २-००

स्तुतिविद्या : स्वामी समन्तभद्र की अनोखी कृति, पापो के जीतने की कला, सटीक, सानुवाद और श्री जुगलकिशोर मुख्तार की महत्त्व की प्रस्तावनादि से अलंकृत सुन्दर जिल्द-सहित। १-५०

अध्यात्मकमलमार्तण्ड : पचाध्यायीकार कवि राजमल की सुन्दर आध्यात्मिक रचना, हिन्दी-अनुवाद-सहित १-५०

युक्त्यनुशासन : तत्त्वज्ञान से परिपूर्ण, समन्तभद्र की असाधारण कृति, जिसका अभी तक हिन्दी अनुवाद नही हुआ था। मुख्तारश्री के हिन्दी अनुवाद और प्रस्तावनादि से अलंकृत, सजिल्द। ... १.२५

श्रीपुरपार्श्वनाथस्तोत्र : आचार्य विद्यानन्द रचित, महत्त्व की स्तुति, हिन्दी अनुवादादि सहित। .७५

शासनचतुस्त्रिंशिका : (तीर्थपरिचय) मुनि मदनकीर्ति की १३वीं शताब्दी की रचना, हिन्दी-अनुवाद सहित .७५

समीचीन धर्मशास्त्र : स्वामी समन्तभद्र का गृहस्थाचार-विषयक अत्युत्तम प्राचीन ग्रन्थ, मुख्तार श्रीजुगलकिशोर जी के विवेचनात्मक हिन्दी भाष्य और गवेषणात्मक प्रस्तावना से युक्त, सजिल्द। ... ३-००

जैनग्रन्थ-प्रशस्ति संग्रह भा० १ : संस्कृत और प्राकृत के १७१ अप्रकाशित ग्रन्थो की प्रशस्तियो का मंगलाचरण सहित अपूर्व संग्रह, उपयोगी ११ परिशिष्टो और प० परमानन्द शास्त्री की इतिहास-विषयक साहित्य परिचयात्मक प्रस्तावना से अलंकृत, सजिल्द। ४-००

समाधितन्त्र और इष्टोपदेश : अध्यात्मकृति परमानन्द शास्त्री की हिन्दी टीका सहित ४-००

अनित्यभावना : आ० पद्मनन्दी की महत्त्व की रचना, मुख्तारश्री के हिन्दी पद्यानुवाद और भावार्थ सहित .२५

तत्त्वार्थसूत्र : (प्रभाचन्द्रीय)—मुख्तारश्री के हिन्दी अनुवाद तथा व्याख्या से युक्त। ... .२५

श्रवणबेलगोल और दक्षिण के अन्य जैन तीर्थ। १-२५

महावीर का सर्वोदय तीर्थ, **समन्तभद्र विचार-दीपिका**, **महावीर पूजा** बाहुबली पूजा प्रत्येक का मूल्य .१६

अध्यात्मरहस्य : प० आशाधर की सुन्दर कृति, मुख्तार जी के हिन्दी अनुवाद सहित। ... १-००

जैनग्रन्थ-प्रशस्ति संग्रह भा० २ : अपभ्रंश के १२२ अप्रकाशित ग्रन्थो की प्रशस्तियो का महत्त्वपूर्ण संग्रह। पचपन ग्रन्थकारो के ऐतिहासिक ग्रंथ-परिचय और परिशिष्टों सहित। सं. पं० परमानन्द शास्त्री। सजिल्द। १२-००

न्याय-दीपिका : आ. अभिनव धर्मभूषण की कृति का प्रो० डा० दरबारीलालजी न्यायाचार्य द्वारा स० अनु०। ७-००

जैन साहित्य और इतिहास पर विशद प्रकाश : पृष्ठ संख्या ७४० सजिल्द ५-००

कसायपाहुडसुत्त : मूल ग्रन्थ की रचना आज से दो हजार वर्ष पूर्व श्री गुणधराचार्य ने की, जिस पर श्री यतिवृषभाचार्य ने पन्द्रह सौ वर्ष पूर्व छह हजार श्लोक प्रमाण चूर्णिसूत्र लिखे। सम्पादक प हीरालालजी सिद्धान्त शास्त्री, उपयोगी परिशिष्टों और हिन्दी अनुवाद के साथ बड़े साइज के १००० से भी अधिक पृष्ठों में। पुष्ट कागज और कपड़े की पक्की जिल्द। २०-००

Reality : आ० पूज्यपाद की सर्वार्थसिद्धि का अंग्रेजी में अनुवाद बड़े आकार के ३०० पृ. पक्की जिल्द ६-००

जैन निबन्ध-रत्नावली : श्री मिलापचन्द्र तथा रतनलाल कटारिया ५-००

प्रकाशक—वीरसेवा मन्दिर के लिए, रूपवाणी प्रिंटिंग हाउस, दरियागंज, दिल्ली से मुद्रित।

त्रैमासिक शोध पत्रिका

अनेकान्त
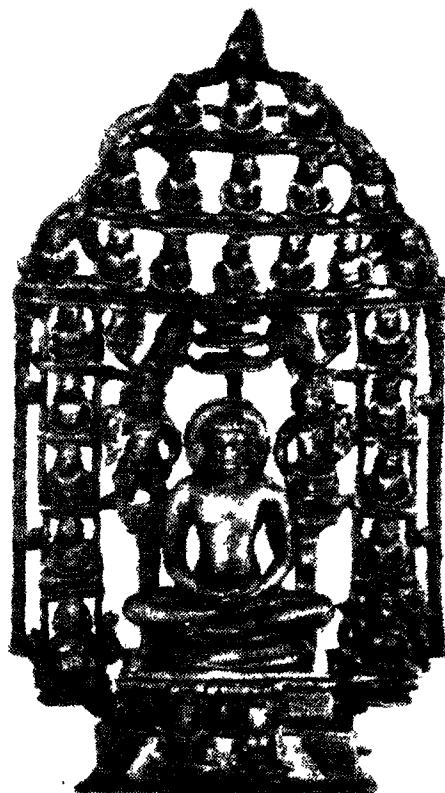
सम्पादक-मण्डल

डा० आ. ने. उपाध्ये

डा० प्रेमसागर जैन

यशपाल जैन

गोकुल प्रसाद जैन

वर्ष २७

किरण ३

नवम्बर १९७४

प्रकाशक

वीर सेवा मन्दिर २१, दरियागंज, दिल्ली

विषय-सूची

अनेकान्त का वार्षिक मूल्य ६) रुपया

एक किरण का मूल्य १ रुपया २५ पैसा

वीर-सेवा-मन्दिर का अभिनव प्रकाशन

जैन लक्षणावली (दूसरा भाग)

चिर प्रतीक्षित जैन लक्षणावली (जैन पारिभाषिक शब्दकोश) का द्वितीय भाग भी छप चुका है। इसमें लगभग ४०० जैन ग्रन्थों से वर्णानुक्रम के अनुसार लक्षणों का संकलन किया गया है। लक्षणों के संकलन में ग्रन्थकारों के कालक्रम को मुख्यता दी गई है। एक शब्द के अन्तर्गत जितने ग्रन्थों के लक्षण सगृहीत हैं, उनमें से प्रायः एक प्राचीनतम ग्रन्थ के अनुसार प्रत्येक शब्द के अन्त में हिन्दी अनुवाद भी दे दिया गया है। जहां विवक्षित लक्षण में कुछ भेद या हीनाधिकता दिखी है वहां उन ग्रन्थों के निर्देश के साथ २-४ ग्रन्थों के आश्रय से भी अनुवाद किया गया है। इस भाग में केवल 'क से प' तक लक्षणों का संकलन किया जा सका है। थोड़े ही समय में इसका तीसरा भाग भी प्रगट हो रहा है। प्रस्तुत ग्रन्थ संशोधकों के लिए तो विशेष उपयोगी है ही, साथ ही हिन्दी अनुवाद के रहने से वह सर्वसाधारण के लिए भी उपयोगी है। द्वितीय भाग बड़े आकार में ४१८+८+२२ पृष्ठों का है। कागज पुष्ट व जिल्द कपड़े की मजबूत है। मूल्य २५-०० रु० है। यह प्रत्येक यूनीवर्सिटी, सार्वजनिक पुस्तकालय एवं मन्दिरों में संग्रहणीय है। ऐसे ग्रन्थ बार-बार नहीं छप सकते। समाप्त हो जाने पर फिर मिलना अशक्य हो जाता है।

जैन लक्षणावली का तृतीय भाग मुद्रणाधीन है।

प्राप्तिस्थान

वीर सेवा मन्दिर, २१ दरियागंज,
दिल्ली-६

अनेकान्त में प्रकाशित विचारों के लिए सम्पादक-मण्डल उत्तरदायी नहीं है। —सचिव

ओम् अर्हम्

अनेकान्त

परमागमस्य बीजं निषिद्धजात्यन्धसिन्धुरविधानम् ।
सकलनयविलसितानां विरोधमथनं नमाम्यनेकान्तम् ॥

वर्ष २७ किरण ३ | वीर-सेवा-मन्दिर, २१ दरियागंज, दिल्ली-६
वीर-निर्वाण संवत् २५००, वि० सं० २०३१ | नवम्बर १९७४

ऋषभ-स्तोत्रम्

कम्मकलंकचउक्केणट्ठे णिम्मलसमाहिभूईए ।
तुह णाण-दप्पणेच्चिय लोयालोयं पडिप्फलियं ॥१९॥
आवरणाईणितए समूलमुम्मूलियाइ दट्ठूणं ।
कम्मचउक्केण मुयं व णाह भीएण सेसेण ॥२०॥
णाणामणिणिम्माणे देव ठिओ सहसि समवसरणम्मि ।
उवरिं व संणिविट्ठो जियाण जोईण सव्वाणं ॥२१॥

—मुनि पद्मनन्दि ।

अर्थ—हे भगवन् ! निर्मल ध्यानरूप सम्पदा से चार घातिया कर्मरूप कलंक के नष्ट हो जाने पर प्रगट हुए आपके ज्ञान (केवल ज्ञान) रूप दर्पण में ही लोक और अलोक प्रतिबिम्बित होने लगे थे ॥१९॥ हे नाथ ! उस समय ज्ञानावरणादि चार घातिया कर्मों को समूल नष्ट हुए देख कर शेष (वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र) चार अघातिया कर्म भय से ही मानो मरे हुए के समान (अनुभाग से क्षीण) हो गए थे ॥२०॥ हे देव ! विविध प्रकार की मणियों से निर्मित समवसरण में स्थित आप जीते गए सब योगियों के ऊपर बैठे हुए के समान सुशोभित होते हैं ॥

विशेषार्थ—भगवान् जिनेन्द्र समवसरण सभा में गन्धकुटी के भीतर स्वभाव से ही सर्वोपरि विराजमान रहते हैं। इसके ऊपर यहां यह उत्प्रेक्षा की गई है कि उन्होंने चूंकि अपनी आभ्यन्तर व बाह्य लक्ष्मी के द्वारा सब ही योगीजनों को जीत लिया था, इसीलिए वे मानों उन सब योगियों के ऊपर स्थित थे ॥२१॥

प्राचीन ऐतिहासिक नगरी : जूना (बाहड़मेर)

□ भूरचन्द जैन, बाड़मेर

राजस्थान का पश्चिमी सीमावर्ती रेगिस्तानी जिला बाड़मेर ऐतिहासिक एवं पुरातत्व की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थल रहा है। इस जिले में भग्नावशेषों के रूप मे अनेकों इतिहास प्रसिद्ध स्थल आज भी अपने पुराने वैभवस्वरूप प्राचीन शिल्पकलाकृतियों को संजोये हुए विद्यमान हैं। इस क्षेत्र का विख्यात जूना (बाहड़मेर), वर्तमान बाड़मेर—मुनाबा रेलमार्ग पर स्थित जसाई रलवे स्टेशन से लगभग चार मील दूर पहाड़ियों की गोद में बसा हुआ है। यह बाड़मेर नगर से १४ मील और शिल्पकलाकृतियो के बेजोड़ इतिहास-प्रसिद्ध किराड़ से दक्षिण-पूर्व मे १२ मील की दूरी पर स्थित है। पहाडियों की गोद में बसा जूना आज सूना है। यहा वर्तमान मे प्राचीन नगरी की अनेक इमारतों और भग्नावशेष के रूप में तीन मन्दिरो के प्रारूप दृष्टिगोचर हो रहे हैं। यह प्राचीन स्थल १०वीं शताब्दी तक आबाद रहा है। विशाल पहाड़ियों के बीच में यह नगरी बसी हुई थी, जिसके अवशेष आज भी जूना की पहाडियों पर दस मील के घेरे मे बने किले की प्राचीरों एवं इमारतों से अवगत हो रहे हैं। ये पुरातत्व की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण बने हुए है, किन्तु उनका अभी तक किसी प्रकार का सर्वेक्षण नही हुआ है।

वर्तमान जूना के नाम से विख्यात ऐतिहासिक स्थल प्राचीन समय में जूना, बाहणमेर, बाहड़मेरु, बाहडगिरि, बाप्पडाऊ आदि अनेक नामों से विख्यात नगर रहा है। इस नगर की स्थापना परमा धरणीवारह या धरणीधर राजा के पुत्र बाहड़ (वाग्भट्ट) ने विक्रम की ग्यारवी शती के उत्तरार्द्ध में वि० सं० १०५९ के पश्चात् की मुंहता नैणसी ने भी धरणीवराह के पुत्र बाहड़-छाहड़ होने का उल्लेख किया है। "वाग्भट्टमेरु" शब्द का उल्लेख चौहान चाचिग देव के संधामाता मन्दिर के वि० सं० १३१९ के शिलालेखों में मिलता है। भाट साहित्य के अनुसार ११वीं शताब्दी के आस-पास इस क्षेत्र पर ब्राह्मण शासक बप्पड़ का आधिपत्य था और उसने अपने नाम पर इस नगर का नामकरण बाप्पड़ाऊ रखा। बप्पड़ ब्राह्मण के वंशजों से १२ वी शताब्दी में परमार धरणीबराह के वंशज बाहड़-चाहड़ ने लेकर इसका नाम बाहडमेर- बाहड़मेरु रखा।

बाहड़मेर की प्राचीनना के सम्बन्ध में बहुत-सी महत्वपूर्ण जानकारी का उल्लेख मिलता है। कर्नल टाड के अनुसार, वि० स० १०८२ मे महमूद गजनवी के द्वारा गुजरात जाते समय चौहानो के इस दुर्ग जूना का भी विध्वस किया गया। उद्धरण मन्त्री सकुटुम्ब वि० सं० १२२३ में हुआ। इसके पुत्र कुलधर ने बाहडमेरु नगर मे उत्तुग तोरण का जैन मन्दिर बनाया जिसका उल्लेख श्री क्षमाकल्याणकृत खतरतगच्छ पट्टावली में इस प्रकार किया हुआ है :—

"उद्धरणमन्त्री सकुटुम्बः खतरवच्छीयश्रावक (सं० १२२३) बभूव। तस्य च कुलधरनामा पुत्रो जातः येन बाहड़मेरु नगरे उत्तुंगतोरणप्रासादः कारितः।।"

वि० सं० १२३५ (ई० सन् ११७८) मे चौहानों से संघर्ष लेते हुए शहाबुद्दीन मोहम्मद गौरी ने मुल्तान से लोद्रवा देखका किराडू जूना पर आक्रमण किया। किराडू के विख्यात सोमनाथ मन्दिर को तोड़ा और लूटा। मन्दिर को तोडने के साथ मन्दिर के चारों ओर भीषण अग्निकाण्ड भी किया गया। जूना के दुर्ग एवं जैन मन्दिरों को भी इन्ही के द्वारा तोड़ने की वारदात की गई।

वि० सं० १२२३ में उद्धरण मन्त्री के पुत्र कुलधर द्वारा बाहड़मेरु में बनाये उत्तुंग तोरण के श्री आदिनाथ भगवान के जैन मन्दिर पर श्री आचार्य जिनेश्वर सूरिजी ने वि० सं० १२८३ माह वदी २ के दिन ध्वजा फहराई। श्री आचार्य जिनेश्वर सूरिजी के तत्त्वाधान में वि० सं०

१३०६ माघ सुदि १० के दिन पालनपुर में प्रतिष्ठा-महोत्सव आयोजित हुआ और सेठ सहजाराम के पुत्र बच्छड़ ने बाहड़मेर आकर बड़े उत्सव के साथ दो स्वर्ण कलशों की प्रतिष्ठा करवा कर श्री आदिनाथ मन्दिर के शिखर पर चढ़ाये। वि० सं० १३१२ में श्री जिनेश्वर सूरि के शिष्य चण्डतिलक ने "अभयकुमार चरित्र" महाकाव्य यहां आरम्भ किया। आचार्य श्री जिनप्रबोधसूरि ने यहा वि० सं० १३३५ मार्ग शीर्ष बदी चतुर्थी के दिन पद्मवीरि, सुधाकलश, तिलककीर्ति, लक्ष्मीकलश, नेमिप्रभू, हेमतिलक और नेमीतिलक की बड़े समारोह के साथ दीक्षित किया।

जूना (बाहड़मेर) के वर्तमान खण्डहरों के रूप में विद्यमान जैन मन्दिर में आज भी वि० स० १३५२ का एक, १३५६ के दो एवं २६६३ का एक, कुल मिलाकर चार शिलालेख विद्यमान है जो इस प्रकार है —

१ —"ॐ ।। संवत् १३५२ वैशाख सुदि ४ श्री बाहड़-मेरी महाराजकुल श्रीसामंतसिंहदेवकल्याण राजे तन्नियुक्त-श्री २ करणो मं० वीरा सेल [०] बेला तुल [०] भां गिगनप्रभृतयो धर्माक्षराणि प्रयच्छति यथा। श्री आदि-नाथमध्ये सतिष्ठामानश्रीविन्धमर्द क्षेत्रपालश्रीचउंड-राजदेवयो उभयमार्गीयसमायतसार्थ उष्ट्र १० वृष २० उभयादपि ऊर्ध्व सार्थ प्रति द्वयोर्देवयोः पाइलापदे धीमप्रिय दश विशोपका अद्वोद्वेन गृहीतव्याः असौं लागा महाजनेन म (भा) निता ।। यथोक्तं बहुभिवसुधा भुक्ता राजभिः सगरादिभिः। यस्य यस्य यदा भूमिः तस्य तस्य तदा फलं ।।१।:

२—"ॐ ।। संवत् १३५६ कातिवयां श्री युगादि-देवविधिचैत्यै श्रीजिनप्रबोधसूरिपट्टालंकारश्रीजिनचंद्रसूरि-सुरूपदेशेन सा० गाल्हणसुत सा० नागपालश्रावकेण सा० गहणाविपुत्रपरिवृतेन मध्यचतुष्किका रव० पुत्र सा० मूलदेवश्रेयोर्थ सर्वसंघप्रमोदार्थं कारिता। आचंद्रवर्क नंदतात् ।। शुभमस्तु।।"

३—"ॐ ।। संवत् १३५६ कातिवयां श्रीयुगादिदेव-विधिचैत्ये श्री जिनप्रबोधसूरिपट्टालंकारश्रीजिनचंद्रसूरि-पुदुरूपदेशेन सा० आल्हणसुत सा० राजदेवसत्यत्पुत्रेण सा० रलखणश्रावकेण सा० मोकलसिंह तिहुणसिंहपरिवृतेन वामातुः सा पउमिणपिसुश्रावकायाः श्रेयोर्थ सर्वसंघ-प्रमोदार्थं वाइवंवर्तिचतुष्किकाद्वयंकारितं ।। आचंद्रवर्क नंद-तात ।। शुभमस्तु ।।

४ —"संवत् १६६३ वर्षमग (मार्ग०) सुद वि ब (ख) रतरगच्छे प० सीरराजमुनि पं० गिरराजमुनि पं० हिरांण (नं०) वपमुखसाधुसहितंयात्रा कृता संतथान-ध्याकारि (?) ।।"

जूना के खण्डहरों की बस्ती में आज पुरातत्व एवं शिल्पकलाकृतियों की दृष्टि के लिए श्री आदिनाथ भगवान का जैन मन्दिर ही अपने प्राचीन पाषणों को लड़खड़ाती हालत मे सजोये हुए है। मदिर के मूलगम्भारे का विशाल शिखर सदियों पहले ही धरातल पर आ चुका है। इसके पाश्वं भाग के गोखों पर क्षतिग्रस्त कई प्रतिमाएँ बनी हुई है। गूढ़मण्डप का आगे का भाग गिर चुका है। सभा एव शृंगार मडल के अनेको खम्भे अब भी विद्यमान है। कई खम्भों पर उक्त शिलालेख दृष्टिगोचर हो रहे है। खम्भों के निचले भाग पर कुछ सुन्दर महिला-आकृतियों मे प्रतिमाएं बनी हुई है। खम्भो के ऊपरी भाग को शिल्पकला की दृष्टि से सजाने-सवारने का शिल्पकार ने अथक प्रयत्न किया है। स्थानीय विषैले जन्तुओ की आकृतिया इन खम्भों पर बनी पूई है। खम्भों और मन्दिर की छतो के बीच वाले पाषाणों पर कुछ देवी-देवताओ की आकृतियां भी दिखाई देती है। मन्दिर के ऊपरी गोलाकार गुम्बज के आंतरिक भाग की शिल्पकला अत्यन्त ही सूक्ष्म एवं सुन्दर बनी हुई है जो आबू के देलवाड़ा एव राणकपुर के जैन मन्दिरों की छतों से कुछ मिलती-जुलती है। कुछ गुम्बज गिराये जा चुके है और कुछ गिरने की स्थिति मे है। इन गुम्बजों के पास के पाषाणो में बनी लक्ष्मी, सरस्वती एवं अन्य देवी प्रतिमाएं अत्यन्त ही सुन्दर बनी हुई है। इस मन्दिर के अतिरिक्त दो अन्य मन्दिर भी विद्यमान है, लेकिन उसके पाश्वं भाग के अतिरिक्त कुछ भी नही है। पास में बिखरे खंडहर इनकी प्राचीनता एवं विशालता का अवश्य ही परिचय दे रहे है।

१० दिसम्बर, १६७० को जो प्राचीन एव धार्मिक जैन मूर्तियां जूना की एक पहाड़ी पर वन विभाग के

श्रमिकों द्वारा वृक्ष लगाते समय प्राप्त हुई, वे भी बहुत ही पुरानी एवं खंडित हालत में हैं। यह स्थान जूना के मूल मन्दिरों से करीबन एक फर्लांग दूर पहाड़ी पर स्थित है। इस पहाड़ी के भग्नावशेषों एवं अन्य स्थलों का अवलोकन करने पर ऐसा अनुभव होता है कि यहां पर विशाल एवं शिल्पकलाकृतियों का अत्यन्त ही सुन्दर जैन मन्दिर था। यहां के अवशेषों को देखनेसे मन्दिर का प्रवेश-द्वार-शृंगार-चौकी, रंग-मंडप, सभा-मंडप, मल गम्भारा, परिक्रमास्थल, मन्दिर के चारों ओर बनी प्राचीरें और नीचे उतरने एवं चढ़ने के लिए पहाड़ी के दोनों तरफ विशाल पक्की पाषाणों की पगडण्डी आज भी तितर-बितर अवस्था में विद्यमान है।

जैन धर्मावलम्बियों का जूना (बाहड़मेर) तीर्थस्थल रहा है। यहां कई आचार्य महात्माओं ने आकर चातुर्मास किये और कई जैन धार्मिक ग्रन्थों की रचना भी की। श्री आचार्य कुशलसूरि ने वि० सं० १३८२ में साचोर से आकर बाहड़मेरू में चातुर्मास किया। श्री आचार्य पद्म-सूरि बाहड़मेर आये जिनका स्वागत तत्कालीन चौहान राणा श्री शिखरसिंह, श्रावक साह, परतापसिंह, साह सातसिंह आदि ने किया। इस प्रकार, जैन साधु-सन्तों, आचार्य-महात्माओं का इस नगरी में बराबर आगमन होता रहा। यहां के ओसवाल पारख-गोत्रीय देकोशाह के पुत्र ने वि० सं० १५२१ मे दीक्षा ग्रहण की जो आगे चलकर श्री आचार्य जिनसमुद्रसूरि के नाम से लोकप्रिय हुए।

वि. सं. की १७वी शताब्दी तक यही स्थान बाहड़मेर के नाम से जाना जाता रहा। औरंगजेब के समय वि० सं० १७४४ के लगभग यहां पर वीर दुर्गादास राठौड़ का निवास रहा। राठौड़ दुर्गादास ने बादशाह औरंगजेब के पौत्र, अकबर के पुत्र और पुत्री बुलन्द अख्तर और सफियायुन्निसा को यहीं जूना के दुर्ग में सुरक्षित रखा था। जूना का प्राचीन दुर्ग परमारों और चौहानों की देन है। "ऐतिहासिक घटना-चक्रों के बीच इस पर छोटे-बड़े आक्रमण बराबर होते रहे जिसके कारण इसका पतन होना आरम्भ हो गया और धीरे-धीरे यहां के लोग आस-पास के स्थानो पर जाकर बसने लगे। वि० सं० १६४० तक इस नगर के आबाद होने के कारण वर्तमान जूना ही बाहड़मेर कहा जाता था। वि० सं० १६०८ में रावत भीमजी ने स्वतन्त्र रूप से बाड़मेर बसाया जो आजकल राजस्थान प्रदेश का जिला मुख्यावास है।

□□

जूनी चौकी का बास
बाड़मेर (राजस्थान)

आवश्यक सूचना

अनेकान्त "महावीर निर्वाण विशेषांक" आगामी दो अंक (फरवरी १९७५ अंक एवं मई १९७५ अंक) सम्मिलित रूप से महावीर निर्वाण विशेषांक के रूप में योजित हैं एवं शीघ्र ही प्रकाशित होंगे।

महावीर निर्वाण विशेषांक के लिए जिन विद्वानों एवं मनीषियों ने अपने लेख एवं रचनाएं अभी तक नहीं भेजी हैं उनसे सानुरोध निवेदन है कि वे शीघ्र ही भेजने की कृपा करें।

चम्पापुरी का इतिहास और जैन पुरातत्त्व

□ श्री दिगम्बर दास जैन, एडवोकेट, सहारनपुर

अन्तिम भोग भूमि की समाप्ति और कृषि-काल के आरम्भ मे प्रथम तीर्थङ्कर श्री ऋषभ देव के जीवन काल में जिन ५२ देशों की रचना इन्द्र ने की थी, उनमें एक अंग देश भी था, जिसकी राजधानी चम्पापुरी (भागल पुर) थी, जहाँ इस वर्तमान युग के प्रारम्भ में प्रथम विश्व सम्राट् भरत ने (जिसके नाम पर हमारा देश भारतवर्ष कहलाता है) अनेक विशाल जैन मन्दिर निर्माण कराये। समस्त जनता जैन धर्म का पालन करती थी और शताब्दियों तक चम्पापुरी का राज्यधर्म जैन धर्म रहा।

दूसरे तीर्थङ्कर अजित नाथ के समय चक्रवर्ती सम्राट् सागर ने चम्पापुरी में जैन मन्दिर बनवाये।

तीर्थङ्कर वासुपूज्य के समय मिथलापुरी का राजा पद्म-रथ था। एक दिन वहक्रीड़ा को वन मे गया। वहाँ उसने सुधर्म नामक दिगम्बर जैन महामुनि को ध्यान मे देखा। राजाने उनकी शान्त मुद्रा को देखकर अत्यन्त शान्ति अनुभव की और वन्दना करके उनसे पूछा कि क्या आपके समान इस संसार मे और भी कोई शान्त-चित्त दिगम्बर मुनि है। मुनिराज ने कहा कि मुझसे अत्यन्त शान्त मुद्रा के धारी, उत्तम ज्ञान के स्वामी, महागुणवान् सर्वज्ञ बारहवें तीर्थङ्कर श्री वासुपूज्य है जिनके दर्शन मात्र से शांत भाव दर्पण के समान स्पष्ट दिखायी देते हैं। राजा दो मन्त्रियों को साथ लेकर उनके समवशरण की ओर चल दिया। देवो ने परीक्षारूप में उन पर अत्यन्त भयानक उपसर्ग किये। दोनों मन्त्री भयभीत होकर वापिस चले गये। किन्तु राजा पद्मरथ अटल रहे। देव ने राजा की भक्ति और श्रद्धा से प्रसन्न होकर उसको समवशरण में पहुचा दिया, जहाँ वह शेर को बकरी से प्यार करते हुए और मोर को सर्प से खेलते हुए तथा शेरनी के बच्चे को गाय के थन चूसते हुए देखकर चकित रह गया। भगवान के उपदेश से प्रभावित होकर वह समस्त राजपाट और सांसारिक सुखों का मोह त्यागकर दिगम्बर मुनि हो गया और इतना घोर तप किया कि वह अपनी योग्यता से भगवान का गन्धर्व बन गया।

रामायण-काल में मुनिसुव्रतनाथ के तीर्थ-काल में महाराज दशरथ के बहनोई चम्पापुरी के सम्राट् थे, जिन्होंने चम्पापुरी में अनेक विशाल जैन मन्दिर बनवाये।

महाभारत के समय बाइसवें तीर्थङ्कर नेमीनाथ के समय चम्पापुरी का राजा दान-वीर, जैनधर्मी कर्ण था जिसने अपने राज्य में जैन धर्म को राज्य-धर्म बना दिया था। पुराने किले की उत्तर की ओर आज भी जैन मन्दिर के चिह्न शेष हैं। हरिवंश पुराण, सर्ग ६२ के अनुसार, स्वयं कृष्ण जी के पिता वसुदेव ने चम्पापुरी मे वासुपूज्य तीर्थङ्कर की पूजा की। महाराजा कर्ण के बनवाए हुए अनेक जैन मन्दिरों के चिह्न आज भी कर्णगढ़ पर्वत पर दिखाई देते है।

भगवान महावीर के समय चम्पापुरी का सम्राट् अजातशत्रु था जो बड़ा बलवान और योद्धा था। जब भगवान महावीर स्वामी का समवशरण चम्पापुरी में आया तो इसने शाही ठाट-बाट से भगवान का स्वागत किया और उनके उपदेश से प्रभावित होकर दिगम्बर मुनि हो गया।

चम्पापुरी का नगर सेठ वृषभदत्त जैन धर्मी था जिसका सुभग नामक एक ग्वाला था। एक दिन उसने एक नग्न साधु को रात्रि में तप करते हुए देखा। ओस के कारण उनका शरीर गीला था। मुनिराज की शान्त मुद्रा से प्रभावित होकर वह सारी रात उनके गीले शरीर को पोंछता रहा। दिन निकलने पर मुनिराज जाने लगे तो उन्होंने ग्वाले को णमोकार मन्त्र दिया, जिसको वह निर-

न्तर रटता रहा जिसके प्रभाव से मर कर इसी चम्पापुरी में सम्राट् पवाडी वाहन के राज्य काल में वह उसी सेठ के यहाँ सुदर्शन नामक पुत्र हुआ, जो इतना धर्मात्मा था कि गृहस्थ काल में भी अष्टमी तथा चतुर्दशी की रात्रि को श्मशान भूमि में ध्यान लगाता था और इतना सुन्दर था कि चम्पापुरी की महारानी भी उस पर मोहित हो गई थी, परन्तु वह शील से नही डिगा। नाराज होकर रानी ने उस पर झूठा कलंक लगा दिया और राजा ने उसे सूली का दण्ड दिया, परन्तु सुदर्शन के शील के प्रभाव से सूली का सिंहासन इसी चम्पापुरी नगरी में बन गया।

धनदत्त नामक एक ग्वाला ने एक दिन सरोवर से एक हजार पंखड़ियो का बड़ा सुन्दर कमल तोड़कर अपने स्वामी को भेंट करना चाहा। उसने कहा कि सर्वश्रेष्ठ पुरुष को भेंट करो। उसने राजा को भेंट किया। राजा ने कहा कि मुझसे श्रेष्ठ दिगम्बर मुनि है। वह मुनिराज को भेंट करने लगा। उन्होंने कहा कि सर्वश्रेष्ठ तीर्थंकर भगवान होते है। उसने वह फूल बारहवें तीर्थंकर वासुपूज्य को भेंट किया जिससे उसे इतने विशेष पुण्य का बन्ध हुआ कि वह पार्श्वनाथ तीर्थङ्कर के तीर्थकाल मे चम्पापुरी देश का बड़ा प्रतापी और पराक्रमी जैन सम्राट् कुरकुण्ड हुआ, जिसने अपनी राजधानी चम्पापुरी में बड़ा विशाल और दर्शनीय मन्दिर वासुपूज्य भगवान का बनवाया।

महाराजा वसुधर्म के राज्य काल मे चम्पापुरी मे धन कुबेर सेठ, अटूट सम्पत्ति का स्वामी प्रियदत्त रहता था। उसकी पुत्री अनन्तवती इतनी सुन्दर थी कि कुडलमडित नामक विद्याधर राजा ने उसे हर लिया तथा उत्तम भोगों और सुखों का लोभ तथा मरण का भय देकर उसे अपनी पटरानी बनाना चाहा। अनन्तवती के शील प्रभाव से वन देव ने उसकी सहायता की, तो भिल्लराज नामक भीलों के सरदार ने उसे अपनी रानी बनाना चाहा, परन्तु वह शील से न डिगी और समस्त जीवन बाल ब्रह्मचारिणी रही। वह संसारी भोगों से उदासीन, सम्यग्दर्शन के निकाक्षित अंग में सुप्रसिद्ध महिला रत्न चम्पापूरी की निवासी थी।

चम्पापुरी के अरबपति सेठ भानदत्त थे जिनकी सेठानी का नाम सुभद्रा था। इनके चारुदत्त नामक पुत्र था जो सोलह करोड़ दीनारों से विदेशों तक में व्यापार करता था। उसने विदेशों तक में जैन धर्म का प्रचार किया।

चम्पापुरी की पवित्र भूमि में काम भावना नष्ट करने करने की इतनी शक्ति है कि इसने इस युग में प्रथम बाल ब्रह्मचारी तीर्थंकर वासुपूज्य को उत्पन्न किया। इसके प्रभाव से अनन्तवती जैसी उत्तम बाल ब्रह्मचारिणियां व सेठ सुदर्शन जैसे ब्रह्मचारी का जन्म चम्पापुरी में हुआ जिनके शील से प्रभावित होकर स्वर्ग के देव उनकी वन्दना करने के लिए चम्पापुरी आते थे।

समस्त संसार में केवल चम्पापुरी ही एक ऐसी पवित्र और महान नगरी है कि जहाँ वासुपूज्य तीर्थंकर के पांचों कल्याणक हुए है। किसी दूसरे तीर्थंकर के पाँचों कल्याणक आज तक एक नगरी मे नहीं हुए।

समस्त संसार में केवल चम्पापुरी ही एक ऐसी धार्मिक नगरी है, जहाँ समस्त २४ तीर्थंकरों के समवशरण आये।

महातपस्वी मुनिराज धर्मघोष ने चम्पापुरी में केवलज्ञान प्राप्त किया।

अष्टाह्निका पर्व में स्वर्ग के देव और विद्याधर, हरिवंश पुराण, सर्ग २२, श्लोक ३ के अनुसार, तीर्थंकर वासुपूज्य की पूजा तथा गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, निर्वाण, कल्याणक मनाने के लिए चम्पापुरी आया करते थे।

इस प्रकार, हम देखते हैं कि इस युग के शुरू से ही चम्पापुरी जैन धर्म का अत्यन्त प्रभावशाली केन्द्र रहा है जिसका वर्णन यति वृषभ ने तिलोयपण्णत्ति में, आचार्य गुणभद्र ने उत्तर पुराण में, आचार्य जिनसेन ने हरिवंश पुराण में तथा तदुपरात पडित सुमेरचन्द दिवाकर ने अपनी रचना "निर्वाण भूमि चम्पापुरी" में किया। ऐसी महान धार्मिक, ऐतिहासिक नगरी का कथन कोई अल्पज्ञानी कैसे कर सकता है। यह गुणीजनों के अनुग्रह का ही प्रताप है कि हमें ऐसी पवित्र निर्वाण भूमि चम्पापुरी का वर्णन करने का शुभ अवसर प्राप्त हुआ।

□□

गौरी शंकर बाजार,
सहारनपुर

कुण्डलपुर की अतिशयता : एक विश्लेषण

☐ श्री राजधर जैन 'मानसहंस', दमोह

मूर्ति चाहे पाषाण की हो, काष्ठ की हो, मृत्तिका या धातु की हो, वह पाषाण, काष्ठ या धातु ही है। केवल शिल्प उसे मूर्त रूप दे देता है, तथा वह जिसके आकार का प्रतीक बनती है उसके गुणों की अवधारणा करना आरम्भ कर देती है। मूर्ति मे प्राण-प्रतिष्ठा हम करते है। जब हम उसे ईश्वर या परमात्मा के नाम रूप से सम्बोधित करना शुरू कर देते है तो यह प्राण-प्रतिष्ठा कोई एक व्यक्ति द्वारा नही, प्रत्युत परमात्मा को उस नाम-रूप से प्रतिष्ठित करने वाले लाखों-करोड़ों धर्मानुयायियों एवं दर्शनार्थियों द्वारा होती हैं, जो हजारों वर्षों से अपने प्राणों की निष्कलुष ऊर्जा मूर्ति पर प्रक्षेपित करते रहे हैं और इस तरह मूर्ति अनन्तानन्त आत्माओ की शुद्धता में व्याप्त हो जाती है। कालान्तर में ये विशुद्ध आत्मायें एकाकार होकर मूर्ति मे ऊर्जस्वित होती है और वह मूर्ति भी उस दिव्य ज्योति को विकीर्ण करने लगती है जिसकी वह मूर्ति प्रतिमूर्ति है। तब ऐसा होता है कि मूर्ति के समक्ष यदि कोई भूला-भटका आदमी भी पहुंचता है तो उन अनन्त आत्माओ की केन्द्रित प्रज्ञा-किरणें उस आदमी पर प्रत्यावर्तित होकर उसे प्रभावित करने लगती है और वह व्यक्ति धीरे धीरे विशुद्धता में रूपान्तरित होने लगता है। कुण्डलपुर में स्थित भगवान महावीर मूर्ति के समक्ष पहुंचने पर मन एक निर्मल शान्ति से ओत प्रोत होने लगता है। उसका कारण केवल यही है कि भगवान महावीर की मूर्ति ने उस अतिशय निधि को उपलब्ध कर लिया है जिसमें महावीर के जीवन-दर्शन से प्रभावित अनन्त आत्माओं ने महावीर को मूर्ति में पूर्ण रूप से प्रक्षेपित कर दिया है। वह मूर्ति, मूर्ति नहीं रह गई है, महावीर हो चुकी है। यही उसका वैज्ञानिक परिवेश है।

जो मूर्ति जितनी प्राचीन होगी, उसमें उतनी ही दीर्घ-कालिक विशुद्ध आत्माओं का प्रक्षेपण होता रहा होगा। महावीर की मूर्ति का अणु-परमाणु या उसका अंतिम से अंतिम लघु घटक भी महावीर की ज्योति मे ज्योतिर्मय हो चुका है और वह ज्योति निरन्तर प्रत्यावर्तित होती रहेगी। किसी भी आत्मा के समीप पहुचने पर मूर्ति मे बैठी वह महान् आत्मा उसे प्रभावित करने लगती है। महावीर की मूर्ति मे यही अतिशयता है और यही उस मूर्ति का प्राचीनता का बोध भी है। समस्त प्राचीन मूर्तियाँ भी इसी तरह अतिशय को प्राप्त हो जाती है।

कुण्डलपुर से संबंधित जो अतिशय की चर्चायें है, उनका आधार यही वैज्ञानिक प्रक्रिया है। अध्यात्म-विज्ञान, विज्ञान का एक खण्ड है। विज्ञान का यह ऊपरी रूप जिसे हम विज्ञान कहते है, केन्द्रित परम विज्ञान की परिधि पर एक आंशिक उपलब्धि है। समस्त ब्रह्माण्डीय वैज्ञानिक प्रक्रिया में अभी तक जो भी अधिक से अधिक उपलब्धि हो सकी है, वह केवल अध्यात्म-विज्ञान की है; इसलिए अध्यात्म-विज्ञान की शोधों के समक्ष भौतिक विज्ञान की खोज नगण्य है। किन्तु फिर भी, भौतिक विज्ञान असम्बद्ध नहीं, बल्कि अध्यात्म-विज्ञान का सरली-कृत प्रत्यक्ष दर्शन है। अतः भौतिक विज्ञान के माध्यम से अध्यात्म-विज्ञान को सरलता एवं सहजता से पकड़ा जा सकता है और ग्रहण किया जा सकता है। जैन दर्शन पूर्ण वैज्ञानिक दर्शन है जिसमे चेतन, अचेतन, जीव, पुद्‌गल और मोक्ष की धारणा विज्ञान का पूर्ण रूप है। अतः भौतिक विज्ञान से हटकर केवल अध्यात्म विज्ञान का मूल्यांकन नहीं हो सकता।

कुण्डलपुर से संबंधित एक अतिशय की चर्चा हैं कि जब मूर्ति-विध्वंश का बीड़ा उठाये औरंगजेब की सेना भारत के अनेक पवित्र मन्दिरों में विराजमान मूर्तियो का विनाश करती हुई, कुण्डलपुर स्थित महावीर की मूर्ति को तोड़ने के लिए अग्रसर हुई, तो वहाँ वृक्षों पर बैठी

मधुमक्खियों ने समस्त सेना को आहत कर दिया और सेना को वापिस भागना पड़ा। क्या कारण है? इसका उत्तर केवल यही है कि महावीर की मूर्ति के आसपास का सारा वातावरण, समग्र जड़-चेतन जगन्मूर्ति में विराजमान महावीर की विशुद्ध आत्मा से प्रभावित था। मनुष्य की अपेक्षाकृत अन्य योनियों का जीवन सरलता के बोध के कारण शीघ्र प्रभावित होता है। मनुष्य पंचेन्द्रिय जीव है। अन्य योनियों का जीवन, जैन सिद्धान्त के अनुसार, भिन्न-भिन्न प्रकार की इन्द्रियों का समुच्चय स्वरूप है। अतएव मनुष्य की ज्ञानेन्द्रिय इच्छा जगत् के वशीभूत हो गई है। आदमी की निर्मलता अन्य प्राणियों की अपेक्षा आच्छन्न है और इसी कारण मनुष्य को प्रभावना अंग के लिए इस प्रकाश की अनवरत अपेक्षा है, जबकि अन्य जीवन सरलता से तत्काल प्रभावित हो जाता है। औरंगजेब की सेना को मनुष्य पीछे नहीं हटा सका, मधुमक्खियां सम्मिलित रूप से इसके प्रतिकार में समर्थ हुई।

एक और चर्चा है कि महावीर की मूर्ति को तोड़ने के लिए जैसे ही मूर्तिभंजक मुगल सैनिक ने महावीर के अंगूठे पर छैनी से चोट की, दूध की धारा मूर्ति के अंगूठे से प्रवाहित हो गई। सैनिक अवाक् रह गया। मूर्ति तोड़ना बन्द हो गया। दुग्ध-धारा के निकलने का अर्थ है शरीर की पवित्रतम वस्तु—जो हिंसा के लिए नहीं, निर्माण के लिए कार्य करती है, प्रकट हो गई थी। दुग्ध जीवनदायिनी शक्ति है, वह सृष्टि का पोषण करता है, उसे सरसता एवं पवित्रता प्रदान करता है। विध्वंसकारियों को विध्वंस का उत्तर मिलता है कि विध्वंस की अपेक्षा जीवन का अभयदान मात्र ही गौरव की बात है। महावीर जिनका जीवन अहिंसा का साकार रूप था, हिंसा के उत्तर में इस अहिंसात्मक उत्तर के सिवाय और क्या दे सकते थे। मूर्ति तोड़ना देखने में मात्र पत्थर तोड़ना है, उसमें कोई जीव हिंसा नहीं, किन्तु उसकी पृष्ठभूमि में तोड़ने वाले की जघन्य वैचारिक हिंसा का स्पष्ट प्रतिविम्ब है, जिसकी अपनी हिंसा की भावना इतनी तीव्रतर हो चुकी थी कि उसकी तुष्टि मानव संहार से भी निम्नतर स्थिति में पहुंच कर, मूर्तियों के तोड़ने तक पहुंच गई थी। तब इस असाधारण हिंसा की लोलुपता को दबाने के लिए साधारण अहिंसा का पाठ पढ़ाना कठिन कार्य था, दूध की धारा प्रवाहित करना उतना ही शक्तिपूर्ण समाधान था।

यह भी ऐतिहासिक सत्य है कि बुन्देलकेशरी महाराजा छत्रसाल देश के गौरव और संस्कृति को मुसलमानों द्वारा विध्वंस से बचाने के लिए जीवन भर सचेष्ट रहे। उनकी वृद्धावस्था का लाभ उठा कर मुगल उन्हें दबाने लगे थे। महाराजा छत्रसाल भूमि, संस्कृति और जन-जीवन की रक्षा के लिए पुनः समर्थवान् हो सकने की भावना को लेकर महावीर के चरणों में बैठ गये। उन्हें पुनः वह आत्मशक्ति प्राप्त हुई कि वे विजातीय मुगल शासन को पराजित करने में समर्थ हो सके। विजातीय किसी भिन्न अर्थ में नहीं, केवल उस अर्थ में है जिसमें आक्रांताओं का मस्तिष्क हिंसा की जघन्य वासना से भर जाता है।

मैं कभी किसी अभीप्सा से कुण्डलपुर नहीं गया, किन्तु जब भी गया हूँ और एकान्त में महावीर की मूर्ति के दर्शन किये है—एक अद्भुत मन शान्ति की उपलब्धि हुई है। मूर्ति से विकीर्णित किरणें एकांत में व्यक्ति को चारों ओर से प्रभावित करने लगती हैं, जब कि असंख्य दर्शनार्थियों के समक्ष वे असंख्य में बंट जाती हैं, विकेन्द्रित हो जाती है और प्रत्यावर्तित प्रक्षेपण सकेन्द्रित नहीं हो पाता। प्रभाव तो पड़ता है किन्तु जो सरल हृदय से कलुषता एवं अहं का परित्याग करके, निर्विकार होकर मूर्ति के समक्ष पहुंचता है, वह तत्काल पूर्णतया रूपान्तरित हो जाता है; अन्य को अनवरत दर्शन की अपेक्षा रह जाती है। □□

सेठ भोजराज का बाड़ा,
सिविल वार्ड नं० १, दमोह (म० प्र०).

महान् मौर्यवंशी नरेश : सम्प्रति

□ श्री शिवकुमार नामदेव, डिण्डोरी (मण्डला)

सम्प्रति का जैन साहित्य में वही स्थान है जो बौद्ध साहित्य में अशोक का। मौर्य वंश के इतिहास में सम्प्रति का महत्त्व भी चन्द्रगुप्त और अशोक के समान है। मौर्य नरेश दशरथ की मृत्यु के पश्चात् सम्प्रति लगभग २२३ ई० पूर्व में मगध के सिंहासन पर आरूढ़ हुआ। 'पाटलिपुत्र नगर कल्प' में लिखा है कि "पाटलिपुत्र में कुणाल के पुत्र, भारत के महाराज सम्प्रति का राज्य था। इसने श्रमणों के लिए अनार्य राष्ट्रों में भी मठ बनवाये।" डा० वी० ए० स्मिथ का कथन है कि सम्प्रति का राज्य अवन्ती से लेकर पश्चिमी भारत तक फैला हुआ था। जैन साहित्य से ज्ञात होता है कि सम्प्रति का राज्य केवल पाटलिपुत्र तक ही सीमित न होकर उज्जैन तक विस्तृत था।

पाटलिपुत्र के राजसिंहासन पर आरूढ़ होने के पूर्व सम्प्रति उज्जयिनी का कुमारामात्य भी रह चुका था। उज्जयिनी के कुमारामात्य के रूप में उसने वहाँ जैन सम्प्रदाय को पूर्णतः संगठित कर लिया था। संभवतः सम्प्रति ने जैन धर्म के उत्कर्ष में राज्यशक्ति यह सोच कर लगाई हो कि कालांतर में वह इन्हीं अनुयायियों के माध्यम से साम्राज्य को सरलता पूर्वक प्राप्त कर सके।[1]

सम्प्रति का जैन साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है। जैन साहित्य के अनुसार, वह जैन धर्म का अनुयायी था। उसने इस धर्म के प्रचार में महान् उद्योग किया। जैन ग्रंथों में भी यह प्रतिपादित किया गया गया है कि राजा सम्प्रति 'त्रिखण्ड भरताधिप' था।

सम्प्रति के जैनधर्म-ग्रहण करने की बात जैनग्रंथ 'परिशिष्ट पर्व' और 'बृहत्कल्पसूत्र' में वर्णित है। परिशिष्ट पर्व (११।२३-६४) के अनुसार : "एक समय उज्जयिनी नगरी में जीवंत स्वामी की प्रतिमा की रथ-यात्रा निकल रही थी, और आचार्य सुहस्ती उसके साथ रथ-यात्रा में जा रहे थे। जब रथ-यात्रा राजप्रासाद के सम्मुख आई, तब राजा सम्प्रति की दृष्टि आचार्य सुहस्ती पर पड़ी उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि आचार्य सुहस्ती से वे भली भांति परिचित है. परन्तु यह परिचय कब और कहाँ हुआ, इसका उन्हें स्मरण नहीं आया। सोचते-सोचते राजा सम्प्रति मूर्च्छित हो गया। जब उसकी मूर्च्छा भंग हुई तो उसे स्मरण आया कि आचार्य सुहस्ती से उसकी भेंट पिछले जन्म में हुई थी। आचार्य सुहस्ती भी राजा को देख कर पहचान गये और उन्होंने यह बताया कि पिछले जन्म में सम्प्रति कौशांबी में भीख मांग कर अपना जीवन-निर्वाह करता था। सुहस्ती की प्रेरणा से उसने जैनधर्म को स्वीकार कर लिया था, और मृत्यु के पश्चात् अब उस रंक ने कुणाल के घर जन्म लिया है। कौशांबी का वह रंक ही अब सम्प्रति के रूप में उज्जयिनी के राजसिंहासन पर आरूढ़ है। सुहस्ती के बतलाने से सम्प्रति को अपने पूर्व जन्म की सब बातें याद आ गई, और उसने इस बात को स्वीकार किया कि इस जन्म में उसे जो भी सुख-समृद्धि एवं राज-सुख प्राप्त है, वे सब आचार्य सुहस्ती की कृपा एवं जैन धर्म की महिमा के कारण हैं। उसने हाथ जोड़ कर सुहस्ती से प्रार्थना की कि पिछले जन्म के समान इस जन्म में भी आप मेरे गुरु बनना स्वीकार करें, और मुझे अपना धर्म-पुत्र समझ कर कर्त्तव्य की शिक्षा दें। इस पर सुहस्ती ने सम्प्रति को जैन धर्म की दीक्षा दी, और अणुव्रत, गुणव्रत आदि उन व्रतों का उपदेश दिया जिनका पालन उसे श्रावक के रूप में करना चाहिए।[2]

जैन धर्म ग्रहण करने के पश्चात् सम्प्रति ने धर्म के प्रचारार्थ जो महान् प्रयास किया, उनका भी वर्णन हमें परिशिष्ट पर्व से प्राप्त होता है। उक्त ग्रंथ के अनुसार

---

१. मध्य भारत का इतिहास, प्रथम खण्ड, पृ० २३७।

२. सत्यकेतु विद्यालंकार : मौर्य साम्राज्य का इतिहास, पृ० ६६२–६६३।

"एक बार रात्रि के समय सम्प्रति के मन में यह विचार आया कि अनार्य देशों में भी इस धर्म को प्रचारित किया जाये, ताकि वहाँ भी जैन साधु स्वच्छंद रूप से विचरण कर सकें। अत. उसने अनार्य देशों को, जो उसके अधीनस्थ थे, यह आदेश दिया कि मेरे द्वारा भेजे हुए पुरुष जैसे जैसे मार्ग प्रदर्शित करें, तदनुरूप आचरण किया जाय। तत्पश्चात् उसने जैन साधुओ को जैन धर्म के प्रचार के लिए अनार्य देशो में भेजा। साधुओं ने राजकीय प्रभाव से शीघ्र ही अनार्य देश के निवासियों को जैन मतानुयायी बना लिया। इस कार्य के लिए सम्प्रति ने अनेको लोकोपकारी काम किये। निर्धनों को मुफ्त भोजन-वितरण हेतु अनेक दान शालायें खुलवाई। अनेक जैन ग्रंथों में यह भी वर्णित है कि सम्प्रति ने जैन धर्म के प्रचार के लिए अपनी सेना के योद्धाओं को साधु का वेश बना कर धर्म प्रचार के लिए भेजा था[३]।

'परिशिष्ट पर्व' से ज्ञात होता है कि जिन अनार्य देशों में सम्प्रति ने जैन धर्म का प्रचार किया था, वे आन्ध्र और द्रमिल (द्रविड़) थे[४]। जैन धर्म का दक्षिण भारत में जो प्रचार हुआ, उसका श्रेय सम्प्रति को ही है। जैन धर्म का प्रचार का केन्द्र पश्चिमी भारत था। सम्प्रति ने मध्यदेश गुजरात, दक्षिणपथ तथा मैसूर मे जैन धर्म का प्रचार किया। सम्प्रति ने जैन साधुओं के लिए पच्चीस राज्यो को सुगम बना दिया था।

जैन धर्म के व्यापक उत्कर्ष और प्रचारार्थ सम्प्रति ने लगभग वही उपाय किये जो बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ उसके पूर्वज सम्राट् अशोक ने किये थे। यद्यपि यह सत्य है कि अशोक एवं सम्प्रति की तुलना धर्म प्रचार के कार्य में नहीं हो सकती, परन्तु सम्प्रति की राजनीतिक एवं अन्य परिस्थितियों को दृष्टि में रखते हुए उसके द्वारा किये गये प्रयास महान् हैं।

'परिशिष्ट पर्व' से ज्ञात होता है कि सम्प्रति ने जैन धर्म के प्रचार के लिए उज्जयिनी के चतुर्दिक् मुख्य तोरणों पर अपनी ओर से महासत्रों की स्थापना कराई, जहाँ बिना भेदभाव कोई भी भोजन प्राप्त कर सकता था। सम्प्रति[५] ने नगर के व्यापारियों को यह आदेश दिया था कि साधु लोग तेल, अन्न, वस्त्रादि जो भी ग्रहण करना चाहें, उन्हें मुफ्त प्रदान किया जाये और उनका मूल्य राज्यकोष से प्राप्त कर लिया जाये।

सम्प्रति के द्वारा जैन धर्म के प्रचार के लिए जो कार्य किये गये, उनका वर्णन हमें बृहत्कल्पसूत्र एवं उसकी टीका में भी मिलता है। उक्त ग्रंथो के अनुसार, उसके द्वारा किये गये कार्य इस प्रकार थे :—(१) नगर के चारों तोरणों पर दान की व्यवस्था; (२) वणिजों[६] और विवणिजों[७] द्वारा साधुओं को बिना मूल्य वस्त्रादि वस्तुयें देने की व्यवस्था; (३) सीमांत शासकों को आमन्त्रित कर उन्हें विस्तारपूर्वक 'धर्म' का अर्थ बताना

३. सम्प्रतिश्चिन्तयामास निशीथसमयेऽन्यदा।
अनार्येष्वपि साधना विहारं वर्तयाम्यहम् ॥८९॥
इत्यनार्यानादिदेश राजा दद्ध्व करं मम।
तथा तथास्मत्पुरुषा मार्गयन्ति यथा यथा ॥९०॥
ततः प्रैषीदनर्येषु साधुवेषधरान्नसन्।
ते सम्प्रत्याज्ञयानार्यानेवमन्वशिषन्भृशम् ॥९१॥
भविता सम्प्रतिस्वामी कोपयिष्यत्यन्यथा पुनः ॥९३॥
तत. सम्प्रतिराजस्य परितोषार्थमुद्यताः।
ते तु तत्पुरुषादिष्टमन्वतिष्ठन् दिने दिने ॥९४॥
महासत्राण्य कार्यन्त पुरद्वारिषु चतुर्ष्वपि ॥१०३॥
अयं निजः परो वायमित्यपेक्षा विवर्जितम्।
तत्रानिवारिते प्रापुर्भोजनं भोजनेच्छवः ॥१०४॥
—परिशिष्ट पर्व, एकादश सर्ग।

समणभद्रभाविएसु ते सूरज्जेसु राषणादिसु।
साहू सुतं विहरिया तेणं चिय भद्दजाने ओ ॥
— श्री बृहत्कल्पसूत्र।

४. परिशिष्ट पर्व : ११।८९

५. श्रमणोपासको राजा कान्दविकानथादिशत्।
तैलाज्यदधिविक्रेतृन्वस्त्रविक्रायकानपि ॥
यत्किञ्चिदुपकुरुते साधूनां देयमेव तत्।
तन्मूल्यं व प्रदास्यामि मा स्म शङ्कध्वमन्यथा ॥
—'परिशिष्ट पर्व' : ११।११०—१११।

६. जो दुकान पर बैठ कर माल बेचते थे, उन्हें 'वणिज' कहा गया है।

७. जो दुकान न होने पर किसी ऊँचे स्थान पर बैठकर माल बेचते थे, वे 'विवणिज' कहलाते थे।

तथा स्वदेश लौटने पर श्रमणों के प्रति भक्तिभाव रखने की सलाह। सीमांत शासकों ने स्वदेश लौटने पर वहाँ उक्त धर्म की घोषणा की तथा चैत्यों का निर्माण कराया।

उपरोक्त वर्णन से ज्ञात होता है कि सम्प्रति ने अपने सीमांत प्रदेशों में भी अपने प्रभाव के फलस्वरूप जैन धर्म का प्रचार किया। जैन ग्रंथों के वर्णन के आधार पर यह ज्ञात होता है कि वे प्रत्यंत राज्य जहाँ विवेच्य काल मे इस धर्म का प्रचार हुआ था, आंध्र, द्रविड़, महाराष्ट्र एव कुडुक्क थे। आंध्र व महाराष्ट्र राज्य अशोक के 'विजित' (साम्राज्य) के अन्तर्गत थे, पर सम्प्रति के समय मे वे प्रत्यंत राज्य हो गये थे।

जैन धर्म के अनुसार, जिस ढग से साधुओं को वस्त्र एवं अन्न आदि व्यापारियों द्वारा राज्य की ओर से प्राप्त कराये जा रहे थे, वह अनुचित था। परन्तु राजशक्ति के प्रयोग के कारण किसी ने भी उसका विरोध नहीं किया। किन्तु सम्प्रति के धर्मगुरु सुहस्ती के निकट सपर्की आचार्य महागिरि ने इसका विरोध किया, तदपि सुहस्ती ने सम्प्रति के कारण इन सुविधाओं का समर्थन किया। परिणामस्वरूप, महागिरि ने सुहस्ती से सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया[८]।

सम्राट् अशोक की भाँति सम्प्रति ने भी जैन धर्म के प्रसार के लिए कोई कसर बाकी नहीं छोड़ी। उसने अपने राज्य एवं प्रत्यंत देशों मे बहुत से चैत्यों, देवालयों एवं मठों का निर्माण कराया। सम्प्रति द्वारा जैन मन्दिर एवं विहार आदि बनवाये जाने का वर्णन 'परिशिष्ट पर्व' एवं 'पाटलिपुत्र नगर कल्प' मे किया गया है। परिशिष्ट पर्व[९] के अनुसार, सम्प्रति ने 'त्रिखण्ड भरत-क्षेत्र' (भारत) को जैन मन्दिरों से मंडित कर दिया था। पाटलिपुत्र नगर कल्प में सम्प्रति के लिए 'प्रवर्तित श्रमणविहारः' विशेषण प्रयुक्त किया गया है। इस विशेषण से यह आशय निकलता है कि सम्प्रति ने श्रमणों के लिए अनेकों विहारों का निर्माण कराया था। उसके द्वारा सवा करोड़ जिनालयों के निर्माण का वर्णन कल्पसूत्र की सुबोधिका[१०] में है। जहाँ तक सम्प्रति द्वारा सवा करोड़ जैन मन्दिरो के बनवाये जाने का प्रश्न है, निश्चित ही यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण है। सामान्यरूप से, हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि सम्प्रति ने बहुत से जैन मन्दिरो का निर्माण कराया था। डा० स्मिथ का कथन है कि जिन किन्हीं भी प्राचीन जैन मन्दिरों एवं अन्य कृतियों की उत्पत्ति एवं निर्माण अज्ञात हो उन्हे लोग सम्प्रति द्वारा निर्मित मान लेते हैं[११]। प्रसिद्ध इतिहासकार टाड का मत है कि राजस्थान और सौराष्ट्र में जितने भी प्राचीन जैन मन्दिर है, उन सबके विषय में यह किंवदन्ती प्रचलित है कि उनका निर्माण राजा सम्प्रति द्वारा कराया गया था[१२]।

सम्प्रति का एक उपनाम 'चन्द्रगुप्त' भी था। जैन ग्रंथो के अनुसार, सम्प्रति (चन्द्रगुप्त 'द्वितीय') के शासन काल में एक बड़ा अकाल पड़ा। यह बारह वर्ष तक रहा। सम्प्रति ने मुनिव्रत ले लिया और दक्षिण में जाकर अन्त में उपवास द्वारा इहलोक से मुक्ति प्राप्त कर ली।

वस्तुतः इसमें कोई सन्देह नहीं है कि जैन धर्म के भारत में दूर दूर तक फैलाने का श्रेय संप्रति को ही है। उसी के काल में जैन धर्म के लिए वह प्रयत्न हुआ, जो उससे पहले अशोक ने बौद्ध धर्म के लिए किया था।

□□

व्याख्याता—प्राचीन भारतीय इतिहास
शास० महाविद्यायय डिन्डौरी (मंडला)
(म० प्र०)

८. 'सुहस्तिनमितश्चार्य महागिरिरभाषत।
अनेषणीयं राजान्नं किमादत्से विदन्नपि ॥११४॥
सुहस्त्युवाच भगवन्यथा राजा तथा प्रजाः।
राजानुवर्तनपराः पौरा विश्राणयन्त्यतः ॥११५॥
मायेयमिति कुपितो जगदार्यमहागिरिः।
शान्तं पापं विसम्भोग खल्वतः परमावयोः ॥११६॥
—परिशिष्ट पर्व, एकादश सर्ग।

९. "आवैताढ्यं प्रतापदयः स चकाराविकारधीः।
त्रिखण्डं भरतक्षेत्रं जिनायतनमण्डितम् ॥ वही, ११।६५

१०. "सम्प्रति · पितामहदत्तराज्यो रथयात्राप्रवृत्त श्रीमार्य-सुहस्तिदर्शनाज्जात—जाति स्मृतिः··· जिनालय रूपादकोटि · अकरोत्।
—कल्पसूत्र सुबोधिनी टीका, सूत्र ६।

११. स्मिथ : अर्ली हिस्ट्री आफ इंडिया, पृ० २०२।

१२. टाड : राजस्थान, प्रथम भाग, पृ० ७२१–२३।

नरवर की श्रेष्ठ कलाकृति "सहस्रकूट जिनबिम्ब"

☐ प्रिंसिपल कुन्दन लाल जैन, दिल्ली

नरवर (नलपुर), जो कभी ऊदल (आल्हा-ऊदल) की ससुराल थी, जैन संस्कृति एवं कला का सर्वश्रेष्ठ केन्द्र रहा है। यहां की जैन मूर्तियां, आयागपट्ट एवं अन्य पुरातत्त्व और इतिहास की सामग्री शिवपुरी के संग्रहालय में सुरक्षित है। नरवर के संबंध में मैंने 'कादम्बिनी' और 'महावीर स्मारिका', जयपुर नामक पत्रिकाओं मे विस्तार से लिखा था, जिसमें नरवर स्थित जैन संस्कृति, इतिहास, पुरातत्त्व एवं साहित्य से संबंधित जो कुछ सामग्री मुझे उपलब्ध हो सकी थी, उस सब का उल्लेख किया था।

गत दो तीन वर्ष पूर्व झांसी जाने का सुयोग प्राप्त हुआ तो वहां के बड़े मन्दिर स्थित सहस्रकूट जिनबिम्ब के दर्शनों का सुअवसर मिला। दर्शन कर मन अत्यधिक प्रफुल्लित हुआ। यह कृति अत्यधिक कलापूर्ण और रमणीक है, मन को भा गई तो मैंने अपने संबधी श्री लखमीचन्द्र से जो साथ में थे, इस कलाकृति के संबध मे ऊहापोह किया। उन्होंने जो कुछ सुनाया उससे इस कृति के प्रति मेरी उत्सुकता और अधिक बढ़ गई और मै इस कलाकृति के प्रति और अधिक रुचिवान हो उठा। उन्होंने बताया कि इस का वजन लगभग एक क्विन्टल होगा और यह अष्ट-धातु की बनी हुई है। इसे नरवर के मन्दिर से लगभग सौ वर्ष पूर्व सोने के धोखे मे चुरा लिया गया था और यह झासी मे बर्तन बेचने वाले ठठेरे को बेची गई थी। जब झासी के जैनियो को इस कलाकृति का पता लगा तो उन्होंने उक्त ठठेरे को उचित मुआवजा देकर खरीद ली और बड़े मन्दिर जी में प्रतिष्ठित करवा दी।

चूंकि मैंने नरवर पर पर्याप्त सामग्री एकत्रित की थी और यह अनूठी कलाकृति नरवर की है यह जानकर मेरी जिज्ञासा और अधिक प्रबल हो उठी और मेरा आकर्षण इसके सूक्ष्म निरीक्षण और अध्ययन की ओर बढ़ गया। परन्तु उस समय परिस्थितिवश इसका विश्लेषण न हो सका। इसकी चर्चा श्री हरिहर निवास द्विवेदी, लश्कर तथा गौरीशंकर द्विवेदी झांसी से भी की थी। सौभाग्य से इस वर्ष दशहरे की छुट्टियों में झांसी जाने का सुयोग मिला। भगवान महावीर के २५सौवें निर्वाणोत्सव पर कुछ सामग्री एकत्रित करने शिवपुरी, कोलारस (कविलासनगर) भी गया, तो झांसी में सहस्रकूट जिनबिम्ब का भी निरीक्षण किया, जिसका चित्र नीचे दिया गया है। इसके ऊपरी भाग में जहां चतुर्मुख आदिनाथ की प्रतिमा है, वहा शाके सं० १५०६ उत्कीर्ण है, पर चौकोर पाटियों पर सं. १५१५ उत्कीर्ण है, अत. समय मे बड़ा अन्तर मालूम पड़ता है। लगता है कि शिल्पी शाके और विक्रमी सं० का अन्तर नहीं करपाये और ऐसी भूल कर गये है।

झांसी स्थित सहस्रकूट जिनबिम्ब

यह कलाकृति पीतल, तांबा आदि कुछ धातुओं के सम्मिश्रण की ढाली हुई काफी वजनदार मूर्ति है जो लगभग ४ या ४॥ फुट ऊंची है। यह नौ भागों में विभाजित है जिन्हें जोड़कर एक शिखरबंद संपूर्ण जिनालय का स्वरूप दिया गया है। ये नौ भाग हिलडुल कर कहीं बिखर न जायें इसलिए इन्हें तारों से कस कर बांधा गया है। सर्व प्रथम, इसमें चार इंच ऊंची चौकोर पीठिका है जिस पर पाट खड़े किये गये है इनमें से प्रत्येक पाट दो ढ़ाई फुट का वर्गाकार है। ये चारों पाट परस्पर बड़ी चतुराई और सावधानी से कलात्मक ढग से जोड़े गए है। इन्हें जोड़कर एक सुन्दर चौकोर कमरा-सा बन जाता है। इनके प्रत्येक पाट पर १५३-१५३ पद्मासन प्रतिमाएं है। मध्य में एक बड़ी प्रतिमा है जो लगभग ८" इंच ऊंची है और इस बड़ी प्रतिमा को केन्द्र मानकर इसके चारों ओर छोटी-छोटी १५२ प्रतिमाएँ हैं जो लगभग १ या १॥ इंच ऊंची हैं। विस्तृत विवरण निम्न प्रकार है।

मध्य मे स्थित बड़ी प्रतिमा के ऊपर और नीचे चार-चार पंक्तियां है जिनमें प्रत्येक पंक्ति में १४,-१४ छोटी प्रतिमाएं हैं तथा अगल-बगल में ४-४ पंक्तियां हैं जिनमें ५ ५ छोटी प्रतिमाएं हैं। इस तरह ५६+५६+२० +२०+१=१५३ कुल प्रतिमाएं एक पाट पर है चारों पाटों पर १५३×४=६१२ प्रतिमाएं हुईं। इन चारों पाटों के ऊपर फिर चार पाट इस कलात्मक ढ़ग से लगाये गये हैं कि वे एक शिखर का रूप धारण कर लेते हैं, इनमें से प्रत्येक पाट में ९, ९ पंक्तियां है इनमे से आगे पीछे के दोनों पाटों की प्रत्येक पंक्ति की प्रतिमाओं का क्रम उपर से नीचे ५, ७, ८, १०, १०, १२, १३, १५ और १७ है तथा अगल-बगल के दोनों पाटों की प्रत्येक पंक्ति की प्रतिमाओं का क्रम ऊपर से नीचे ५, ७, ८, ९, ११, १२, १३, १४ और १७ है। इस तरह ९७×२+९६ ×२=३९८ कुल प्रतिमाएं हुईं। अब सबसे अंत में आता है नौवां भाग जिसमे चार आदिनाथ प्रभु की पद्मासन प्रतिमाएं उसी आकार की है जिस आकार की प्रथम पाटियों के मध्य मे स्थित है। ये चारो परस्पर जुड़ी हुइ है और इन का मुख चारों दिशाओ की ओर है। इसमें हाथी, मोर तथा अन्य कलात्मक सामग्री द्वारा पूरी-पूरी सजावट की गई है। सबसे ऊपर पतली-सी पीतल की चादर का सुंदर कलात्मक कलश भी है। इस तरह ६१२+३८६+४= कुल १००२ प्रतिमाओं का सहस्रकूट चैत्यालय झांसी के बड़े मन्दिर में विराजमान है।

प्रथम चारों पाटों के ऊपर की कटनी पर बड़ा विस्तृत लेख उत्कीर्ण है जिसमें सं० १५१५ फागुन बदी १ सोमवार मूलसघे सरस्वतीगच्छे बलात्कार गणे ....." इत्यादि पढ़ा जा सका। पर्यूषण पर्व के प्रारम्भ में जब विशालन्हवन होता है तब इसे खोला जाता है, तभी इसको स्पष्ट रूप से पढ़ा जा सकता है। सबसे अंतिम भाग मे, जहां चारों प्रतिमाएं जुड़ी है, वहां जो कुछ उत्कीर्ण है वह इस प्रकार है : "शाके १५०९ माघ सुदी १५ बुधवार श्री मूलसंघे सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे कुदकुंदाचार्याम्नाए भट्टारक श्री धर्मभूषणोपदेशात् सि० पाक सा० भार्या सिं० रूपाई सुत रामा प्रणमति। सि० रामा जी केन कारापितम"
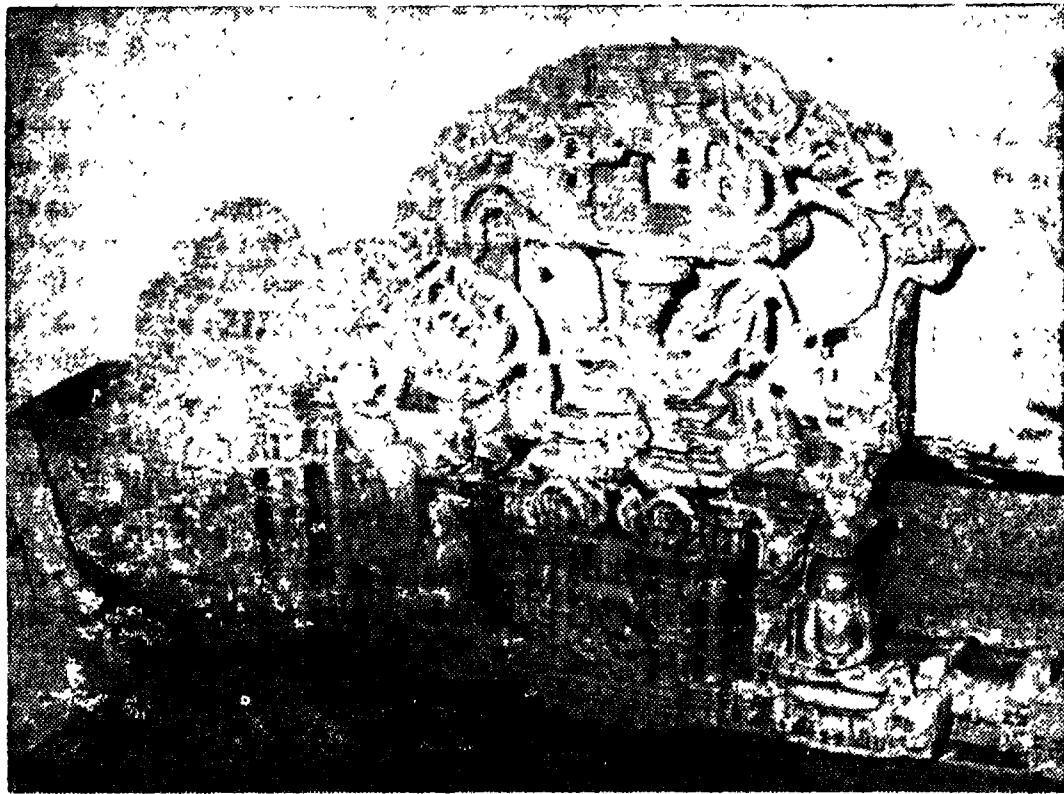
नरवर के जिन मन्दिर का कलापूर्ण ऊपरी भाग

उपर्युक्त शक सं० और वि० संवत के अंकन में कुछ भूल हो गई जैसी प्रतीत होती है। लगता है कि शिल्पी को शक और विक्रमी का अन्तर ज्ञात न रहा हो, या हम ही कहीं भूल रहे हों। अस्तु भ० धर्म भूषण बलात्कारगण की कारंजा शाखा से संबंधित प्रतीत होते है, वैसे इस नाम के अनेकों भट्टारक हुए हैं। शक सं० १५०३ में फागुन सुदी ७ को भ० धर्मभूषण के उपदेश से चन्द्रप्रभु की मूर्ति प्रतिष्ठित हुई थी जो नागपुर में है (देखिये भट्टारक सम्प्रदाय, पृ० ५०)। इस कलाकृति का निर्माण विशुद्ध-तया तकनीकी आधार पर हुआ होगा और संभव है कि ऐसे सहस्रकूट जिनबिंब और भी अधिक संख्या में निर्मित हुए होंगे जो अन्वेषणीय हैं। इस कृति के दूसरे नम्बर के पाटियों में जहां प्रतिमाओं की संख्या ६६ और ६७ है, वहां ६८, ६८ होतीं हो तो १००८ की संख्या बिलकुल ठीक हो जाती। लगता है। इस तकनीक में भी शिल्पी कहीं भूल कर गये हैं. इस कृति का चित्र प्रारम्भ में देख चुके हैं।

इसके अतिरिक्त, एक सहस्त्रकूट की रचना दिल्ली के दि. जैन नया मन्दिर, धर्मपुरा मे विद्यमान है, जो ३ मार्च, सन् १९६० मे धर्मपुरा के महिला-वर्ग ने अपने धन संग्रह से निर्मित कराया था। इसमे ला० हर सुखराय जी का भी उल्लेख है जो इस मन्दिर के मूल सस्थापक थे। यह रचना सफेद संगमर्मर की चोकोर वेदी के रूप में है इसमें सभी प्रतिमाएं खड्गासन है। इसमें प्रत्येक दिशा में १४-१४ पंक्तियां है। नीचे से प्रथम तीन पंक्तियों मे १८ १८ छोटी प्रतिमाएं तथा एक बड़ी प्रतिमा है सो कुल ५५ हुई फिर आठ पंक्तियां २१, २१ प्रतिमाओं वाली है जो १६८ हुई। बारहवीं पंक्ति में १७, तेरहवीं में ११ और चोदहवीं में केवल एक, इस तरह ५५+१६८+१७+११+२५२ कुल प्रतिमा एक तरफ हैं चारों तरफ २५२×४=१००८ सख्या बिलकुल सही है। इस का नक्शा निम्न प्रकार अवलोकनीय है :—
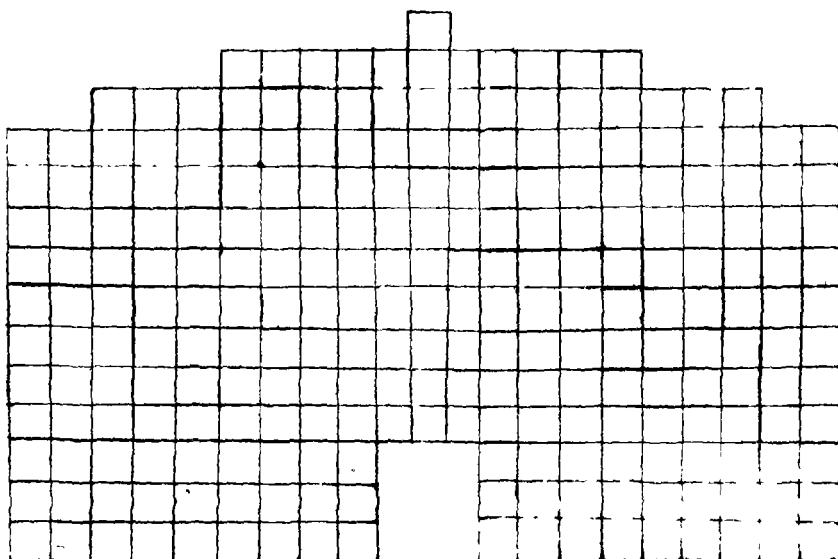
श्री दि० जैन नया मन्दिर धर्मपुरा दिल्ली स्थित सहस्त्रकूट की डिजाइन

उपर्युक्त धर्मपुरा का सहस्त्रकूट अत्यधिक आधुनिक है। अतः ऐतिहासिक दृष्टि से आज उसका भले ही विशेष महत्व न हो, पर आगे चलकर सहस्त्रकूट रचना की शृंखला में यह अति महत्वपूर्ण कड़ी सिद्ध होगा।

देवगढ़ (ललितपुर के पास) में भी पत्थर का एक विशाल प्राचीन सहस्त्रकूट चैत्यालय है जो नं० ५ का मन्दिर कहलाता है इसका निर्माण काल सं० ११२० हैं। इसके अतिरिक्त श्री नीरज जैन, सतना ने अनेकांत के १६वें वर्ष के ५१ पृष्ठ पर 'बानपुरका चतुर्मुख जिनालय' शीर्षक लेख लिखा था। उसमें सहस्त्रकूट चैत्यालयकी चर्चा कीं गई है, पर वहां के सहस्त्रकूट मे १००८ प्रतिमाओं का उत्कीर्णन कैसा-कैसा हुआ है इस संबंध में कोई चर्चा नहीं की। आशा है कि भविष्य में नीरज जी इस दिशा में कुछ प्रयत्न करेंगे। इसकी रचना सं० १२३७ के पहले हुई थी, क्योंकि अहार क्षेत्र स्थित भ० शान्तिनाथ के मूर्ति-लेख में बाणपुर के सहस्त्रकूट चैत्यालय का उल्लेख है जो निम्न प्रकार है। यह मूर्ति-लेख स० १२३७ का है अतः बाणपुर का सहस्त्रकूट चैत्यालय नि.सन्देह १२३७ से पूर्व की रचना है।

"गृहमतिवंशसरोरुहसहस्ररश्मिः सहस्रकूटयः ।
वाणपुरे व्यधितासीत श्रीमानिह देवपालकृति ॥"

इस सहस्रकूट चैत्यालय को गृहपति वंश के श्री देवपाल ने बनवाया था। इनके ही वंशजों में से श्री गल्हण ने अहार क्षेत्र में शांतिनाथ मन्दिर का तथा जगहण और उदयचन्द ने भ० शांतिनाथ की रमणीक मूर्ति का निर्माण कराया था (देखिये अनेकांत छोटेलाल स्मृति अंक पृ. ६३) चूंकि नीरज जी ने अपने लेख में उल्लेख किया है कि बाणपुर में सं० १००२ का शिलालेख मिलता है अतः सभव है कि बाणपुर का सहस्रकूट चैत्यालय सं १००२ के आस-पास ही देवपाल ने निर्मित कराया हो।

अभी हाल ही, भारतीय ज्ञानपीठ ने जैन कला और स्थापत्य के चित्रों की प्रदर्शनी मुनि विद्यानन्द हाल दरया-गंज, दिल्ली में लगाई थी। उसमें कुभरिया, (महसाना) के सहस्रकूट चैत्यालय का चित्र देखने को मिला। इसमें पद्मासन श्वेताम्बर प्रतिमाओं का समूह है। इसमें १७ पंक्तियां हैं। नीचे से प्रथम दो पंक्तियोंमें १५, १५ प्रतिमाएं हैं। फिर आठ पंक्तियों में ८, ८
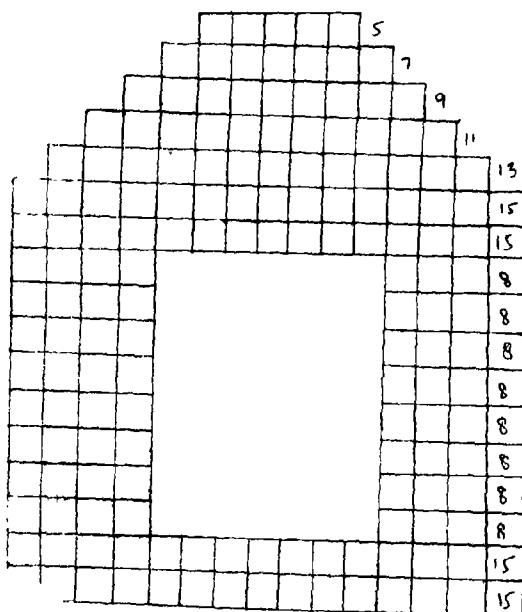
कुंभारिया (महसाना) स्थित सहस्रकूट की डिजाइन

प्रतिमाएं हैं। बीच में एक बड़ी प्रतिमा है, फिर दो पंक्तियों में १५, १५ प्रतिमाएं है इसके बाद १३ वीं पंक्ति में १३, चौदहवीं में ११, पन्द्रहवीं में ९, सोलहवीं में ७ और सत्ररहवीं में ३ प्रतिमाएं हैं, जिनका कुल योग १६७ होता है। चारों दिशाओं की १६७ × ४ = ६६८ प्रतिमाएं होती हैं। इस मूर्ति, संख्या पर 'श्रमण' अक्टूबर १९७४ में श्री अगरचन्द जी नाहटा का लेख पठनीय है कुंभरिया का नकशा नीचे प्रस्तुत है शिल्प सादृश्य एवं नकशे की डिजाइन से इसका मेल कुछ कुछ नरवर वाले सहस्रकूट से मिलता जुलता सा है।

अभी लगभग दो माह पूर्व श्री अगरचन्द नाहटा दिल्ली पधारे थे। 'सहस्रकूट' शिल्प के संबंध में उनसे चर्चा हुई थी। 'श्रमण' में भी उन्होंने लिखा है कि श्वेताम्बर आम्नाय में सहस्रकूट संबंधी कुछ साहित्य मिलता है, पर दिगम्बर आम्नाय में इस संबंध में कोई चित्र या साहित्य या कोई लिखित प्रमाण नहीं मिलता है। उन्होंने कई विद्वानों से परामर्श भी किया था, पर कोई संतोषजनक उत्तर न मिल सका। इतना तो निर्विवाद है कि दिगम्बर सहस्रकूटों में मूर्ति-संख्या १००८ सुनिश्चित ही है। इस १००८ संख्या का प्रतीक भले ही भगवान के १००८ शुभ लक्षण हों, सहस्रनाम हों या कोई और ही कारण हो, विद्वज्जन इस दिशा में शोध करें। पर सहस्रकूट जिनालय में प्रतिमाओं की संख्या सभी जगह १००८ ही पाई जाती है। पूजाओं मे भी ऐसा ही उल्लेख है।

श्वेताम्बरीय सहस्रकूट में १०२४ प्रतिमाओं का उल्लेख मिलता है। पर कहीं-कहीं इस संख्या में भी फेर-बदल मिलता है। इस पर श्री नाहटाजी ने अपने लेख में विस्तार से विवेचन किया है। प्रस्तुत लेख में उन्हीं के समाधान हेतु एवं दिगम्बर सहस्रकूटों की चर्चा हेतु लिखा गया है। त्रुटियों के लिए विद्वद् जन क्षमा करें। झांसी स्थित सहस्रकूट पर एक पूजा भी प्राप्त हुई है जो अब से लग-भग ४०-५० वर्ष पूर्व स्व० श्री बसन्तलाल जी हकीम ने रची थी जो आगे प्रस्तुत है। श्री नाहटा जी के मत से सहस्रकूट में १०२४ भिन्न-भिन्न तीर्थंकरों की मूर्तियां होती हैं, पर मेरे विचार से एक ही तीर्थंकर की १००८ प्रतिमाएं होती हैं विद्वज्जन शोध करें। □□

श्री सहस्रकूट जिन चैत्यालय पूजन

□ स्व० श्री बसन्तलाल जी हकीम

सहस्रकूट जिन चैत्य परम सुन्दर सुखकारी,
पावन पुण्य निधान दरस जग अघहारी।
रोग शोक दुख हरै विपति दारिद्र नसावै,
जो जन प्रीति लगाय नियम सें नित गुण गावें ।।

ॐ ह्रीं श्री सहस्रकूट जिन चैत्यालयानि अत्र अवतर अवतर संवौषठ ।
ॐ ह्रीं श्री सहस्रकूट जिन चैत्यालयानि अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।
ॐ ह्रीं श्री सहस्रकूट जिन चैत्यालयानि अत्र मम सन्निहितानि भव भव वषट् ।

नीर गंगा को शुचि लाय के कनक कुम्भन में सुभराय के ।
धार दे जिन सन्मुख हूजिये सहस्रकूट जिनालय पूजिये ।।
ॐ ह्रीं श्री सहस्रकूट जिन चैत्यालयेभ्यः जलम् निर्वपामीति स्वाहा ।

जगत में गंध सुहावनी लायकर ले अति मन भावनी ।
ताप हर जिन सन्मुख हूजिये सहस्रकूट जिनालय पूजिये ।।
ॐ ह्रीं श्री सहस्रकूट जिन चैत्यालयेभ्यः चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।

अमल तन्दुल श्वेत मँगाइये जास तैं अक्षय पद पाइये ।
थाल भर जिन सन्मुख हूजिये सहस्रकूट जिनालय पूजिये ।।
ॐ ह्रीं सहस्रकूट जिनचैत्यालेभ्यः अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा ।

कल्पवृक्षन के अति सोहने फूल कर में ले मनमोहने ।
मदन हर जिन सन्मुख हूजिये सहस्रकूट जिनालय पूजिये ।।
ॐ ह्रीं श्री सहस्रकूट जिन चैत्यालेभ्यः पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

निज सु आतम के हित कारने भूख की बाधा सु बिडारने ।
चरू सु ले जिन सन्मुख हूजिये सहस्रकूट जिनालय पूजिये ।।
ॐ ह्रीं श्री सहस्रकूट जिन चैत्यालेभ्यः नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

जगत जीवन मोह भरो हिये तासु के तम नाशन के लिये ।
दीप ले जिन सन्मुख हूजिये सहस्रकूट जिनालय पूजिये ।।
ॐ ह्रीं श्री सहस्रकूट जिन चैत्यालयेभ्यः दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

धूप ले धूपायन डारने अष्ट कर्मन के अघ जारने ।
कर्म हर जिन सन्मुख हूजिये सहस्रकूट जिनालय पूजिये ।।
ॐ ह्रीं श्री सहस्रकूट जिन चैत्यालयेभ्यः धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

मधुर फल उत्तम संसार में शिव प्रिया हित भरकर थार में ।
शिवपति के सन्मुख हूजिये सहस्रकूट जिनालय पूजिये ।।
ॐ ह्रीं श्री सहस्रकूट जिनचैत्यालयेभ्यः फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

जल सु आदिक द्रव्य सुधामई सुखद पदकर धर ले सही ।

शुद्ध मन जिन सन्मुख हूजिये सहस्रकूट जिनालय पूजिये ।।
ॐ ह्रीं श्री सहस्रकूट जिन चैत्यालयेभ्यः अर्घ निर्वपामीति स्वाहा ।

वसु विधि द्रव्य मिलाय परम सुन्दर सुखदाई ।
पूजें श्री जिन सहस्रकूट मंगलमय भाई ।।
ऋद्धि सिद्धि दातार और भव रोग मिटावें ।
श्रद्धा भक्ति सहित पूर्ण अर्घ चढ़ावें ।

ॐ ह्रीं श्री सहस्रकूट जिन चैत्यालयेभ्यः पूर्णार्घ निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाल

दोहा—सहस्रकूट जिन भवन की भक्ति हिये में धार ।
सुनो सरस जयमाल यह तज मन सकल विकार ।।

पद्धरी छन्द—सहस्रकूट जिन भवनसार है मध्यलोक में जे मंझार ।
कृत्रिम सुअकृत्रिम दो प्रकार भावें जिनवर जगनिहार ।।
जिनमें जिन प्रतिमा को प्रणाम है सहस्र एक वसु अधिक जान ।
पाषाण धातुमय अति पवित्र रचना है सुख दायक विचित्र ।।
जिस नाम लेत सब हरें ताप भव भव के नाशें सकल पाप ।
है तीन लोक आनन्द दाय सुर, नर, खग पूजत आय आय ।।
कोटीभट राजा श्रीपाल और अनेकन नृप निहाल ।
सहस्रकूट जिन भवन बंद कर्मन के काटे अमित फंद ।।
सोहे रचना अद्भुत श्रीजिनालय सहस्रकूट ।
है बनो अनूप अति विशाल ताको कछु वर्णन करहिं आज ।।
है भरत क्षेत्र के मध्य धाम इक आर्य बुन्देला खण्ड धाम ।
ताको जु केन्द्र अति विशद गात है 'झाँसी' नगर सुजग विख्यात ।।
तहाँ श्री जिन मन्दिर है महान तामें बेदी शोभै प्रधान ।
पर सहस्रकूट जिन भवन सार है धातु मई रचना अपार ।
तहाँ स्तुति बन्दन करहिं भव्य अर्चें दे नित लेकर अष्ट द्रव्य ।
हमहूँ तिनकी पूजन रचाय कर रहे सकल मन वचन काय ।

ॐ ह्रीं श्री सहस्रकूट जिन चैत्यालयेभ्यः महार्घ निर्वपामीति स्वाहा ।

घत्ता

सहस्रकूट जिन भवन अनूप ताकी सेव करें चित ल्याय ।
ताके मन अति सुमति प्रकाशै दुर्गति जग की जाय पलाय ।।
वृद्धि होय नित सम्पति गृह में तातें धर्म वृद्धि हुलसाय ।
पात्र धर्म का बन 'बसन्त' जग अनुक्रम करके शिव सुख पाय ।।

इत्याशीर्वादः

सहस्रकूट पूजा व चित्र
डा० राजेन्द्रकुमार जैन, झांसी
के सौजन्य से

□ ६८ कुन्तीमार्ग, विश्वासनगर
शाहदरा, दिल्ली-११००३२

एक अन्तर्राष्ट्रीय जैन शोध-संस्थान की आवश्यकता

☐ डा० देवेन्द्रकुमार शास्त्री, नीमच

कई वर्षों से यह विचार बराबर चल रहा है कि जैनों की कोई एक शोध व अनुसन्धान की ऐसी संस्था होनी चाहिए जो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की हो और जिसमें सभी जैन विषयों के अध्ययन, समीक्षा, संशोधन, तुलनात्मक एवं ऐतिहासिक पर्यवेक्षण तथा विशद रूप से अध्ययन-अध्यापन एवं निर्देशन की सुविधा प्राप्त हो। जैन धर्म तथा तद्विषयक वाङ्मय के अनुशीलन एवं पर्यवेक्षण से पता चलता है कि अभी तक जो समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है वह अधिकतर परिचयात्मक तथा व्यापक विवरणात्मक है। ठोस अध्ययन रूप में निष्कर्ष, परीक्षण तथा व्यापक परिवेष में तुलनात्मक अध्ययन अभी तक नहीं के बराबर हुआ है। इन सब उपलब्धियों को प्राप्त करने के लिए दो या चार विद्वान् पर्याप्त नहीं हो सकते है। प्रायः दो-चार विद्वानों की परिकल्पना कर हम समझने लगते हैं कि शोध-संस्थान तैयार हो जायेगा। परन्तु संस्थान की पूर्णता के लिए व्यापक परिधि की आवश्यकता है।

सुझाव और परिकल्पना

केवल जैन विद्वान् ही नहीं अन्य देश-देशान्तरों के विद्वान्, शिक्षा शास्त्री तथा इतिहासविद् समय-समय पर इस आवश्यकता का अनुभव करते रहते है कि जैनों का कोई विश्वविद्यालय होना चाहिए। अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के न्यायाधीश श्रीराधाविनोदपाल और डा० कालिदास नाग बहुत पहले ही यह बात कह चुके है। अन्य अनेक विद्वान् भी इस बात पर बल देते रहे है कि जैन विश्वविद्यालय स्थापित किया जाये। काका साहब कालेलकर जिस जैन विश्वमिशन की परिकल्पना रखते हैं, उसके मूल में भी जैनधर्म व संस्कृति एवं दर्शन का भारतीय एवं पाश्चात्य दर्शनों के साथ तुलनात्मक एवं समन्वयात्मक विश्लेषण तथा संश्लेषण सम्मिलित है। अध्ययन व अनुसन्धान की इस नयी परम्परा को गति देने के लिए यह बहुत आवश्यक है कि व्यापक दृष्टि को ध्यान में रखकर अन्तर्राष्ट्रीय जैन संस्थान की स्थापना होनी चाहिए। यह प्रश्न केवल हमारे सामने ही नहीं, सरकार के सामने भी होना चाहिए। भ० महावीर की पच्चीससौवीं निर्वाण शताब्दी के उपलक्ष में यदि इस महान्, स्थायी और बुनियादी की लक्ष्य की पूर्ति हो जाती है तो हम समझेंगे कि हमारा निर्वाण महोत्सव मनाना सफल हो गया है।

यह सवाल कोई पहली बार हमारे सामने नही आया है। कई बार और रूपों में जैन समाज के धनी, मानी और प्रबुद्ध लोगो के समक्ष यह समस्या प्रश्नवाचक चिन्ह बन कर आ चुकी है। इस सम्बन्ध में सबकी अपनी अलग-अलग ढंग की प्रतिक्रियायें हैं। हम यहाँ उन सबको ध्यान मे रखकर यह कहना चाहते हैं कि समाज में किसी बात की कमी हमे नहीं मालूम पड़ती है। जो साधुसन्तों के चातुर्मास के व्यय में लगने वाले लाखों रुपये के दायित्व को अकेले वहन कर सकते हैं, जो बड़े-बड़े प्रतिष्ठा महोत्सवों में लाखों रुपये लगा सकते है और जो मन्दिर निर्माण में तथा सोने-चाँदी की मूर्तियों के निर्माण कार्य एवं प्रभावना आदि में लाखों रुपये खर्च कर सकते है, क्या वे जिनवाणी के उद्धार के लिए, श्रुत की परम्परा जीवित रखने के लिए तथा जिन धर्म को सजीव और जनव्यापी बनाने के लिए क्या इतना त्याग नहीं कर सकते कि एक विश्वविद्यालय तैयार हो सके?

प्रयोजन

इस युग में जिनवाणी तथा आगम की सुरक्षा के लिए शोध संस्थान से बढ़कर कोई अच्छा साधन नहीं है। जिन दृष्टाओं ने युग की इस आवश्यकता को पहले ही पहिचान लिया, वे पार्श्वनाथ विद्याश्रम, वाराणसी, लालभाई दलपतभाई शोध संस्थान, अहमदाबाद और जैन विश्वभारती, लाडनूं (राजस्थान) जैसी संस्थाओं को जन्म देकर उनका विकास कर रहे है। पं० फूलचन्द्रजी जैन, सिद्धान्त शास्त्री 'वर्णी शोध संस्थान' को भी इस रूप में पल्लवित करना चाहते है। इनके अतिरिक्त 'महावीरायतन' की योजना भी चल रही है। वैशाली में 'प्राकृत रिसर्च इन्स्टीट्यूट' बहुत पहले से चल रही है। परन्तु

प्रस्तावित योजना इन सबसे भिन्न है। जैनधर्म की व्यापकता, उदारता और सर्व स्वतंत्रता तथा समन्वय की परम व्यापक व उदार दृष्टि को ध्यान में रखकर यह उचित है कि ऐसी एक संस्था को जन्म दिया जाए जो सभी साम्प्रदायिक, पूर्वाग्रहमुक्त सार्वजनीन व्यापक हित को लिए हुए केवल विशुद्ध शोध व अनुसन्धान के लक्ष्य से अनुबद्ध हो और अनुसन्धानात्मक प्रस्थापनाओं के आधार पर जैनधर्म, को सर्वांगीण रूप में प्रतिफलित करने वाला हो।

कुछ सुझाव

इस अन्तर्राष्ट्रीय जैन शोध संस्थान की प्रस्थापना के मूल में कुछ मुख्य बातें निम्नलिखित है :—

(१) सम्पूर्ण जैन वाङ्मय का संकलन एक स्थान पर होना चाहिए। हस्तलिखित तथा प्रकाशित रूप मे जो भी जैन साहित्य उपलब्ध हो, उसकी शोध-खोज करके एक विशाल पुस्तकालय का निर्माण किया जाए।

(२) प्रकाशित तथा अप्रकाशित जैन साहित्य की एक विस्तृत सूची का प्रकाशन होना चाहिए। यह सूची केवल नाम मात्र की न हो वरन् विशिष्ट ग्रन्थों की संक्षिप्त तथा महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करने वाली हो।

(३) सन्दर्भ तथा कोशग्रन्थों का निर्माण संस्था के तत्वावधान में होना चाहिए। केवल दर्शनशास्त्र की ही नहीं, अन्य विषयों की पारिभाषिक शब्दावली का विवेचन एवं कोश ग्रन्थों के निर्माण की आज बहुत बड़ी आवश्यकता है। कई विषय तो आज तक एकदम अछूते और उपेक्षित हैं।

(४) जैन आगम ग्रन्थों में वनस्पति, प्राणिविज्ञान आदि से सम्बन्धित जो वैज्ञानिक विषय मिलते हैं, उनका तुलनात्मक अध्ययन हो और नवीन अनुसन्धानों के आधार पर पुरानी मान्यताओं का प्रामाणिक विश्लेषण किया जाए। इतना ही नहीं, जैन आगमों के इन वैज्ञानिक विषयों के सम्बन्ध में अब किस प्रकार के शोध अनुसन्धान की दिशा में वैज्ञानिक लोग नई प्रगति का कार्य कर सकते हैं, क्या दिशा निर्देशन हो सकता है, भविष्य के लिए यह एक महत्वपूर्ण शोध कार्य होगा। इससे जहाँ जैन धर्म की प्रामाणिकता वैज्ञानिक रूप से हमारे सामने आएगी, वहीं विश्व को विज्ञान के क्षेत्र में एक नई दिशा मिलेगी और इस प्रकार विज्ञान की उन्नति में जैन धर्म का महत्वपूर्ण योग माना जाएगा।

(५) जैन धर्म के इतिहास के विशद् पुनर्लेखन का कार्य भी इस संस्था के तत्वावधान में हो सकता है जो वर्ष, दो वर्ष का कार्य न होकर कई वर्षों के ऐतिहासिक अध्ययन, निरीक्षण, विश्लेषण तथा नवीन पुरातत्व की सामग्री पर आधारित होगा। इतिहास की प्रामाणिकता अधिकतर पुरातत्व के आधार पर निरूपित की जाती है। आगम तथा पुराणों का उपयोग केवल पुरातात्त्विक विषयों को समझाने के लिए किया जाता है। इसलिए जैन साहित्य में उपलब्ध सामग्री से पुरातत्व की सामग्री का ताल मेल हो और अमुक विषय को पुष्ट करने में दोनों का समन्वित उपयोग हो। यह दृष्टि और कार्य इतिहास विभाग के द्वारा सम्पन्न हो सकेगा।

(६) इसी प्रकार से अन्य महत्वपूर्ण विषय है, जिनका अध्ययन, अनुसन्धान व परीक्षण नई पद्धति से होना चाहिए। जिससे उसकी उपयोगिता और सार्वजनिक महत्व स्पष्ट रूप से संसार के सामने प्रकट हो सके।

(७) उक्त सभी अध्ययन व अनुसन्धान की प्रगति से होने वाले परिणामों को प्रकट करने वाली कोई प्रकाशन व्यवस्था होनी चाहिए। प्रकाशन के अन्तर्गत प्रगति-विवरण, महत्वपूर्ण शोध निबन्धो का सार, वैज्ञानिक महत्वपूर्ण उपलब्धियो तथा दार्शनिक जगत् का संक्षिप्त विवरण किसी पत्रिका के माध्यम से प्रकाशित होना चाहिए।

इस सम्बन्ध में अभी और विस्तार से अपने विचारों को प्रकट न करके इतना ही कहना चाहता हूँ कि यदि भ० महावीर की पच्चीस सौवीं निर्वाण शताब्दी के इस पावन अवसर पर हम ऐसी संस्था को जन्म दे सके, तो निश्चय ही हमारी आत्मा को सुख व संतोष मिलेगा और एक ठोस व स्थायी कार्य हमारे सामने प्रकट होगा। यह लिखने की कोई आवश्यकता नहीं है कि प्रत्येक शुभ कार्य में अनेक विघ्न आते हैं। हमारे समाज में अनेक विघ्न-सन्तोषी लोग हैं! फिर अच्छे कार्यकर्ता भी सुलभ नहीं हैं। विद्वानों की भी कमी है। परन्तु यह सब होने पर भी इस पवित्र कार्य को प्रस्थापित किया जा सकता है। मेरी अन्तर्चेतना इस कार्य को सर्वाधिक महत्वपूर्ण समझती है। इसलिए बार-बार आप सबसे अनुरोध करती है।

मध्यप्रदेश के जैन पुरातत्त्व का संरक्षण

□ श्री अगरचन्द नाहटा, बीकानेर

मध्यप्रदेश भारत का एक विशाल और महत्वपूर्ण प्रान्त है। जैन धर्म का प्रचार भी वहां बहुत अच्छे रूप में रहा है और है पहले यह अनेक राज्यों मे बँटा हुआ था; अतः मध्यप्रदेश के जैन इतिहास पर कोई ग्रंथ न लिखा जा सका। मालवा और बुन्देलखण्ड के जैन इतिहास पर तो कई ग्रंथो मे अच्छा विवरण मिलता है, पर समूचे मध्यप्रदेश में जैन धर्म की क्या स्थिति रही, इसकी जानकारी के लिए कोई ग्रन्थ उपलब्ध नही है। भगवान महावीर के २५००वें निर्वाण महोत्सव पर मध्यप्रदेश की सरकार और यहां का जैन समाज लाखों रुपया खर्च करेगा। पर अभी तक कोई ऐसी योजना सामने नहीं आई जिसमें मध्यप्रदेश के ढाई हजार वर्षों के जैन इतिहास सम्बन्धी कोई ग्रंथ तैयार हो गया हो। यह कमी मुझे बहुत अखर रही है। पर ऐसे विशाल और महत्वपूर्ण ग्रन्थ के लिए केवल खर्च का ही प्रश्न नहीं है, अधिकारी लेखकों की मण्डली जुटाना भी बहुत कठिन लगता है। अभी तक तो इस प्रदेश के इतिहास की सामग्री पर भी ध्यान नही दिया जा रहा है तो आधारभूत प्रामाणिक सामग्री के बिना मध्यप्रदेश का जैन इतिहास लिखा भी कैसे जा सके? इसीलिये एक परमावश्यक सुझाव दिया जा रहा है; इसे प्रान्तीय सरकार और जैन समाज शीघ्र ही क्रियान्वित करे, यही अनुरोध है।

मैं कई वर्षों से 'मध्यप्रदेश सन्देश' का लेखक और पाठक हूं। उसमें प्रकाशित अनेक जैनेतर विद्वानों के लेखों से मुझे ऐसा लगता है कि इस प्रदेश में जैन पुरातत्व बहुत अधिक है, एवं जैन पुरातत्व सम्बन्धी जितना कार्य जैनेतरों ने किया है, उसका दशांश भी जैन समाज ने नहीं किया, जब कि यहां की जैन समाज बहुत ही समझदार एवं सम्पन्न है। मैं उज्जैन और इन्दौर में कई बार गया तो मुझे लगा कि वहाँ की जैन समाज प्रबुद्ध और धर्म प्रेमी है। वह अन्य कामो में लाखों रुपया खर्च करती है, पर जैन पुरातत्व के संग्रह एवं सरक्षण का कुछ प्रयत्न वर्षों पहले हुआ था, उसके बाद उल्लेखनीय कुछ भी कार्य सामने नहीं आया। श्री सत्यंधर कुमारजी सेठी से जब वहाँ के जैन पुरातत्व संग्रहालय संबंधी बात हुई तो उन्होंने कहा कि हमारे देखने-जानने में इधर के गाँव-गाँव में जैन मूर्तियाँ आदि बिखरी पड़ी थीं, उनमें से थोड़ी सामग्री ही एकत्र की जा सकी, बाकी प्रायः नष्ट हो गई। उनका कहना तो मालवे तक ही सीमित था पर अब मैं देख रहा हूँ कि विशाल मध्यप्रदेश के अनेक स्थानो में जैन पुरातत्व बिखरा पड़ा है और नष्ट हो रहा है, पर जैन समाज का उसके संग्रह एवं संरक्षण की ओर तनिक भी ध्यान नही है रामवन, सतना, भोपाल, शिवपुरी आदि में संगृहीत जैन मूर्तियों की सूचना मुझे मिली है। पर मैं वहाँ जा नही पाया। रायपुर का सग्रहालय काफी वर्ष पहले देखा था, और ग्वालियर का सरकारी संग्रहालय भी। पर 'मध्यप्रदेश सन्देश' मे समय-समय पर जो लेख जैन पुरातात्विक सामग्री की सूचना देने वाले प्रकाशित होते है उनसे काफी नयी और महत्व की जानकारी मिलती रहती है। मैंने उनमें से कुछ लेखों की सामग्री जैन पत्रिकाओं मे अपनी टिप्पणी के साथ लेख रूप मे प्रकाशित भी करवाई है, फिर भी मध्यप्रदेश के किसी भी जैन बंधु का उसके महत्व की ओर ध्यान ही नहीं गया, यह बहुत ही खेद और आश्चर्य की बात है।

शिलालेख—

इतिहास के सर्वाधिक प्रमाणिक साधन होते है शिलालेख। मध्यप्रदेश की सैकड़ों-हजारों जैन मूर्तियों पर जो लेख खुदे हुए हैं, वे वहाँ के जैन इतिहास पर बहुत महत्वपूर्ण प्रकाश डालते है। हमें खंडित मूर्तियों की इसलिये उपेक्षा करते हैं कि वे पूजनीय नहीं है पर उन पर जो लेख खुदे हुए रहते हैं, उनका बहुत महत्व है। कभी-कभी

तो उन लेखों से इतिहास की कायापलट हो जाती है। इसलिये जैन मंदिरोंमे जो लेखवाली मूर्तियाँ है, वे चाहे छोटी हों या बड़ी हों, पाषाण की हो या धातु की हो, उन सबके लेखों की नकल करने के साथ-साथ खंडित मूर्तिया भी जो इधर-उधर पड़ी हैं, उन सबके लेखो का सग्रह भी प्रकाशित करना चाहिये। किस लेख से क्या महत्वपूर्ण और नयी जानकारी मिल जावे, इसका अनुमान ही नही लगाया जा सकता। उन लेखों में केवल जैन इतिहास नहीं, भारतीय इतिहास की भी महत्वपूर्ण सामग्री सुरक्षित है। अभी-अभी जो रामगुप्त के नामोल्लेख वाला जैन प्रतिमा लेख एक और प्रकाश मे आया है, उससे रामगुप्त संबंधी नये चिंतन का अवसर मिला है। अभी खोज करने पर जैन मूर्तियों पर खुदे हुए अनेक ऐसे लेख मिलेगे, जिनसे भारतीय इतिहास पर नया प्रकाश पड़ेगा।

'मध्यप्रदेश सन्देश' का ता० ३० अक्टूबर, १६७१ का अंक मेरे सामने है। उसमें 'बदनावर की परमारकालीन स्मृतियाँ' लेख में कई जैन प्रतिमाओं के लेख छपे हैं। इसी तरह इसी अंक में 'प्राचीन ग्राम भुन्नास' नामक लेख श्री जगदीश दुबे का छपा है, उसमे भी सम्वत् ११६५ का एक जैन प्रतिमा लेख छपा है। श्री जगदीश दुबे ने लिखा है कि 'दिगम्बर धर्मी विद्वानो के मत से यह स्थल उनके प्राचीन धर्मी तीर्थों में गिना जाता रहा है। उनके धर्म-ग्रंथों में इस प्राचीन नगर की चर्चा कही-कही दूसरे नामों से होती है, जो कि एक विशद ऐतिहासिक अन्वेषण का विषय बन सकती है।

होशंगाबाद जिले में हरदा तहसील स्थित भुन्नास ग्राम की आबादी के समीप ही एक मन्दिर है, जिसके सामने के भाग में सामान्य-सी खुदाई के फलस्वरूप ५-६ वर्ष पूर्व कुछ मूर्तियाँ निकली थी, इन्ही में काले प्रस्तर पर निर्मित जैन तीर्थङ्कर पद्मप्रभु जिनेन्द्र की प्रतिमा भी है। तीर्थ-ङ्कर प्रतिमा की पीठिका मे लगभग ३ फुट की लम्बाई मे २ पंक्तियों वाला एक शिलालेख भी अंकित पाया गया। उक्त शिलालेख की लिपि अपभ्रंश संस्कृत मे मध्ययुगीन काल की है। इसमे सम्वत् ११६५ बैशाख सुदी ३ का उल्लेख किया गया है। इस शिलालेख को कुछ वर्ष पूर्व लेखक ने उज्जैन के प्रसिद्ध पुरातत्व वेत्ता श्री वि. वाकण-कर, प्राचार्य, भारतीय कला भवन, माधवनगर, उज्जैन से पढ़वाया था। उन्होने इस शिलालेख का जो आशय अनुवाद किया है, वह निम्नानुसार है—

"१. पहली पंक्ति—ऊँ त्रैलोक्य मेरू जिनेन्द्र पद्मप्रभु की प्रतिमा को मारू नाहट के सुत नंदठठक ने निज वश की यशकीर्ति वल्ली को बढ़ाने के लिये प्रतिस्थापित किया।

२. दूसरी पंक्ति— ठठ्ठक के पुत्र बालण (अस्पष्ट) हरिश्चन्द्र राजा ..

३. तीसरी पंक्ति— ठठ्ठक पत्नी चारिणी प्रणाम करती है। सम्वत् ११६५ वैशाख सुदी ३॥ सु० महामंगल श्री। जास्य प्रणाम करता है। सूत्रधार विपाठक ने किया अर्थात् मूर्ति और लेख तैयार किया।"

उपरोक्त शिलालेख के पढ़ने व अनुवाद मे कुछ गल-तियाँ रह सकती हैं पर ऐसे जैन लेखों मे जो स्थान और राजाओं का नाम रहता है उसका भौगोलिक और ऐति-हासिक महत्व है। वह ग्राम, नगर कितना पुराना है और कहाँ किस सम्वत् में कौन शासक था, यह जानकारी उस प्रदेश के इतिहास के लिये महत्व की है ही।

श्री जगदीश दुबे ने लिखा है कि उपरोक्त जैन भग्न प्रतिमा के पार्श्व मे किसी भवन निर्माण हेतु जब खुदाई की गई तो प्रतीत हुआ कि कोई विशाल प्रागण, प्राचीन मन्दिर का वहाँ है। यहाँ की कुछ मूर्तियाँ अष्ट धातुओं की हरदा के दिगम्बर जैन मन्दिर में प्रतिष्ठित है, जो कि तीर्थङ्कर की शिलालेख युक्त जैन प्रतिमा है।

यह तो केवल दृष्टात के रूप मे उद्धरण दिया गया है। मध्यप्रदेश में हजारों जैन प्रतिमा लेख है, जिनका संग्रह किया जाय तो अनेक जैनाचार्यों, गच्छों, जातियों, श्रावकों आदि के सम्बन्ध में नई जानकारी प्रकाश में आयेगी।

मेरी राय में अभी मध्यप्रदेश में, कई जैन जैनेतर विद्वान् वहाँ के जैन इतिहास लिखने मे सहायक हो सकते है, जैसे श्री कृष्णदत्तजी वाजपेई सागर विश्वविद्यालय में है, वे जैन धर्म और पुरातत्व के अच्छे विद्वान् है। रायपुर म्युजियम में श्री बालचन्द जैन हैं ही। उज्जैन विश्व-

[शेष पृ० ६१ पर]

भारतीय पुरातत्त्व तथा कला में भगवान महावीर

□ श्री शिवकुमार नामदेव

जिन पूत महात्माओं पर भारतवर्ष उचित गर्व कर सकता है, जिनके महान् उपदेश सहस्रों वर्ष की कालावधि को चीरकर अद्यावधि प्रेरणा के स्रोत बने हुए हैं, उनमें जैनधर्म के अन्तिम तीर्थङ्कर भगवान् महावीर का स्थान सर्वोपरि है। उनके पुण्य स्मरण से हम निश्चित रूपेण गौरवान्वित होते है।

भारतीय कला के आधार पर यह कहा जा सकता है कि जैनधर्म में मूर्तिपूजा अत्यधिक प्राचीन है। जैनधर्म का प्रचार भारत मे सर्वत्र है, अत. गुजरात, राजस्थान, उत्तरप्रदेश, बिहार, उड़ीसा, कर्नाटक, मध्य प्रदेश आदि राज्यों में जैन प्रतिमायें प्रचुर संख्या मे उपलब्ध होती हैं। जैन प्रतिमाओं मे तीर्थंकर प्रतिमाओं की ही प्रधानता है। तीर्थंकर के अतिरिक्त अन्य सभी मूर्तियाँ गौण समझी जाती है। चौबीस तीर्थंकरो की प्रतिमाओं में साम्य होने पर भी प्रतिमाएँ लाछन, वर्ण, शासनदेवता और देवी (यक्ष-यक्षिणी), केवलवृक्ष तथा चामरधारी एवं चामरधारिणी के आधार पर अलग-अलग तीर्थंकरों की समझी जाती है।

तीर्थंकर जीवन्मुक्त महापुरुष होते है। उनके हृदयो पर श्रीवत्स अर्थात् चक्र रहता है। यह धर्मचक्र कहलाता है। इनके आसन के नीचे अंकित प्रतीक धारणाधर्म के प्रतीक है। इनके विग्रह के साथ त्रिशूल और सभी विग्रहो के ऊपर त्रिछत्र होते है, ये रत्नत्रय (दर्शन-ज्ञान-चारित्र) के प्रतीक है। प्रत्येक तीर्थंकर की माता तीर्थंकर के जन्म के पूर्व स्वप्न मे कुछ न कुछ देखती है। यही देखी हुई वस्तु उस तीर्थंकर का लाछन[1] होता है। प्रत्येक तीर्थंकर ने किसी न किसी वृक्ष के नीचे कैवल्य प्राप्त किया था, उस वृक्ष से उनका निकट का सम्बन्ध है।

भारतीय कला मे महावीर की प्रतिमाएँ सर्वत्र प्राप्त होती है। उनका वाहन सिंह है। अपराजितपृच्छा एवं वास्तुसार के अनुसार इनका शासनदेव मातङ्ग है। शासनदेवी के सम्बन्ध में दोनों ग्रन्थो में दो भिन्न नाम प्राप्त होते है। अपराजितपृच्छा के अनुसार अपरा एववास्तुसारके अनुसार देवी का नाम सिद्धायिका ज्ञात होता है। इसी प्रकार दोनों ग्रंथों मे यक्षो एवं यक्षिणियों के वाहन एवं लाछन के विषय मे भी मतभेद है। अपराजितपृच्छा के अनुसार महावीर का काचन वर्ण चित्र्य है।

महावीर की प्रतिमा कला मे ईसवी सन् पूर्व में निर्मित नही मिलती है। इसका एक मात्र उदाहरण आयागपट्ट के मध्य मे खुदी आकृति मे पाया जाता है। इसमे महावीर ध्यानमुद्रा मे दिखलाये गये है।[3] दिगम्बर मूर्तियाँ अधिक सख्या मे मिलती है।

भारतीय कला का क्रमबद्ध इतिहास मौर्यकाल से प्राप्त होता है। सम्राट् अशोक का उत्तराधिकारी सम्प्रति

१. चतुर्दश स्वप्न के लाछन का विवरण इस प्रकार है—
गजो वृषो हरिः साभिषेकश्रीः स्रक् शशी रविः।
महाध्वजः पूर्णकुम्भः पद्मसरः सारित्पतिः।
विमानं रत्नपुञ्जश्च निर्धूमोऽग्नि रिति क्रमात्।
ददर्श स्वामिनी स्वप्नान्मुखे प्रविशतस्तदा॥
Jain Iconography—B. C. Bhattacharya, Lahore 1939, Chapter VI मे त्रिषष्टिशलाका और उत्तरपुराण से पृ० ५१ में उद्धृत।

२. २४ तीर्थंकरो के निम्न २४ लांछन है—
वसह गय तुरय वानर कुंचो कमल च सत्थियो चंदो। मयर सिरिवच्छ गण्डय महिस वराहो य सेणो य॥ वज्जं हरिणो छगलो नन्दावत्तो य कलस कुंभो य। नीलुप्पल संख फनी सीहो अ जिणाण चिण्हाइ।—
Jain Iconography, पृ. ४६.

३. प्राचीन भारतीय मूर्ति-विज्ञान—वासुदेव उपाध्याय, चित्रफलक ८१.

जैन धर्मावलम्बी था। बौद्ध ग्रन्थों में अशोक को जो स्थान प्राप्त है, वही स्थान जैन ग्रंथों में सम्प्रति को प्राप्त हुआ है। मौर्यकालीन जैन प्रतिमायें लोहानीपुर आदि स्थलों से प्राप्त हुई हैं। पार्श्वनाथ की एक कांस्य प्रतिमा जो कायोत्सर्ग आसन में है, बम्बई संग्रहालय में सुरक्षित है। मौर्यकाल की तीर्थंकर भगवान् महावीर की प्रतिमा अभी तक उपलब्ध नहीं हुई है।

कुषाण-युग में बौद्ध प्रतिमा के सदृश ही जैन मूर्तियां निर्मित की गईं जो बौद्ध प्रतिमाओं के पीछे निर्मित हुई। कुषाणकालीन मथुरा-कला में तीर्थंकरों के लांछन नहीं पाये जाते, जिनसे कालांतर में उनकी पहचान की जाती थी। केवल ऋषभनाथ के कंधे पर खुने केशों की लटें और सुपार्श्वनाथ के मस्तक पर सर्प-फणों का आटोप बनाया गया है।

कुषाणकालीन अनेक कलात्मक उदाहरण मथुरा के कंकाली टीले के उत्खनन से उपलब्ध हुए है। उसमें अमोहिन द्वारा प्रदत्त आयागपट्ट की तिथि ई. पूर्व की स्थिर की गई है। यह गोलाकार पूजानिमित्तक शिलापट्ट है जिसके मध्य में ध्यानमुद्रा में महावीर की छोटी-सी मूर्ति दृष्टि-गोचर होती है।[५] सम्भवत: योगी के स्वरूप को ध्यान में रखकर महावीर की आसन मूर्ति बनाई गई हो। जैन धर्मा-वलम्बी प्राचीन परम्परा से पृथक् न होकर कृतसंकल्प होते थे; इसलिए स्वदेशी परम्परा से विमुख न हुए। महावीर लघु आकृति के चारों ओर जैनमत के निम्न आठ मांगलिक चिन्हों का अंकन है—

(१) स्वस्तिक, (२) दर्पण, (३) भस्मपात्र, (४) बेत की तिपाई (भद्रासन), (५-६) दो मीन, (७) पुष्प-माला, (८) पुस्तक।

इन चिन्हों की स्थिति से मूर्ति को जैन प्रतिमा मानने में संदेह नहीं रह जाता। आयागपट्ट जैनकला की प्राचीनतम कृति है। डा० स्मिथ मथुरा से प्राप्त कुछ जैन प्रतिमाओं की पीठ पर अंकित सिंह को महावीर का लांछन मानकर महावीर की पहचान करते हैं।[५] परन्तु वह विधान तर्कसंगत नहीं जान पड़ता, क्योंकि पीठ पर अंकित सिंह सिंहासन के सूचक है, न कि लांछन के; और यदि वे महावीर के लांछन होते तो उन्हें पीठ के मध्य में चित्रित किया जाता जैसा कि हम परवर्ती काल की जिन-प्रतिमाओं में पाते हैं।

महावीर की कुषाणकालीन एक अन्य प्रतिमा मथुरा के संग्रहालय में सुरक्षित है। इसमें महावीर को उत्थित पद्मासन में बैठे हुए दिखलाया गया है। मस्तक के पीछे ऊपर छल्लेदार केश हैं। अंगों का विन्यास ठस न होकर लोचयुक्त है। मुख पर दिव्य छवि है।[६]

गुप्तकाल धार्मिक सहिष्णुता का काल था, अतः बौद्ध तथा ब्राह्मण मूर्तियों के अतिरिक्त इस कालकी जैन मूर्तियां भी मिली हैं। गुप्तकालीन जैन प्रतिमायें कलात्मक एवं सौंदर्य की दृष्टि से उत्तम समझी जाती हैं। 'अधोवस्त्र' तथा 'श्रीवत्स' दो प्रमुख विशेषतायें है जो गुप्तयुग में परिलक्षित होती हैं। जैन मूर्तियों की बनावट उत्तम कोटि की है। गुप्तयुग से जैन प्रतिमाओं मे यक्ष-यक्षिणी, मालावाही गंधर्व आदि देवतुल्य मूर्तियों को भी स्थान दिया गया है। गुप्तकाल में जैनधर्म का भी पर्याप्त प्रचार था, इसलिए लेखों[७] मे अर्हत्-प्रतिमाओं की स्थापना तथा गुफा या मंदिरों में जैन मूर्तियो की स्थिति उसके प्रसार का समर्थन करती है।

कंकाली टीला, मथुरा से प्राप्त एक सिर रहित जिन-प्रतिमा लखनऊ संग्रहालय में है। संयोग से उसमें तिथि भी अंकित है जो संवत ११३ (४३२ ई०) की है। जहाँ तक इसके पहचान का अथवा समीकरण का प्रश्न है विद्वानों ने इसे जैनधर्म के अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर की बताया है।[८] परन्तु विद्वानों ने इसे किस आधार पर

४. वही.

5. Jain Stupa and Other Antiquities of Mathura, Varanasi 1969, Plts. XCI, XCIII, XCIV.

६. भारतीय कला—वासुदेवशरण अग्रवाल, चित्रफलक ३१६.

७. स्कन्दगुप्त का कहौम स्तम्भ लेख, गुप्त संवत् १४१—का० इ० इ०. ग्रन्थ ३, पृ० ६५.

८. Sharma, R. C., Mahavira Jain Vidyalaya Golden Jubilee Vol., pt. 1, p. 150, fig. 8; Banerji, R. D., Age of Imperial Guptas, plt. XVIII; Shah, U. P., Akota Bronzes, p. 15.

महावीर का माना है यह ज्ञात नही है। संभवतः पीठ पर उत्कीर्ण सिंह ही उनका आधार है। परन्तु यह आधार तर्कसंगत प्रतीत नही होता। इसी प्रकार के सिंह-चित्रण हमें पूर्वकालीन अन्य जिन-प्रतिमाओं पर प्राप्त होते है, जो कि सिंहासन के द्योतक है, न कि लांछन के। अभिलेख में वर्धमान का नाम नही दिया गया है।

गुप्तकाल की एक अन्य जिन-प्रतिमा भारत कला भवन काशी (क्रमॉक १६१) में है। ध्यानावस्था मे स्थित यह प्रतिमा महावीर की है। इसकी पहचान पीठ पर अंकित दो सिंहो से होती है जो एक-दूसरे के सम्मुख खड़े प्रदर्शित किये गये है।

दीक्षा-ग्रहण के पूर्व वर्धमान महावीर को जीवन्त-स्वामी के नाम से भी जाना जाता था। चूंकि उस समय वे राजकीय वेश-भूषा में रहते थे, अतः कलाकार ने उन्हें उसी रूप में प्रदर्शित किया है। गुप्तकालीन जीवन्तस्वामी की दो प्रतिमायें बड़ौदा संग्रहालय में है।[९] राजकीय परिधान में होने के कारण इनकी पहचान आसानी से की जा सकती है।

उत्तर गुप्तकाल में जैनकला से सम्बन्धित विभिन्न केन्द्र थे। तांत्रिक भावनाओं ने भी कला को प्रभावित किया था। यद्यपि इस युग मे कलाकारों का कार्यक्षेत्र अधिक विस्तृत हो गया था, परन्तु वे शास्त्रीय नियमों से जकड़ गये थे, अतः मध्ययुगीन जैनकला निर्जीव सी हो गई थी। इस काल की एक प्रमुख विशेषता यह थी कि कला में चौबीस तीर्थंकरों से सम्बन्धित चौबीस यक्ष यक्षिणियो को स्थान दिया गया। मध्यकालीन जैन-प्रतिमाओं मे चौकी पर आठ ग्रहों की आकृतियाँ भी दृष्टिगोचर होती हैं जो हिन्दू-मत के नवग्रहों का अनुकरण है। इस युग में मध्यभारत, बिहार, उड़ीसा तथा दक्षिण में दिगम्बर मत प्रधान हो गया था। पाषाण के अतिरिक्त धातु-प्रतिमायें भी निर्मित होने लगी थी।

मध्यप्रदेश के लखनादौन (सिवनी जिला) नामक स्थान से सन् १६७२ मे भगवान् महावीर की एक सुन्दर पाषाण-प्रतिमा प्राप्त हुई है। उक्त प्रतिमा के गुच्छकों के रूप में प्रदर्शित केश-विन्यास उष्णीयबद्ध है। दृष्टि नासिका के अग्रभाग पर स्थित है। प्रशान्त नयन, सुन्दर भवें, अनूठी नासिका के नीचे मन्दस्मित ओष्ठ से ऐसा आभास मिलता है कि वर्धमान महावीर की अमृतमय वाणी जैसे स्फुटित होना ही चाहती है। सुगठित चिबुक, चेहरे की भव्यता एवं गरिमा की रचना कुशल शिल्पी के सधे हुए हाथों की परिचायक है। प्रतिमा के कर्ण लम्बे दिखाये गये है जिनमे कर्णफूल सुशोभित हो रहे है। ग्रीवा की त्रिरेखा सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन एवं सम्यक्चारित्र को प्रदर्शित करती है। सबसे ऊर्ध्व भाग मे त्रिछत्र मे मोतियों की पाँच लटकनें पंचतत्वों से परे त्रिकालज्ञान की परिचायक हैं। त्रिछत्र के नीचे दृष्टि के प्रतीक तीन पद्मों से गुम्फित त्रिदल हैं। प्रतिमा का तेजोमण्डल आकर्षक एवं भव्य है। प्रतिमा की ऊँचाई ४'–२" है। प्रतिमाशास्त्रीय अध्ययन के आधार पर कलामर्मज्ञों ने इसकी तिथि ८वीं सदी के आसपास निर्धारित की है।

महावीर की कलचुरिकालीन प्रतिमायें कारीतलाई (जबलपुर) एवं जबलपुर से प्राप्त हुई है। कारीतलाई से प्राप्त महावीर-प्रतिमा की, जो आजकल रायपुर-संग्रहालय (म० प्र०) मे है, ऊँचाई ३'–५" है। इस प्रतिमा में जैनों के अन्तिम तीर्थङ्कर महावीर उच्च सिंहासन पर उत्थित पद्मासन में ध्यानस्थ बैठे है। उनके हृदय पर श्रीवत्स का चिन्ह है। प्रतिमा का तेजोमण्डल युक्त उर्ध्वभाग तथा वामपार्श्व खंडित है। दक्षिणपार्श्व में पट्टी पर उनके परिचारक सौधर्मेन्द्र खड़े हैं। अन्य तीर्थंकर की चार पद्मासनस्थित प्रतिमायें भी अवशिष्ट है।

उच्च चौकी पर मध्य मे धर्मचक्र के ऊपर महावीर लांछन सिंह अंकित है। लांछन के दोनों पार्श्व पर एक-एक सिंह और चित्रित किये गये हैं। धर्मचक्र के नीचे एक स्त्री लेटी हुई है, जो चरणो मे पड़े रहने का संकेत है। महावीर का यक्ष मातङ्ग अंजलिबद्ध खड़ा है, किन्तु यक्षी सिद्धायिका चँवरी लिए हुए है। इनके दोनों ओर पूजा करते हुए भक्त चित्रित किये गये हैं।[१०]

महावीर की एक अन्य प्रतिमा जबलपुर से प्राप्त हुई है जो सम्प्रति फिलाडेलफिया (अमेरिका) म्यूजियम आफ आर्टमें

9. Shah, U. P., Akota Bronzes, pp. 26-28.

१०. महंत घासीराम स्मारक संग्रहालय, रायपुर, सूचीपत्र चित्रफलक ८ क,

सुरक्षित है।[११] श्याम बलुआ पाषाण से निर्मित यह प्रतिमा ४'–४"×१'–६" आकार की है। महावीर की यह नग्न प्रतिमा कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़ी है। हृदय पर श्रीवत्स चिन्ह अंकित है। मूर्ति के हाथ घुटने तक लम्बे हैं। मूर्ति के नीचे दो लघु पार्श्व-रक्षक हैं। उनके सामने एक-एक उड़ते हुए गंधर्व का अंकन है। मस्तक के ऊपर त्रिछत्र तथा उसके किनारे दो हस्ती अंकित हैं। सिंह के कारण यह प्रतिमा महावीर की ज्ञात होती है।

दक्षिण भारत के दिगम्बर केन्द्र एलोरा (६वी शती) की गुफाएँ तीर्थंकर-प्रतिमाओं से भरी पड़ी है। छोटा कैलास (गुफा सख्या ३०) में ऋषभनाथ, पार्श्वनाथ तथा महावीर की बैठी पाषाण मूर्तियाँ पद्मासन एव ध्यानमुद्रा में उत्कीर्ण हैं। प्रत्येक तीर्थंकर के पार्श्व में चँवर धारण किये यक्ष तथा गंधर्व की आकृतियाँ दीख पड़ती है। सिंहासन पर बैठे महावीर की प्रतिमा के ऊपरी भाग में छत्र दीख पड़ता है।

दूसरी गुफा मे भी पद्मासनस्थ ध्यानमुद्रा मे महावीर की अनेक प्रतिमाएँ खुदी है। इन्द्रसभा नामक गुफा मे सिंहासन पर महावीर की बैठी मूर्तियाँ ध्यानावस्था मे उत्कीर्ण है। जगन्नाथसभा नामक गुफा के दालान मे पार्श्वनाथ तथा महावीर के अतिरिक्त चौबीस तीर्थंकरो की लघु आकृतियाँ उत्कीर्ण है। सभी प्रतिमाएँ कला की दृष्टि से सुन्दर है।

चालुक्यनरेश यद्यपि हिन्दू धर्मावलम्बी थे, किन्तु जैन धर्म की भी अधिक मान्यता थी। ऐहोल की एक गुफा मे महावीर की आकृति भी दृष्टिगोचर होती है। सिंह, मकर एव द्वारपालों का खुदाव, उनका परिधान एलीफेण्टा के समान उच्च शैली का है। ये गुफाएँ सातवी-आठवी सदी की है।

उड़ीसा में भुवनेश्वर से सात मील की दूरी पर उदयगिरि-खण्डगिरि की गुफायें है। उदयगिरि अतिशय क्षेत्र है। जैनो का उदयगिरि का नाम 'कुमारगिरि' है। महावीर स्वामी यहाँ पधारे थे। एक गुफा में २४ तीर्थंकरों की प्रतिमायें है।

ऐसा कहा जाता है कि उज्जैन (म० प्र०) में वर्धमान महावीर ने तपस्या की थी। सवाई माधोपुर से ६१ मील पर श्रीमहावीर स्टेशन है। यहाँ से ४ मील दूर महावीरजी में एक विशाल जैन मन्दिर है। मन्दिर में स्थित जैन धर्म के अंतिम तीर्थङ्कर भगवान् महावीर की पद्मासनस्थ सुन्दर प्रतिमा है। बम्बई-रायचूर मार्ग पर कुर्दुवाड़ी से ५ मील पहले टवलस नामक स्टेशन है। वहाँ से २२ मील पर दहीगांव में एक भव्य जैन मन्दिर विद्यमान है, जिसमें महावीर की सुन्दर प्रतिमा है।

राजस्थान में महावीर की अनेक प्रतिमायें एवं देवालय प्रकाश मे आये है। इस संदर्भ मे ओसियाँ के महावीर मन्दिर का वर्णन करना उचित होगा। ओसियाँ जो वर्तमान समय में एक छोटा-सा ग्राम है, जोधपुर से फलौदी जाने वाली रेलवे लाइन पर पड़ता है। ओसियाँ मे भगवान् महावीर का एक प्राचीन मन्दिर है जिसमे महावीर की विशालकाय मूर्ति है। 'जोधपुर राज्य का इतिहास' के प्रथम भाग मे महान् इतिहासज्ञ गौरीशंकरजी ओझा ने इस देवालय का काल सवत् ८३० बनाया है। यह देवालय प्रतीहार राजा वत्सराज के समय का है। 'जैन-तीर्थ सर्व-संग्रह' मे ओसियाँ का विवरण देते हुए लिखा है कि यहाँ सौधशिखरी विशाल मन्दिर बड़ा रमणीय है। मूलनायक-प्रतिमा भगवान् महावीर की है जो ढाई फुट ऊँची है। महावीर का मन्दिर परकोटे से घिरा है तथा इसके भव्य तोरण दर्शनीय है। स्तभो पर तीर्थङ्करो की प्रतिमायें भी उत्कीर्ण है।

आबू स्टेशन से एक मील दूर देलवाड़ा में भी पाँच जैन मन्दिर है जिनमें तीर्थङ्करों की प्रतिमायें है। आबू के निकटवर्ती अन्य कई स्थानों में बहुत भव्य और कलापूर्ण मंदिर हे जिनमे कुंभारिया के श्वेताम्बर जैन मंदिर उल्लेखनीय है। कुभारिया ग्राम आबू रोड रेलवे स्टेशन से १३॥ मील दूर स्थित है। यहाँ का महावीर जिनालय महत्त्वपूर्ण है। इसमे महावीर के जीवन सम्बन्धी अनेक दृष्टात उत्कीर्ण है। मदिर की कला दर्शनीय है। मंदिर का निर्माण-काल सं० १०८७ के लगभग है।

कर्नाटक में भी जैनधर्म का अच्छा प्रचार हुआ था। कर्नाटक के होयलेश्वर देवालय से दो फर्लांग की दूरी पर

---

११. स्टेल्ला क्रेमरिश, इडियन स्कलपचर इन दि फिलाडेलफिया म्यूजियम आफ आर्ट, पृ० ८२.

जैनों के तीन मंदिर है, जिनमे २४ तीर्थङ्करों की प्रतिमायें भी अंकित है ।

बंगाल मे भी जैनधर्म से सम्बन्धित कलात्मक कृतियाँ उपलब्ध होती है । बगाल के बाकुड़ा जिले के पाकबेडरा नामक स्थान पर जैन कलाके अनेक अवशेष है। यहाँ के देवालयो मे अन्यत्र से लायी गयी प्रतिमायें भी सगृहीत हैं, जिनमें एक पंचतीर्थी परिकर, तोरण, भामण्डलादि प्रातिहार्ययुक्त है । दूसरी प्रतिमा के परिकर मे अष्टग्रह प्रतिमायें है ।

प्राचीन भारतीय मूर्तिकला के क्षेत्र में मालवभूमि का भी विशिष्ट महत्त्व है । विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन का पुरातत्त्व-संग्रहालय मालवा व उज्जयिनी के अवशेषो से सम्पन्न है। संग्रहालय में अनेक जैन तीर्थङ्करों की प्रतिमायें हैं। लगभग १० प्रतिमायें सर्वतोभद्र महावीर की है, जिन पर पारदर्शी वस्त्र है, अत. वे श्वेताम्बर आम्नाय की है। सभी प्रतिमाओ मे महावीर पद्मासन मे ध्यानमुद्रा मे है। प्राप्तिस्थल उज्जैन की नयापुरा बस्ती है, जहाँ आज भी अनेक जैन मदिर विद्यमान है।

विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन के पुरातत्त्व-संग्रहालय में सगृहीत महावीर की एक अन्य प्रतिमा को कायोत्सर्ग मुद्रा में दिखाया गया है । मूर्ति का आधार ७२ × ६६ × ३० से० मी० है ।

केन्द्रीय संग्रहालय, इन्दौर (म० प्र०) में संगृहीत महावीर की प्रतिमायें लेखयुक्त है । डा० वासुदेव उपाध्याय के 'प्राचीन भारतीय मूर्ति-विज्ञान' नामक ग्रथ के चित्रफलक ८२ में आदिनाथ एव महावीर की प्रतिमा का युग्म चित्र दिया गया है । इस युग्म प्रतिमा में प्रथम आकृति ऋषभनाथ की है । दाहिनी ओर महावीर की आकृति है । इस प्रकार, इन दो आकृतियों (प्रथम एवं चौबीसवें तीर्थङ्कर) से चौबीस तीर्थङ्करो की कल्पना की जा सकती है । प्रतिमा-पीठ पर आदिनाथ का प्रतीक वृषभ तथा महावीर का सिंह है । दोनों नग्न हैं ।

उपर्युक्त वर्णन से ज्ञात होता है कि सम्पूर्ण भारतवर्ष में अहिंसा के पुजारी भगवान् महावीर की मूर्तियाँ एवं देवालय उपलब्ध होते है । मूर्तिकला विज्ञान तथा भारतीय इतिहास की दृष्टि से अभी काफी काम करना शेष है। इस दिशा मे जो प्रगति हो रही है, वह अत्यन्त मन्द है। राज्य सरकारों तथा शिक्षा-प्रतिष्ठानों को भी इस क्षेत्र मे अग्रसर होना चाहिए । □□

[पृ० ८६ का शेषांश]

विद्यालय में डा० कैलाशचन्द्र जैन और श्री दलाल है । सतना के श्री नीरज जैन भी मूर्तिकला आदि के अच्छे पारखी है । इन्दौर म्युजियम के डायरेक्टर श्री गर्ग और इसी तरह अन्य संग्रहालयों के अधिकारियों का तथा इतिहास विभाग के अध्यक्ष एव विद्वानों का सहयोग प्राप्त किया जा सकता है ।

यह और भी सौभाग्य की बात है कि मध्यप्रदेश के मुख्यमन्त्री श्री प्रकाशचन्द सेठी भी जैन हैं तथा अन्य कई उच्च पदों पर भी जैन हैं। यदि इस समय निर्वाण महोत्सव के प्रसंग से खोज, संग्रह एवं संरक्षण और इतिहास लेखन का काम हाथ में लिया जाय तो बहुत सरलता से अच्छे रूप में आगे बढ़ सकेगा ।

इन्दौर का दायित्व

जहाँ तक मध्यप्रदेश के जैन समाज का प्रश्न है, मैं देख रहा हूँ कि इदौर की जैन समाज बहुत ही सक्रिय है। यहाँ अच्छे कार्यकर्ता है, विद्वान् है, धर्मी है । अतः इन्दौर की जैन समाज से बहुत आशा की जा सकती है । निर्वाण महोत्सव के उपलक्ष्य में वहाँ से लाखों रुपये खर्च भी होंगे । उसमें इस जरूरी और महत्वपूर्ण कार्य का भी समावेश कर लिया जाय । जैन इतिहास की सामग्री की खोज, संग्रह एवं लेखों की नकल के साथ-साथ दिग. श्वे. जैन ग्रंथों में जो भी इस प्रदेश के इतिहास की सामग्री है, उसे भी एकत्र कर प्रकाशित कर दिया जाय । आशा है जैन समाज इस ओर ठोस कदम उठायेगा । □□

भगवान महावीर की भाषा-क्रान्ति

□ डा० नेमीचन्द जैन, इन्दौर

महावीर की भाषा-क्रान्ति की एक बड़ी खूबी यह थी कि वह आधुनिकता को झेल सकती थी। महावीर तब तक मौन रहे जब तक उन्हें इन्द्रभूति गौतम जैसा अत्याधुनिक नहीं मिल गया। गौतम सब जानता था, उसे परम्परा का बोध था; युगबोध था; किन्तु सब खण्डित, असमग्र, क्रमहीन; महावीर के संसर्ग ने उसमें एक क्रम पैदा कर दिया। वह उस समय की सड़ी-गली, जर्जरित व्यवस्था का ही अंग था किन्तु उसमें जूझने की सामर्थ्य थी।

विगत शताब्दियों में जो भी क्रान्तियां घटित हुई हैं, उनमें भाषा की, अर्थात् माध्यम की क्रान्तियाँ अधिक महत्व की है। भाषा का सन्दर्भ बड़ा सुकुमार और संवेदनशील संदर्भ है; यही कारण है कि कुछ लोग उसे जान-बूझकर टाल जाते है और कुछ उसकी समीक्षा मे समर्थ ही नहीं होते। असल में भाषा संपूर्ण मानव-समाज के लिए एक विकट अपरिहार्यता है। उसका सम्बन्ध सामान्य से विशिष्ट तक बड़ी घनिष्टता का है। उसके बिना न सामान्य जी सकता है न विशिष्ट। इसे भी यह चाहिये, उसे भी। वह एक निरन्तर परिवर्तनशील विकासोन्मुख अनिवार्यता है। ज्यो-ज्यो मनुष्य बढ़ता-फैलता है, उसकी भाषा त्यों-त्यों बढ़ती-फैलती है। उसका अस्तित्व जीवन-सापेक्ष है, इसीलिए हम उससे बिलकुल बेसरोकार रह नही सकते। वह इतनी नजदीक है, इतनी जरूरी है, कि उसकी अनुपस्थिति में जीवन की समग्र साहजिकता ठप्प हो सकती है।

जीवन का हरेक क्षण भाषा के बहुविध संदर्भों मे साँस लेता है। भाषा जहाँ एक ओर सुविधा है, वही दूसरी ओर उसने अपने प्रयोक्ता से ही इतनी शक्ति अर्जित कर ली है कि वह एक खतरनाक औजार भी है। उसमे सृजन, सुविधा और संहार तीनो स्थितियाँ स्पन्दित है। बहुधा यही होता है कि भाषा के दो पक्ष वक्ता-श्रोता पूरी तरह कभी जुड़ नही पाते है संप्रेषण की प्रक्रिया मे। सारी सावधानी के बावजूद भी कुछ रह जाता है जिस पर वक्ता-श्रोता दोनों को पछताना होता है। वह पास लाकर भी सारी दूरियों का समाधान नही कर पाती। भगवान महावीर ने भाषा की इस असमर्थता को गहराई से समझा था। उन्होने अनुभव किया था कि एक ही भाषा के बोलने वालों के बीच ही भाषा ने दूरियाँ पैदा कर ली है। सामान्य और विशिष्ट एक ही युग मे दो भाषाओं का उपयोग करते है; यद्यपि मूलत: वे दोनों एक ही होती है। स्रोत मे एक; किन्तु विकास-स्तरों पर दो भिन्न सिरों पर। महावीर ने अपने युग मे भाषा की इस खाई को, इस कमजोरी को जाना—उन्होंने देखा। पंडित बोल रहा है, आम आदमी उसके आतंक मे फँसा हुआ है। उसकी समझ मे कुछ भी नहीं है, किन्तु पण्डितवर्ग उस पर थोपे जाता है स्वयं को। दोनो एक ही जमाने मे अलग-अलग जीवन जी रहे है। महावीर को यह असंगति कचोट गई। उन्होने आम आदमी की पीड़ा को पकड़ा और उसी की भाषा को अपने जीवन की भाषा बनाया, क्योकि उनके युग तक धर्म का, दर्शन का जो विकास हो चुका था वह भाषा की क्लिष्टता और परिभाषाओं के बियाबान मे भटक गया था। आम आदमी इच्छा होते हुए भी अध्यात्म की गहराइयों मे भाषा की खाई के कारण उतर नही पाता था। महावीर ने आम आदमी की इस कठिनाई को माना, समझा और अध्यात्म के लिए उसी के औजार को अंगीकार किया। उन्होने पंडितों की भाषा को अस्वीकार किया, और सामान्य व्यक्ति की भाषा को स्वीकारा। यह क्रान्ति थी महान् युगप्रवर्तक। आम आदमी को अस्वीकृत होते कई सदियाँ बीत चुकी थीं। महावीर और बुद्ध के रूप में दो ऐसी शक्तियों का

उदय हुआ, जिन्होंने आम आदमी के चेहरे को पहिचाना, उसकी कठिनाइयों को सहानुभूतिपूर्वक समझा और उसी के माध्यमो का उपयोग करना स्वीकार किया।

भगवान महावीर ने धर्म के क्षेत्र मे जिस लोक क्रान्ति का श्रीगणेश किया, वह अद्वितीय थी। उन्होने भाषा के माध्यम से वह सब ठुकरा दिया जो विशिष्टों का था। वे मुट्ठी भर लोगो के साथ कभी नही रहे, उन्होंने सदैव जन-समुद्र को अपनाया। इसीलिए वे कूद पड़े सब कुछ ठुकरा कर सर्वहारा की कठिनाइयो के समुद्र मे। उन्होने धन को द्वितीय किया, भाषा को द्वितीय किया, सत्ता को द्वितीय किया और आम आदमी को प्रथम किया। भगवान् ने उन सारे सन्दर्भों को द्वितीय कर दिया जो अलगाव का अलख जगा रहे थे; जो उनकी समकालीन चेतना को क्रमहीन और खण्डित कर रहे थे। उन्होंने महल छोड़ा, पॉव-पाँव चले; पात्र छोड़े, पाणिपात्रता को स्वीकार किया; वस्त्र छोड़े, नग्नता को माना-सहा; उस परिग्रह को जो मन के बहुत भीतर गुजलके मारे बैठा था, ललकारा और घर बाहर किया। भाषा के क्षेत्र में भी उन्होने वही किया जो जीवन के सारे सन्दर्भों के साथ किया। एक तो वे वर्षों मौन रहे; तब तक, जब तक सब कुछ उन पर खुल नही गया; क्योंकि वे साफ-साफ देख रहे थे कि लोग अस्पष्ट-तायें बॉट रहे है। कही कुछ भी आलोकित नही है, विश्वास तक अन्धा हो गया था। इसलिए उन्होने साफ-सुथरी परिभाषामुक्त भाषा मे लोगों से आमने-सामने बात की और जीवन के सन्दर्भों को, जो जटिल और पेचीदा दिखाई देते थे, खोल कर रख दिया।

भाषा में कितनी अपार ऊर्जा धड़कती है इसे महा-वीर जानते थे, इसीलिए उन्होंने उस भाषा का उपयोग नही किया जो सन्दर्भ खो चुकी थी वरन् उस भाषा को स्वीकार किया, व्यवहार मे लिया जो उपस्थित जीवन मूल्यो को समायोजित करने की उदार ऊर्जा रखती थी। अर्धमागधी में वह ऊर्जस्विता थी जिसकी खोज मे भगवान थे। जो भाषा एक जगह आकर ठहर गई थी, महावीर ने उसमे बोलने से इनकार कर दिया। उन्होने उस भाषा का इस्तेमाल किया जो जन-जन को जोड़ती थी, ऊर्जस्विनी थी और शास्त्रीय औपचारिकताओं से परे थी। शास्त्र की पराजय ही महावीर की जय है; भाषा स्थिति नहीं है, गति है। वह रुकती नही है, विकास करती है। महावीर ने भाषा की इस शक्ति को, उसके व्यक्तित्व के इस पक्ष को, पलक मारते समझ लिया और तपस्या के उपरान्त जो पाया, उसे उसी के माध्यम से आम आदमी से लेकर विशिष्ट जन तक बड़ी उदारता से बाट दिया।

महावीर तक आते-आते सस्कृत हथियार बन चुकी थी सांस्कृतिक शोषण-दमन का। वह रूढियो और अन्धी परम्पराओ की शिकार हो चुकी थी। एक तल पर आकर ठहर गई थी। अध्यात्म उसकी इस जड़ स्थिति के कारण संवाद खो चुका था। वह सीमित हो गया था। महावीर ने उसकी इस असमर्थता को समझा और लोक भाषा को अध्यात्म का माध्यम चुना। उन्होंने भाषा की धोखा-धड़ियों से लोक जीवन को सुरक्षित किया। सरल अध्यात्म, सरल माध्यम और सम्यक् मार्ग। जीवन के हर क्षेत्र में उन्होने सम्यक्त्व के लिए समझ पैदा करने का पराक्रम किया। यह पहला मौका था जब उन्होने जीवन को जीवन की भाषा मे उन्मुक्तता से प्रकट होने की क्रान्ति को घटित किया। इसीलिए महावीर की भाषा सुगम थी, सबके लिए खुली थी। उन्होने ऐसी भाषा के व्यवहार के लिए स्वी-कृति दी जो उस समय की बर्तमानता को झेल सकती थी, पचा सकती थी। उन्होंने भाषा के उस स्तर को, जो संस्कृत का पुरोगामी था, अपनी क्रान्ति का माध्यम बनाया।

महावीर की समकालीन चेतना एक तीखे भाषा-द्वन्द्व से गुजर रही थी। सस्कृत और लोक-भाषायें द्वन्द्व मे थी। सस्कृत के पास परम्परा की अन्धी ताकत थी, लोक भाषा के पास ऊर्जा तो थी, किन्तु उसका बोध नही था। संस्कृत सिमित होकर प्रभावहीन हो चली थी, लोक भाषायें असी-मत होकर प्रभावशालिनी थी। जो हालत अंग्रेजी के सन्दर्भ मे हिन्दी की है प्राकृत और अर्धमागधी की वही स्थिति महावीर के युग मे संस्कृत के सन्दर्भ मे थी। आम आदमी को अंग्रेजी के लिए दुभाषिया चाहिए। हिन्दी के लिए बीच की कोई औपचारिक कड़ी की आवश्यकता ही नही है। वही हाल अर्द्धमागधी या पाली का था; वहाँ किसी विचोलिये की जरूरत नही थी। सीधा संपर्क था। महावीर ने बिचोलिया-सस्कृति को भाषा के माध्यम से

समाप्त किया। उन्होंने उस माध्यम का उपयोग ही नहीं किया जिसे बिचोलिये काम मे ले रहे थे। यह क्रान्ति थी, जिसकी आम आदमी प्रतीक्षा कर रहा था। भाषा की परिभाषिकता अचानक बिखर गई और चारो ओर चिन्तन के खुले मैदान दिखाई देने लगे। यह था महावीर का व्यक्तित्व जो बुद्ध मे होकर कबीर और गाँधी तक निरन्तर चला आया है।

महावीर की सर्वोपरि शक्ति भाषा थी। अर्द्धमागधी या लोकभाषा निर्बल की बल राम थी। महावीर की भाषा को 'दिव्यध्वनि' कहा गया। यह कोई 'रहस्यवादी' शब्द नही है। दिव्यध्वनि वह जो सबके पल्ले पड़े; और अदिव्य वह जो कुछेक की हो और शेष जिससे वंचित रह जाते हों। महावीर की दिव्यध्वनि अपने युग के प्रति पूरी तरह ईमानदार है, वह सुबोध है, और अपने युग के तमाम सन्दर्भों से जुड़ी हुई है। महावीर के दो उपदेश माध्यम हैं: उनका जीवन और उनके समवशरण। समवशरण में बोलचाल की भाषा का तल तो है ही, वहाँ जीवन का भी एक तल पूरी आभा और तेजस् मे प्रकट है। पशुजगत् भी वहाँ है और महावीर को समझ रहा है। महावीर भाषा में है, भाषातीत है। उन्हें समझ मे आ रहे हैं जो भाषा को नही जानते; और उन्हे भी समझ मे आ रहे है जो भाषा के भीतर चल रहे है। उनका जीवन स्वयं माध्यम है। उनकी करुणा और वीतरागता स्वयं भाषा है। आज मन्दिर भले ही पाखण्ड और गुरुडम के अड्डे हों किन्तु मूर्तियों के पीछे वही दिव्यध्वनि काम कर रही है, जो समवशरण में सक्रिय थी। मूर्ति के लिए कौन-सी भाषा चाहिए भला ? उसकी करुणा और वीतरागता को न संस्कृत चाहिए, न अर्द्धमागधी, न प्राकृत, न अपभ्रंश, न हिन्दी और न अंग्रेजी। इसलिए महावीर की भाषाक्रान्ति इतनी शक्तिशाली साबित हुई कि उसने भाषा की सारी धोखाधड़ियाँ समाप्त कर दीं और धर्म की ठेकेदारी बन्द कर दी। भाषा के सन्दर्भ में आज फिर महावीर को घटित करने की जरूरत है। जैनों को अपने सारे शास्त्र अर्द्धमागधी, प्राकृत और अपभ्रंश के बन्धक से मुक्त कर लेने चाहिए। कोई उद्धरण नहीं, कोई परिभाषा नही; सीधे-सीधी बात, आमने-सामने दो टूक बात। जैनाचार्यों ने ऐसा ही किया है अपने-अपने युगों में।

भगवान महावीर की भाषा-क्रान्ति को समझने के लिए दो शब्दो को समझने की जरूरत है: 'ज्ञान' और 'समझ'। 'जानना' 'समझना' नही है; "नोइंग इज नाट अंडरस्टेंडिंग।" ज्ञान और सम्यग्ज्ञान में 'नोइंग' और 'अंडरस्टेंडिंग का फर्क है। ज्ञान में हम जानते है, समझते नहीं है। सम्यक् ज्ञान मे हम जानते भी है और समझते भी हैं। समझना कई बार भाषा की अनुपस्थिति में भी घटित होता है। वह गहरी चीज है। मर्म की पकड़ उसके संपूर्ण आयामो में 'समझ' है, शब्द की या परिस्थिति की पकड़ केवल एक ही आयाम मे ज्ञान है। महावीर ने अंडरस्टेंडिंग की ओर ध्यान दिया। और यह परम्परित भाषा या शास्त्र से सम्भव नही था, इसके लिये साफ-सुथरा जीवन-तल चाहिये था। महावीर की भाषा-क्रान्ति की सबसे बड़ी विशिष्टता यही है कि उसने लोक जीवन की समझ को पुनरुज्जीवित किया। शास्त्र को खारिज किया और सम्यग्ज्ञान को प्रचलित किया। आज के अभिशप्त आम आदमी को भी महावीर मे एक सहज स्थिति का अनुभव हो सकता है।

महावीर की भाषा-क्रान्ति की एक और खूबी यह थी कि वह आधुनिकता को झेल सकती थी। महावीर तब तक मौन रहे जब तक उन्हें इन्द्रभूति गौतम जैसा अत्याधुनिक नही मिल गया। गौतम सब जानता था, उसे परम्परा का बोध था, युगबोध था; किन्तु सब खण्डित, असमग्र, क्रमहीन; महावीर के संसर्ग ने उसमे एक क्रम पैदा कर दिया। वह उस समय की सड़ी-गली, जर्जरित व्यवस्था का ही अंग था किन्तु उसमें सामर्थ्य थी जूझने की। वह आधुनिक था भगवान महावीर के युग में। भगवान इस तथ्य को जानते थे। उन्होने अपने ज्ञान का खजाना इन्द्रभूति पर उन्मुक्त कर दिया। भाषा की जिस क्रान्ति को महावीर ने घटित किया इन्द्रभूति मे वह स्थिति उपस्थित है। महावीर से वह छुपी नहीं है। इस तरह महावीर ने अपनी समकालीन आधुनिकता को भाषा के माध्यम से संबंधित किया और अध्यात्म को जर्जरित होने से बचाया। महावीर को भाषा के क्षेत्र में पुनः पुनः घटित करने की आवश्यकता से हम इनकार नहीं कर सकेंगे। □□

६४, पत्रकार कालोनी, कनाडिया मार्ग, इन्दौर

ऐतिहासिक जैन धर्म

☐ विद्यावारिधि डा० ज्योतिप्रसाद जैन

जैन धर्म का परम्परा-इतिहास अधुना-ज्ञात पाषाण-युगीन आदिम मानव से प्रारम्भ होता है। उस काल का मानव असभ्य, असंस्कृत, किन्तु सरल एवं आवश्यकतायें अत्यन्त सीमित थी और जीवन प्रायः पूर्णतया प्रकृत्याश्रित था। उस युग में धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक किसी प्रकार की कोई व्यवस्था नही थी, न ग्राम और नगर थे और न कोई उद्योग-धन्धे। एक के बाद एक होने वाले चौदह कुलकरो या मनुओ ने उस काल के मानवो का नेतृत्व एव मार्गदर्शन किया और समयानुसारी सरलतम व्यवस्थाएँ दी। यह युग जैन परम्परा मे भोग-भूमि कहलाता है।

अन्तिम कुलकर नाभिराय थे जिनकी पत्नी मरुदेवी से प्रथम तीर्थङ्कर आदिनाथ ऋषभदेव का जन्म हुआ। इनके जन्म स्थान पर ही अयोध्या नाम का प्रथम नगर बसा। ऋषभदेव ने ही सर्वप्रथम कर्मभूमि-कर्मप्रधान जीवन का प्रारम्भ किया, ग्राम-नगर बसाये, कृषि, शिल्प आदि उद्योग-धन्धों का प्रचलन किया, विवाह प्रथा, समाज व्यवस्था, राज्य व्यवस्था स्थापित की, लोगों को अक्षरज्ञान एवं अंक ज्ञान दिया, अन्त में गृहत्यागी होकर तपस्या द्वारा आत्मशोधन किया, केवल ज्ञान प्राप्त किया और धर्मतीर्थ का प्रवर्तन किया। लोक के कल्याण के लिए जिस सरलतम धर्म का उन्होंने उपदेश दिया वह अहिंसा, संयम, तप एव योग प्रधान मोक्ष मार्ग था। उनके ज्येष्ठ पुत्र भरत सर्वप्रथम चक्रवर्ती सम्राट् थे। उन्ही के नाम से यह देश भारतवर्ष नाम से प्रसिद्ध हुआ। भरत के अनुज बाहुबलि परम तपस्वी थे। दक्षिण भारत में श्रवणबेलगोल आदि की अत्यन्त विशालकाय गोम्मट मूर्तियाँ उन्हीं की है।

ऋषभदेव के उपरान्त क्रमश. अजित, सम्भव, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभ सुपार्श्व, चन्द्रप्रभु, पुष्पदन्त, शीतल, श्रेयांस, वासुपूज्य, विमल, अनन्त, धर्म, शान्ति, कुन्थु, अरह, मल्लि नाम के श्रमण तीर्थंकर हुए जिन्होने अपने-अपने समय मे उसी अहिसा प्रधान आत्मधर्म का उपदेश दिया। तीर्थंकर एक-दूसरे से पर्याप्त समयान्तर से हुए। इनमें से प्रथम तीर्थङ्कर तो प्रागैतिहासिक सिन्धुघाटी सभ्यता के युग से भी पूर्ववर्ती है। दूसरे से नौवें पर्यन्त उक्त सभ्यता के समसामयिक रहे प्रतीत होते है। दसवें तीर्थङ्कर शीतलनाथ के समय मे ब्राह्मण-वैदिक धर्म का उदय हुआ प्रतीत होता है, जिसका कालान्तर मे उत्तरोत्तर उत्कर्ष एवं प्रसार होता गया। बीसवें तीर्थङ्कर मुनिसुव्रत के तीर्थकाल में ही अयोध्या के इक्ष्वाकुवंशी (ऋषभदेव की संज्ञा इक्ष्वाकु भी थी) महाराज रामचन्द्र हुए जो अन्ततः अर्हत् केवली होकर मोक्षगामी हुए। इक्कीसवें तीर्थकर नेमिनाथ ने मिथिलापुरी मे अध्यात्मवाद का प्रचार किया, जिसने कालान्तर में औपनिषदिक आत्म-विद्या का रूप लिया। बाईसवे तीर्थकर अरिष्टनेमि महाभारत काल में हुए और नारायण कृष्ण के ताऊजात भाई थे। कृष्ण उस युग की राजनीति के तो सर्वोपरि नेता थे ही, उन्होंने ब्राह्मण और श्रमण अथवा बौद्धिक और व्रात्य संस्कृतियो के समन्वय का भी स्तुत्य प्रयत्न किया।

महाभारत युद्ध के कई शताब्दी पूर्व से ही वैदिक धर्म के उत्तरोत्तर वृद्धिगत उत्कर्ष के सम्मुख श्रमण धर्म अनेक अंशों मे पराभूत-सा हो गया था। किन्तु उस महायुद्ध के परिणामस्वरूप वैदिक आर्यों की राज्य-शक्ति एवं वैदिक धर्म का प्रभाव पतनोन्मुख हुए और भारतीय इतिहास का उत्तर वैदिक युग प्रारम्भ हुआ, जो साथ ही श्रमण धर्म के पुनरुत्थान का युग था। तीर्थङ्कर नेमि और नारायण कृष्ण इस श्रमण पुनरुत्थान के प्रस्तोता थे और २३वें तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ (८७७-७७७ ईसा पूर्व) उक्त आन्दोलन के सर्वमहान् नेता थे। अन्त मे अन्तिम तीर्थङ्कर

वर्द्धमान महावीर (५६६-५२७ ईसा पूर्व) द्वारा पुनरुत्थान पूर्णतया निष्पन्न हुआ।

महावीर का युग महामानवों का महायुग था और उनमें स्वयं उनका व्यक्तित्व सर्वोपरि था। उसी युग में शाक्यपुत्र गौतम बुद्ध ने बौद्ध धर्म की स्थापना की। यह भी श्रमण परम्परा का ही एक सम्प्रदाय था। आजीविक सम्प्रदाय प्रवर्तक मक्खलिगोशाल प्रभृति अन्य अनेक श्रमण धर्मोपदेष्टा भी उस काल मे अपने-अपने मतों का यत्र-तत्र प्रचार कर रहे थे। उस काल के अथवा उत्तरवर्ती युगो के जैनो और स्वयं महावीर ने यह कभी नही कहा कि उन्होने किसी नवीन धर्म की स्थापना की है। वह तो पूर्ववर्ती तेईस तीर्थङ्करों की धर्म-परम्परा का ही प्रतिनिधित्व करते थे। उसी का स्वयं आचरण करके लोक के सम्मुख उन्होंने अपना सजीव आदर्श प्रस्तुत किया। उन्होने उक्त धर्म व्यवस्था में कतिपय समयानुसारी सुधार-संशोधन भी किये, उसके तात्विक एवं दार्शनिक आधार को सुदृढ़ एवं व्यवस्थित किया और चतुर्विध जैन संघ का पुनर्गठन किया तथा उसे सशक्त बनाया।

महावीर के पार्श्व आदि पूर्ववर्नी तीर्थङ्करों का जैन धर्म पहले से ही देश के अनेक भागों मे प्रचलित था। कालदोष से उसमें जो शिथिलता आ गई थी, वह दूर हुई और उसमें नया प्राण-संचार हुआ। महावीर के निर्वाण के पश्चात् उनकी शिष्य परम्परा में क्रमशः गौतम, सुधर्म एवं जम्बू नामक तीन अर्हत्-केवलियो ने उनके संघ का नेतृत्व किया। तदनन्तर क्रमशः पांच श्रुतकेवली हुए जिनमें भद्रबाहु प्रथम (ईसा पूर्व ४थी शती के मध्य के लगभग) अन्तिम थे। उस समय उत्तर भारत के मगध आदि प्रदेशों में बारह वर्ष का भीषण अकाल पड़ा, जिसके परिणाम-स्वरूप जैन साधु संघ का एक बड़ा भाग दक्षिण भारत की ओर विहार कर गया। इसी घटना में संघभेद के वे बीज पड़ गये जिन्होने आगे चलकर दिगम्बर-श्वेताम्बर सम्प्रदाय-भेद का रूप ले लिया। साधु-संघ गण-गच्छ आदि में भी शनैः शनैः विभक्त होता गया और कालान्तर में अन्य अनेक संप्रदाय-उपसंप्रदाय भी उत्पन्न हुए। उपर्युक्त दुर्भिक्ष के बाद ही यह भी अनुभव किया जाने लगा कि परम्परा से चले आये श्रुतागम का जितना जो अंश सुरक्षित रह गया है उसका पुस्तकीकरण कर दिया जाय। दूसरी शती ईसा पूर्व के द्वितीय पाद में उड़ीसा में हुए महामुनि सम्मेलन मे यह प्रश्न उठा और मथुरा के जैन साधुओं ने इस सरस्वती आन्दोलन का अथक प्रचार किया। फलस्वरूप ईसा-पूर्व प्रथम शती से ही आगमोद्धार एवं पुस्तकीकरण का कार्य प्रारम्भ हो गया और पांचवीं शती ई० के अन्त तक विभिन्न सम्प्रदायों ने अपनी-अपनी परम्पराओं में सुरक्षित जिनवाणी को लिपिबद्ध कर लिया। मूल ग्रन्थों पर नियुक्ति, चूर्णि, वृत्ति, भाष्य, टीका आदि विपुल व्याख्या साहित्य का सृजन तथा विविध स्वतन्त्र ग्रंथों का प्रणयन चालू हो गया। देश और काल की परिस्थितियों वश जैन संस्कृति के केन्द्र बदलते रहे, बहुमुखी विकास भी होता रहा और उत्थान-पतन भी होते रहे।

इस इतिहास-काल में जैन धर्म को राज्याश्रय एवं जन सामान्य का आश्रय भी विभिन्न प्रदेशों में बहुधा प्राप्त रहा। मगध के बिम्बिसार (श्रेणिक) आदि शिशुनागवंशी नरेश, उनके उत्तराधिकारी नंदवंशी महाराजे और मौर्य सम्राट् जैन धर्म के अनुयायी अथवा प्रबल पोषक रहे। मौर्य चन्द्रगुप्त एव सम्प्रति के नाम तो जैन इतिहास मे स्वर्णाक्षरों में लिखे है। दूसरी शती ईसा पूर्व मे मौर्य वंश की समाप्ति पर ब्राह्मणधर्मी शुग एवं कण्व राजाओं के काल में मगध मे जैन धर्म का पतन हो गया, किन्तु मथुरा, उज्जयिनी और कलिंग उसके सशक्त केन्द्र बन गये। कलिंग चक्रवर्ती सम्राट् खारवेल, जो अपने युग का सर्वाधिक शक्तिशाली भारतीय नरेश था, जैन धर्म का परम भक्त था। इसी प्रकार विक्रम संवत् प्रवर्तक मालवगण का नेता वीर विक्रमादित्य भी जैन था।

इस समय के बाद उत्तर भारत में जैन धर्म को फिर कभी कोई उल्लेखनीय राज्याश्रय प्राप्त नही हुआ। कतिपय छोटे राजाओं, सामन्तों, सरदारों, कभी-कभी राज्य-परिवारों के कुछ व्यक्तियों को छोड़कर कोई सम्राट्, बड़ा नरेश या राजवंश इस धर्म का अनुयायी नही हुआ, किन्तु उस पर प्रायः कोई अत्याचार और उत्पीड़न भी नहीं

हुआ। सामान्यतः शक, कुषाण, गुप्त, वर्धन, आयुध, गुर्जर, प्रतिहार, गहड़वाल, तोमर, चौहान आदि पूर्व मुस्लिम-कालीन प्रायः सभी महत्वपूर्ण शासको से उसे सहिष्णुता-पूर्ण उदारता का ही व्यवहार प्राप्त हुआ। मध्यप्रदेश और मालवा के कलचुरि, परमार, कच्छपघट, चन्देल आदि नरेशों से, गुजरात के मैत्रेय, चावड़ा, सोलंकी और बघेले राजाओं से तथा राजस्थान के प्रायः सभी राज्यो मे पर्याप्त प्रश्रय और संरक्षण भी प्राप्त हुआ। राजस्थान मे तो यह स्थिति वर्तमान काल पर्यन्त चलती रही। मत्री, दीवान, भडारी, दुर्गपाल, सेनानायक आदि पदो पर भी अनेक जैन नियुक्त होते रहे और वाणिज्य-व्यापार एव साहूकार तो अधिकतर उनके हाथ मे रहता रहा।

उत्तर भारत की अपेक्षा दक्षिण भारत में जैन धर्म की स्थिति कही अधिक श्रेष्ठ एव सुदृढ रही। ईस्वी सन् के प्रारम्भ से लेकर १६वी शती के मध्य मे विजयनगर साम्राज्य के पतन पर्यन्त तो अनेक उत्थान-पतनो के बावजूद वह वहा एक प्रमुख धर्म बना रहा। सुदूर दक्षिण के प्रारम्भिक चेर, पाड्य, चोल, पल्लव, कर्णाटक का गगवश और दक्षिणापथ के कदब, चालुक्य, राष्ट्रकूट, उत्तरवर्ती चालुक्य, कलचुरि, होयसल आदि वंशो के अनेक नरेश, उनके अनेक सामन्त, सरदार, सेनापति, दण्डनायक, मत्री, राज्य एव नगर-श्रेष्ठि जैन धर्म के अनुयायी हुए। जन सामान्य की भी प्रायः सभी जातियों एव वर्गो मे उसका अल्पाधिक प्रचार रहा। किन्तु वही ७वी शती के शैव नयनारों और वैष्णव अलवारो के प्रभाव में कई नरेशों ने तथा ११वी-१२वी शती से शैवधर्मी चोल सम्राटो ने, रामानुजाचार्य के अनुयायी कतिपय वैष्णव राजाओं ने तथा वासव के लिगायत (वीर शैव) धर्म के अनुयायी अनेक नायको ने जैन धर्म और जैनों पर अमानुषिक अत्याचार भी किये। परिणामस्वरूप शनै:-शनैः उसकी स्थिति एक प्रमुख धर्म की स्थिति से गिरकर एक गौण सम्प्रदाय की रह गई।

१३वी शती के प्रारम्भ से लेकर १८वी शती के प्रारम्भ तक भारतवर्ष में मुस्लिम शासन की प्रधानता रही और उस काल मे जैन धर्म की स्थिति तथाकथित हिन्दू धर्म जैसी ही रही। शासको की दृष्टि मे दोनो में भेद नही था, दोनो ही विधर्मी काफिर थे। जैनो का संख्या बल उत्तरोत्तर घटता गया और वे वाणिज्य-व्यापार मे ही सीमित होते गये। इसीलिए शान्तिप्रिय एव निरीह होने के कारण शासको के धार्मिक अत्याचार के शिकार भी अधिक नही हुए। उस काल मे अन्त के डेढ सौ वर्षों का मुगल शासन अपेक्षाकृत अधिक सहिष्णु रहा।

तदनन्तर लगभग डेढ़ सौ वर्ष देश मे अराजकता का अन्ध-युग रहा, जब किसी का भी धन, जन एव धर्म सुरक्षित नही या। उसके पश्चात् १६वी शती के मध्य के लगभग से लेकर १६४७ मे स्वतन्त्रता प्राप्ति पर्यन्त देश पर अग्रेजों का शासन रहा। शान्ति, सुरक्षा, न्याय, शासन, पश्चिमी शिक्षा का प्रचार, पुस्तकों एवं समाचार पत्रो का मुद्रण-प्रकाशन, यातायात के साधनों का अभूतपूर्व विस्तार, नव जागृति, समाज सुधार एव स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए किये गये आन्दोलन एव संघर्ष इस युग की विशेषताएँ रही और जैनी जन उन सबसे ही यथेष्ट प्रभावित रहे। उन्होने सभी दिशाओ मे प्रगति की, स्वतत्रता सग्राम मे भी सोत्साह सक्रिय भाग लिया और बलिदान किए।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भी राष्ट्र के पुनर्निर्माण मे उनका उपयुक्त योगदान रहा है। जैन धर्म अपनी मौलिक विशेषताओ को लिए हुए अब भी सजीव सचेत जीवन-दर्शन है और वर्तमान युग की चुनौतियों को स्वीकार करने में सक्षम है।

धर्म-दर्शन, ज्ञान-विज्ञान, साहित्य-कला, आचार-विचार, प्रायः सभी क्षेत्रो मे उसकी सास्कृतिक बपौती भी स्पृहणीय है। □□

R. N. 10591/62

वीर-सेवा-मन्दिर के उपयोगी प्रकाशन

पुरातन जैनवाक्य-सूची : प्राकृत के प्राचीन ४६ मूल-ग्रन्थों की पद्यानुक्रमणी, जिसके साथ ४८ टीकादि ग्रन्थों में उद्धृत दूसरे पद्यों की भी अनुक्रमणी लगी हुई है। सब मिलाकर २५३५३ पद्य-वाक्यों की सूची। संपादक मुख्तार श्री जुगलकिशोर जी की गवेषणापूर्ण महत्त्व की ७० पृष्ठ की प्रस्तावना से अलंकृत, डा० कालीदास नाग, एम. ए., डी. लिट् के प्राक्कथन (Foreword) और डा० ए. एन. उपाध्ये एम. ए., डी. लिट्. की भूमिका (Introduction) से भूषित है। शोध-खोज के विद्वानों के लिए अतीव उपयोगी, बड़ा साइज, सजिल्द। १५-००

आप्तपरीक्षा : श्री विद्यानन्दाचार्य की स्वोपज्ञ सटीक अपूर्व कृति, आप्तों की परीक्षा द्वारा ईश्वर-विषयक सुन्दर विवेचन को लिए हुए, न्यायाचार्य प दरबारीलालजी के हिन्दी अनुवाद से युक्त, सजिल्द। ८-००

स्वयम्भू स्तोत्र : समन्तभद्र भारती का अपूर्व ग्रन्थ, मुख्तार श्री जुगलकिशोरजी के हिन्दी अनुवाद, तथा महत्त्व की गवेषणापूर्ण प्रस्तावना से सुशोभित। २-००

स्तुतिविद्या : स्वामी समन्तभद्र की अनोखी कृति, पापों के जीतने की कला, सटीक, सानुवाद और श्री जुगलकिशोर मुख्तार की महत्त्व की प्रस्तावनादि से अलंकृत सुन्दर जिल्द-सहित। १ ५०

अध्यात्मकमलमार्तण्ड : पचाध्यायीकार कवि राजमल की सुन्दर आध्यात्मिक रचना, हिन्दी-अनुवाद-सहित १-५०

युक्त्यनुशासन : तत्त्वज्ञान से परिपूर्ण, समन्तभद्र की असाधारण कृति, जिसका अभी तक हिन्दी अनुवाद नही हुआ था। मुख्तारश्री के हिन्दी अनुवाद और प्रस्तावनादि से अलंकृत, सजिल्द। ... १ २५

समीचीन धर्मशास्त्र : स्वामी समन्तभद्र का गृहस्थाचार-विषयक अत्युत्तम प्राचीन ग्रन्थ, मुख्तार श्री जुगलकिशोर जी के विवेचनात्मक हिन्दी भाष्य और गवेषणात्मक प्रस्तावना से युक्त, सजिल्द। ... ३-००

जैनग्रन्थ-प्रशस्ति संग्रह भा० १ : संस्कृत और प्राकृत के १७१ अप्रकाशित ग्रन्थों की प्रशस्तियों का मंगलाचरण सहित अपूर्व संग्रह, उपयोगी ११ परिशिष्टों और प० परमानन्द शास्त्री की इतिहास-विषयक साहित्य परिचयात्मक प्रस्तावना से अलंकृत, सजिल्द। ४-००

समाधितन्त्र और इष्टोपदेश : अध्यात्मकृति परमानन्द शास्त्री की हिन्दी टीका सहित ४-००

श्रवणबेलगोल और दक्षिण के अन्य जैन तीर्थ। १-२५

अध्यात्मरहस्य : प० आशाधर की सुन्दर कृति, मुख्तार जी के हिन्दी अनुवाद सहित। ... १-००

जैनग्रन्थ-प्रशस्ति संग्रह भा० २ : अपभ्रंश के १२२ अप्रकाशित ग्रन्थों की प्रशस्तियों का महत्त्वपूर्ण संग्रह। पचपन ग्रन्थकारों के ऐतिहासिक ग्रंथ-परिचय और परिशिष्टों सहित। सं. प० परमानन्द शास्त्री। सजिल्द। १२-००

न्याय-दीपिका : आ. अभिनव धर्मभूषण की कृति का प्रो० डा० दरबारीलालजी न्यायाचार्य द्वारा स० अनु०। ७-००

जैन साहित्य और इतिहास पर विशद प्रकाश : पृष्ठ संख्या ७४० सजिल्द ५-००

कसायपाहुडसुत्त : मूल ग्रन्थ की रचना आज से दो हजार वर्ष पूर्व श्री गुणधराचार्य ने की, जिस पर श्री यतिवृषभाचार्य ने पन्द्रह सौ वर्ष पूर्व छह हजार श्लोक प्रमाण चूर्णिसूत्र लिखे। सम्पादक पं हीरालालजी सिद्धान्त शास्त्री, उपयोगी परिशिष्टों और हिन्दी अनुवाद के साथ बड़े साइज के १००० से भी अधिक पृष्ठों में। पुष्ट कागज और कपड़े की पक्की जिल्द। २०-००

Reality : आ० पूज्यपाद की सर्वार्थसिद्धि का अंग्रेजी में अनुवाद बड़े आकार के ३०० पृ. पक्की जिल्द ६-००

जैन निबन्ध-रत्नावली : श्री मिलापचन्द्र तथा रतनलाल कटारिया ५-००

प्रकाशक—वीर सेवा मन्दिर के लिए रूपवाणी प्रिंटिंग हाउस, दरियागंज, दिल्ली से मुद्रित।

5214
.2

त्रैमासिक शोधपत्रिका

अनेकान्त

वर्ष २७ | किरण २ | अगस्त १९७४

प्रकाशक

वीर सेवा मन्दिर २१, दरियागंज, दिल्ली

विषय-सूची

सम्पादक मण्डल

डा० आ. ने. उपाध्ये

डा० प्रेमसागर जैन

यशपाल जैन

पुखराज जैन

प्रबन्ध सम्पादक

ओम्प्रकाश जैन

(सचिव)

अनेकान्त का वार्षिक मूल्य ६) रुपया

एक किरण का मूल्य १ रुपया २५ पैसा

वीर-सेवा-मन्दिर का अभिनव प्रकाशन

जैन लक्षणावली भाग दूसरा

चिर प्रतीक्षित जैन लक्षणावली (जैन पारिभाषिक शब्दकोश) का द्वितीय भाग भी छप चुका है। इसमें लगभग ४०० जैन ग्रन्थों से वर्णानुक्रम के अनुसार लक्षणों का संकलन किया गया है। लक्षणो के संकलन में ग्रन्थकारों के कालक्रम को मुख्यता दी गई है। एक शब्द के अन्तर्गत जितने ग्रन्थो के लक्षण संगृहीत हैं उनमें से प्रायः एक प्राचीनतम ग्रन्थ के अनुसार प्रत्येक शब्द के अन्त में हिन्दी अनुवाद भी दे दिया गया है। जहाँ विवक्षित लक्षण में कुछ भेद या हीनाधिकता दिखी है वहां उन ग्रन्थो के निर्देश के साथ २-४ ग्रन्थों के आश्रय मे भी अनुवाद किया गया है। इस भाग में केवल 'क से प' तक लक्षणो का सकलन किया जा सका है। कुछ थोड़े ही समय मे इसका तीसरा भाग भी प्रगट हो रहा है। प्रस्तुत ग्रन्थ संशोधकों के लिए तो विशेष उपयोगी है ही साथ ही हिन्दी अनुवाद के रहने से वह सर्वसाधारण के लिए भी उपयोगी है। द्वितीय भाग बड़े आकार में ४१८+८+२२ पृष्ठों का है। कागज पुष्ट व जिल्द कपड़े की मजबूत है। मूल्य २५-०० रु० है। यह प्रत्येक यूनीवर्सिटी, सार्वजनिक पुस्तकालय एवं मन्दिरों में संग्रहणीय है। ऐसे ग्रन्थ बार-बार नही छप सकते। समाप्त हो जाने पर फिर मिलना अशक्य हो जाता है।

प्राप्तिस्थान

वीर सेवा मन्दिर, २१ दरियागंज, दिल्ली-६

अनेकान्त में प्रकाशित विचारों के लिए सम्पादक मण्डल उत्तरदायी नहीं है। —व्यवस्थापक

ॐ अर्हम्

अनेकान्त

परमागमस्य बीजं निषिद्धजात्यन्धसिन्धुरविधानम् ।
सकलनयविलसितानां विरोधमथनं नमाम्यनेकान्तम् ॥

वर्ष २७ किरण २	वीर-सेवा-मन्दिर, २१ दरियागंज, दिल्ली-६ वीर-निर्वाण सवत् २५००, वि० स० २०३१	अगस्त १९७४

अर्हत-परमेष्ठी-स्तवन

रागो यस्य न विद्यते क्वचिदपि प्रध्वस्तसंगग्रहात्-
अस्त्रादेः परिवर्जनान्न च बुधैर्द्वेषोऽपि संभाव्यते ।
तस्मात्साम्यमथात्मबोधनमतोजातः क्षयः कर्मणा-
मानन्दादिगुणाश्रयस्तु नियतं सोऽर्हन्सदा पातु वः ॥३॥

—पद्मनन्द्याचार्य

अर्थ—जिस अरहंत परमेष्ठी के परिग्रहरूपी पिशाच से रहित हो जाने के कारण किसी भी इन्द्रिय विषय में राग नही है, त्रिशूल आदि आयुधों से रहित होने के कारण उक्त अरहंत परमेष्ठी के विद्वानों द्वारा द्वेष की संभावना भी नहीं की जा सकती है। इसीलिए रागद्वेष रहित हो जाने के कारण उनके समता भाव आविर्भूत हुआ है। अतएव कर्मों के क्षय से अर्हत्परमेष्ठी अनन्त सुख आदि गुणों के आश्रय को प्राप्त हुए हैं। वे अर्हत्परमेष्ठी सर्वदा आप लोगों की रक्षा करें।

उत्तर भारत में जैन यक्षी पद्मावती का प्रतिमा-निरूपण

□ मारुतिनन्दन प्रसाद तिवारी, वाराणसी

दोनों परम्परा मे २३वे तीर्थंकर पार्श्वनाथ की यक्षी को पद्मावती नाम से सम्बोधित किया गया है और उसका वाहन कुक्कुट-सर्प (या कुक्कुट) बनाया गया है।[1] दोनों परम्परा मे चतुर्भुज यक्षी के साथ पद्म, पाश एव अंकुश का उल्लेख प्राप्त होता है। दिगम्बर परम्परा मे चतुर्भुज स्वरूप के साथ ही पद्मावती का षड्भुज, एव चतुर्विंशति भुज स्वरूपों मे भी निरूपण किया गया है।

(क) शिल्पशास्त्रों में:

श्वेताम्बर परम्परा : निर्वाणकलिका (१०वी ११वी शती) मे चतुर्भुजा पद्मावती का वाहन कुर्कुट है, और उसकी दाहिनी भुजाओ मे पद्म, पाश एव बायी मे फल, अकुश प्रदर्शित है।[2] समान विवरणो का उल्लेख करने वाले सभी परवर्ती ग्रन्थो मे वाहन रूप मे कुर्कुट के स्थान पर कुर्कुट-सर्प का उल्लेख प्राप्त होता है।[3] मत्राधिराज कल्प (१२वी १३वी शती) मे पद्मावती के मस्तक पर तीन सर्प फणो के प्रदर्शन का भी निर्देश है।[4]

दिगम्बर परम्परा :— प्रतिष्ठासारसंग्रह (१२वी शती) मे पद्मवाहना पद्मावती का चतुर्भुज, षड्भुज एव चतुर्विंशतिभुज स्वरूपो का ध्यान किया गया है।[5] चतुर्भुजा पद्मावती की तीन भुजाओ मे अंकुश, अक्षसूत्र एवं पद्म प्रदर्शित है। षड्भुजा यक्षी की भुजाओ मे पाश, खड्ग, शूल, अर्धचन्द्र (बालेन्दु), गदा एव मुसल स्थित है। चतुर्विंशतिभुज यक्षी शख, खड्ग, चक्र, अर्धचन्द्र (बालेन्दु), पद्म, उत्पल, धनुष, (शरासन), शक्ति, पाश, अंकुश, घण्ट, बाण, मुसल, खेटक, त्रिशूल, परशु, कुत, वज्र, (मिड), माला, फल, गदा, पत्र, पल्लव एव वरद से युक्त है।[6] प्रतिष्ठासारोद्धार (१३वी शती) मे भी

---

१ प्रतिष्ठासारसंग्रह मे वाहन पद्म है।

२. पद्मावती देवी कनकवर्णा कुर्कुटवाहना चतुर्भुजा। पद्मपाशान्वितदक्षिणकरा फलांकुशाधिष्ठित वामकरा चेति ॥ निर्वाणकलिका : १८.२३
(पादलिप्त सूरिकृत: सं० मोहनलाल भगवानदास, मुनिश्री मोहनलाल जी जैन ग्रन्थमाला : ५ बम्बई, १९२६ पृ० ३४।

३ तथा पद्मावती देवी कुर्कुटोरगवाहना। त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र: ९.३.३६४-३६५ (हेमचन्द्रकृत: १२वीं शती)
देखे — १. पद्मानन्द महाकाव्य : परिशिष्ट - पार्श्वनाथ—६३-६४ (अमरचन्द सूरि कृत: १३वी शती)
२. पार्श्वनाथ चरित्र: ७. ८२९-८३० (भवदेव सूरिकृत: १४वी शती)
३. आचारदिनकर : ३४, पृ० १७७ (वर्धमान सूरि : १४१२)
४. देवतामूर्ति प्रकरण : ७. ६३ (सूत्रधार मण्डन: १५वी शती)

४ ···त्रिफणाढ्यमौलि ···मंत्राधिराजकल्प ३ ६५ (सागरचंद्र सूरिकृत)

५. देवी पद्मावती नाम्ना रक्तवर्णा चतुर्भुजा।
पद्मासनाकुशं धत्ते अक्षसूत्रं च पंकजं।
अथवा षड्भुजा देवी चतुर्विंशति सद्भुजा॥
पाशासिकुन्तबालेन्दुगदामुशलसंयुतं।
भुजाष्टक समाख्यात चतुर्विंशतिरुच्यते॥
शखासिचक्रबालेन्दु पद्मोत्पलशरासन।
पाशाकुश घट(यायु) बाणं मुशलखेटक॥
त्रिशूलपरशु कुतं मिडमालं फलं गदा।
पत्रंचपल्लवं धत्ते वरदा धर्मवत्सला॥
—प्रतिष्ठासारसंग्रह ५. ६७-७१
(वसुनंदि कृत: पाण्डुलिपि —लालभाई दलपत भाई भारतीय संस्कृत विद्या मन्दिर, अहमदाबाद)।

६. भट्टाचार्य ने 'प्रतिष्ठासारसंग्रह' की आरा की पाण्डुलिपि में वज्र एवं शक्ति का उल्लेख किया है, (भट्टा-

सम्भवतः कुक्कुट-सर्प पर आरूढ एवं तीन सर्पफणों से मण्डित यक्षी का चतुर्विंशतिभुज स्वरूप में ही ध्यान किया गया है। पद्म पर आसीन पद्मावती की भुजाओं में अंकुश, पाश, शंख, पद्म, एवं अक्षमाला आदि के प्रदर्शन का निर्देश दिया गया है[7]। प्रतिष्ठातिलकम् (१५४३) भी सम्भवतः चतुर्विंशतिभुज पद्मावती का ध्यान करता है। पद्मस्थ यक्षी की ६ भुजाओं में पाश आदि, और अन्य में शंख, खड्ग अंकुश, पद्म, अक्षमाला एवं वरद आदि के प्रदर्शन का निर्देश है[8]। ग्रन्थ मे वाहन (कुक्कुट-सर्प) का उल्लेख नहीं किया गया है। अपराजितपृच्छा में चतुर्भुजा एवं पद्मासना पद्मावती का वाहन कुक्कुट बताया गया है। यक्षी के करों मे पाश, अंकुश, पद्म एवं वरद प्रदर्शित है[9]।

धरणेन्द्र (पातालदेव) की भार्या होने के कारण ही पद्मावती के साथ सर्प (कुक्कुट-सर्प एवं सर्पफण) प्रदर्शित किया गया। जैन परम्परा में उल्लेख है कि पार्श्वनाथ का जन्म-जन्मान्तर का वैरी कमठ अपने दूसरे भव में कुक्कुट-सर्प के रूप में उत्पन्न हुआ। पद्मावती के वाहन रूप मे कुक्कुटा-सर्प का उल्लेख निश्चित ही उस कथा से प्रभावित है, और सम्भवतः पार्श्वनाथ के शत्रु पर उसकी यक्षी (पद्मावती) के नियन्त्रण का सूचक है। यक्षी का नाम (पद्मा या पद्मावती) उसकी भुजा मे या वाहन रूप में प्रदर्शित पद्म से सम्बन्धित किया जा सकता है। पद्मावती को हिन्दू देवकुल की सर्प से सम्बद्ध लोकदेवी मनसा से भी सम्बन्धित किया जाता है। पर जैन यक्षी की लाक्षणिक विशेषतायें निश्चित ही स्वतन्त्र है। मनसा को भी पद्मा या पद्मावती नामों से सम्बोधित किया गया है[10]। हिन्दू परम्परा मे नागदेवी मनसा को जरत्कारु की पत्नी बताया गया है। ज्ञातव्य है कि जरत्कारु का ही जैन परम्परा में कठ के रूप में उल्लेख प्राप्त होता है, जो कालांतर मे पातालराज शेष हुआ[11]। हिन्दू परम्परा में शिव की शक्ति रूप मे भी पद्मावती (या परा) का उल्लेख प्राप्त होता है। नाग पर आरूढ एवं नाग की माला मे सुशोभित चतुर्भुजा पद्मावती को त्रिनेत्र बताया गया है। शीर्ष भाग मे अर्धचन्द्र से सुशोभित पद्मावती माला, कुम्भ, कपाल, एवं नीरज धारण करती है। (**मारकण्डेय पुराण** : अध्याय ८६ ध्यानम्)।

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगम्बर ग्रन्थ में पाच शेषफणों से सुशोभित चतुर्भुजा पद्मावती का वाहन हंस बताया गया है। यक्षी की ऊर्ध्व भुजाओं मे कुठार एवं कटक प्रदर्शित है। प्रस्तुत विवरण किसी भी ज्ञात उत्तर-भारतीय परम्परा मे मेल नही खाता है[12]।

मध्ययुगीन तान्त्रिक ग्रन्थ भैरव पद्मावती कल्प में पद्म पर अवस्थित चतुर्भुजा पद्मा को त्रिलोचना बताया गया है। पद्मा के हाथो में पाश, फल, वरद एवं भृणि प्रदर्शित है[13]। भैरव पद्मावती कल्प में पद्मावती के अन्य क...

चार्य, जैन आइकनाग्राफी, पृ १४४), परन्तु अहमदाबाद पाण्डुलिपि की मे शक्ति का उल्लेख अनुपलब्ध है और वज्र के स्थान पर भिंड का उल्लेख प्राप्त होता है।

७. येष्टु कुर्कटसर्पगात्रिफणकोत्तंसाद्विपोयात षट्।
पाशादिः सदसत्कृते च घृतशंखास्पादिदो अष्टका।
तां शातामरुणां स्फुरच्छृणिसरोजन्माक्षव्यालावरा।
पद्मस्थां नवहस्तकप्रमुनता यायजिम पद्मावतीम्॥
(आशाधर कृतः) —'प्रतिष्ठासारोद्धार' ३ १७४

८. पाशाद्यन्वितषड्भुजारिजयदा ध्याता चतुर्विंशतिं।
शंखास्यादियुतान्करांस्तु दधती या क्रूरशान्त्यर्थदा॥
शान्त्ये सांकुशवारिजाक्षमणिसद्दानैश्चतुर्भिः करै—
र्युक्ता तां प्रयजामि पार्श्वविनतां पद्मस्थ पद्मावतीम्।
(नेमिचद्र कृत) 'प्रतिष्ठातिलकमः ७.२३, पृ. ३४७-४८

९. पाशाङ्कुशो पद्मवरे रक्तवर्णा चतुर्भुजा।
पद्मासना कुक्कुटस्था ख्याता पद्मावतीति च॥
'अपराजितपृच्छाः २२१.३७

१०. बनर्जी, जितेन्द्रनाथ, 'दी डीवलपमेन्ट आफ हिन्दू आइकनोग्राफी', कलकत्ता १९५६, पृ. ५६३।

११. भट्टाचार्य बी. सी., 'दि जैन आइकनोग्राफी' लाहौर, १९३९, पृ १४५।

१२. रामचन्द्रन, टी. एन; 'तिरुपरुत्ति कुणरम ऐण्ड इट्स टेम्पिल्स', बुलेटिन मद्रास गवर्नमेण्ट म्यूजियम, ख १, भा. ३, मद्रास, १९३४, पृ. २१०।

१३. पाशफलवरदगजवशकरणकरा पद्मविष्टरा पद्मा।
सा मा रक्षतु देवी त्रिलोचना रक्तपुष्पामा॥
'भैरवपद्मावती कल्प' (दीपार्णव से उद्धृत, पृ ४३९

नामों का भी उल्लेख किया गया है[१४]।

श्वेताम्बर परम्परा के अनामक ग्रन्थ में कुक्कुट-सर्प पर आरूढ़ चतुर्भुज यक्षी को त्रिलोचना बताया गया है। यक्षी भृणि, पाश, वरद, एवं पद्म से युक्त है। विवरण उत्तर भारतीय श्वेताम्बर परम्परा से मेल खाता है, पर इसमें फल के स्थान पर वरद का उल्लेख किया गया है। यक्ष-यक्षी लक्षण मे सर्पफण से आच्छादित चतुर्भुजा एव त्रिलोचना यक्षी का वाहन केवल सर्प बताया गया है। उत्तर भारतीय श्वेताम्बर परम्परा के अनुरूप यक्षी पाश, अकुश, फल एव वरद धारण करती है। उत्तर भारतीय परम्परा मे प्राप्त पद्म के स्थान पर यहाँ वरद का उल्लेख किया गया है[१५]।

(ख) मूर्त अंकनों में—मूर्त अकनों मे अम्बिका एव चक्रेश्वरी के उपरान्त पद्मावती ही सर्वाधिक लोकप्रिय रही है। सामान्यतः सभी क्षेत्रों में सर्पफणो से मण्डित पद्मावती का वाहन कुक्कुट-सर्प है। यक्षी की भुजाओं मे सर्प के साथ ही पाश, अंकुश एवं पद्म का चित्रण लोकप्रिय रहा है। पद्मावती की प्राचीनतम मूर्तियां ओसिया के महावीर एवं ग्यारसपुर के मालादेवी मन्दिरों से प्राप्त होती है। इन स्थलों की प्रारम्भिक द्विभुज मूर्तियों के अतिरिक्त अन्य स्थलों पर यक्षी का चतुर्भुज स्वरूप मे अकन ही विशेष लोकप्रिय रहा है[१६]।

राजस्थान-गुजरात : स्वतन्त्र मूर्तियां—इस क्षेत्र की सभी मूर्तियां श्वेताम्बर परम्परा की कृतिया हैं। पद्मावती की प्राचीनतम मूर्ति ओसिया के महावीर मन्दिर (८वीं शती) के मुखमण्डप के उत्तरी छज्जे पर उत्कीर्ण है। कुक्कुट-सर्प पर विराजमान द्विभुज यक्षी की दाहिनी भुजा में सर्प और बायीं में फल स्थित है। स्पष्ट है कि पद्मावती के साथ आठवीं शती में ही वाहन कुक्कुट-सर्प एवं भुजा मे सर्प को सम्बद्ध किया जा चुका था।

ग्यारहवीं शती की एक अष्टभुज पद्मावती मूर्ति(?) राजस्थान के अलवर जिले में स्थित झलरपट्टन के जैन मन्दिर (१०४३) की दक्षिणी वेदिका बंध पर उत्कीर्ण है। ललितमुद्रा मे भद्रासन पर विराजमान यक्षी के मस्तक पर सप्त सर्पफणों का छत्र प्रदर्शित है। यक्षी की भुजाओं मे वरद, वज्र, पद्मकलिका, कृपाण, खेटक, पद्मकलिका, घण्ट एवं फल प्रदर्शित है। यक्षी के करों मे पारम्परिक आयुधों (पाश एवं अकुश) एवं वाहन (कुक्कुट-सर्प) के प्रदर्शन के अभाव के बाद भी केवल सप्त सर्पफणों का चित्रण पद्मावती से पहचान का समर्थक है। दूसरी ओर भुजा मे सर्प की अनुपस्थिति एवं सर्पफणो का मण्डन देवी के महाविद्या वेरोट्या से पहचान के विरुद्ध है। मूर्त अंकनो मे भुजाओं मे सर्वदा सर्प से युक्त वेरोट्या के मस्तक पर कभी सर्पफण का प्रदर्शन नही प्राप्त होता है।

श्वेताम्बर परम्परा का निर्वाह करने वाली बारहवी शती की दो चतुर्भुज पद्मावती मूर्तियां कुम्भारिया के नेमिनाथ मन्दिर की पश्चिमी देवकुलिका की बाह्य भित्ति पर उत्कीर्ण है[१७]। दोनों मूर्तियों मे ललितमुद्रा मे भद्रासन पर विराजमान यक्षी के समक्ष उसका वाहन कुर्कुट-सर्प उत्कीर्ण है। एक मूर्ति मे यक्षी मस्तक पर पांच सर्पफणो से भी आच्छादित है। यक्षी की भुजाओं में वरदाक्ष, अंकुश, पाश एवं फल प्रदर्शित है। सर्पफण से रहित दूसरी मूर्ति मे यक्षी के करो में पद्मकलिका, पाश, अकुश एवं फल स्थित है। विमलवसही के गूढ़मण्डप के दक्षिणी द्वार पर भी चतुर्भुजा पद्मावती की एक मूर्ति (१२वी शती) उत्कीर्ण है। कुक्कुट-सर्प पर आरूढ़ पद्मावती की भुजाओं मे सनालपद्म, पाश, अंकुश (?) एव फल प्रदर्शित है। लूणवसही के गूढमण्डप के दक्षिणी प्रवेशद्वार के दहलीज पर चतुर्भुजा पद्मावती सी एक लघु आकृति उत्कीर्ण है। मकरवाहना यक्षी के हाथों मे

१४. तोतला त्वरिता नित्या त्रिपुरा कामसाधिनी।
दिव्या नामानि पद्मायास्तथा त्रिपुर भैरवी॥
—'भैरवपद्मावतीकल्पः'

१५. रामचन्द्रन, 'तिरुपरुत्तिकुणरम', पृ. २१०।

१६. द्विभुज पद्मावती की दो अन्य मूर्तियां (बारहवी शती) देवगढ़ से भी प्राप्त होती है। बहुभुजी पद्मावती मूर्तियां केवल देवगढ़, शहडोल, वारभुजी गुफा एवं भलरपट्टन से प्राप्त होती है।

१७. तिवारी मारुतिनन्दन प्रसाद, 'ऐ ब्रीफ सर्वे आफ द आइकानग्रैफिक डैटा ऐट कुम्भारिया', नार्थ गुजरात, सम्बोधि, ख. २, अंक १, अप्रिल १९७३, पृ. १३।

वरदाक्ष, सर्प (त्रिफणा), पाश एवं फल प्रदर्शित है। वाहन मकर का प्रदर्शन परम्परा विरुद्ध है, पर सर्प एवं पाश का चित्रण पद्मावती से पहचान का समर्थक है। साथ ही दहलीज के दूसरे छोर पर पार्श्व यक्ष का चित्रण भी इसके पद्मावती होने को प्रमाणित करता है। सम्भव है वाहन मकर का प्रदर्शन पार्श्व यक्ष के कूर्म वाहन से प्रभावित रहा हो।

विमलवसही की देवकुलिका: ४९ के मण्डप के वितान पर उत्कीर्ण षोडश भुज देवी की सम्भावित पहचान महाविद्या वैरोट्या एवं यक्षी पदमावती—दोनों ही से की जा सकती है। सप्त सर्पफणों से मण्डित एवं ललित-मुद्रा में भद्रासन पर विराजमान देवी के आसन के समक्ष तीन सर्पफणों से युक्त नाग (वाहन) आकृति को नमस्कार मुद्रा में उत्कीर्ण किया गया है। नाग की कटि के नीचे का भाग सर्पाकार है। नाग की कुण्डलियां देवी के दोनों पार्श्वों में उत्कीणित दो नागी आकृतियों की कुण्डलियों से गुम्फित है। हाथ जोड़े एवं एक सर्पफण से मण्डित नागी आकृतियों की कटि के नीचे का भाग भी सर्पाकार है। देवी की भुजाओं में वरद, नागी के मस्तक पर स्थित त्रिशूल-घण्ट, खड्ग, पाश, त्रिशूल, चक्र (छल्ला), दो ऊपरी भुजाओं में सर्प, खेटक, दण्ड, सनालपद्मकलिका, वज्र, सर्प, नागी के मस्तक पर स्थित, एवं जलपात्र प्रदर्शित है। दोनों पार्श्वों में दो चामरधारिणी दो कलश-धारी सेवक एवं वाद्यवादन करती आकृतियां अंकित है। सप्त सर्पफणों का मण्डन जहाँ देवी की पद्मावती से पहचान का समर्थन करता है, वहीं कुक्कुट सर्प के स्थान पर वाहन रूप में नाग का चित्रण एवं भुजाओं में सर्प का प्रदर्शन महाविद्या वैरोट्या से पहचान का आधार प्रस्तुत करता है। ज्ञातव्य है कि श्वेताम्बर परम्परा में कभी वैरोट्या एवं पद्मावती के बहुभुज स्वरूप का ध्यान नहीं किया गया है। श्वेताम्बर परम्परा में दोनों ही चतुर्भुज है।

जिन संयुक्त मूर्तियाँ—इस क्षेत्र की सभी पार्श्वनाथ मूर्तियों में यक्षी रूप में अम्बिका को आमूर्तित किया गया गया है। केवल विमलवसही की देवकुलिका ४ की पार्श्व-नाथ मूर्ति (११८८) में ही चतुर्भुज पद्मावती का पारम्परिक स्वरूप में चित्रण प्राप्त होता है। तीन सर्प फणों से सुशोभित पद्मावती कुर्कुट-सर्प पर आरूढ़ है; और उसकी भुजाओं में पद्म, पाश, अंकुश एवं फल प्रदर्शित है।

उत्तर प्रदेश—मध्य प्रदेश : स्वतन्त्र मूर्तियाँ—इस क्षेत्र की प्राचीनतम मूर्ति देवगढ़ के सामूहिक चित्रण (८६२) से प्राप्त होती है। समूह में पार्श्व के साथ 'पद्मावती' नाम की चतुर्भुजा यक्षी आमूर्तित है। यक्षी की भुजाओं में वरद, चक्राकार सनाल पद्म, लेखनीपट्ट (या फलक), एवं कलश प्रदर्शित है'[१८]। यद्यपि दिगम्बर परम्परा में चतुर्भुजा एवं पद्मवाहना पद्मावती की भुजा में पद्म के प्रदर्शन का निर्देश दिया गया है, पर अन्य आयुधों की दृष्टि से यक्षी का चित्रण पारम्परिक नहीं प्रतीत होता है। वाहन एवं सर्पफण भी अनुपस्थित है। यक्षी के साथ पद्म, लेखनी पट्ट (?) एवं कलश का प्रदर्शन पद्मावती के स्वरूप पर सरस्वती के प्रभाव क संकेत देता है।

लगभग नवीं-दसवीं शती की एक पद्मावती (?) मूर्ति नालन्दा के मठः ९ से प्राप्त होती है, और सम्प्रति नालन्दा संग्रहालय में सुरक्षित है। ललितमुद्रा में पद्म पर विराजमान चतुर्भुजा देवी के मस्तक पर पाच सर्प-फण प्रदर्शित है। देवी की भुजाओं में फल, खड्ग, परशु एवं चिन्मुद्रा प्रदर्शित है। चिन्मुद्रा में पद्मासन का स्पर्श करती देवी की भुजा में पद्म नलिका भी स्थित है[१९]। केवल सर्पफण के आधार पर मूर्ति की पद्मावती से पहचान उचित नहीं है। साथ ही नालन्दा बौद्ध केन्द्र रहा है, जहाँ से प्राप्त होने वाली यह एकमात्र सम्भावित जैन मूर्ति है।

प्रारम्भिक दसवीं शती की तीन द्विभुज पद्मावती मूर्तियाँ मालादेवी मन्दिर के मण्डप की जंघा पर उत्कीर्ण है। त्रिभंग में खड़ी यक्षी के मस्तक पर पांच सर्पफणों

१८. ब्रुन, क्लाज, 'द जिन-इमेजेज आफ देवगढ़', लिडेन १९६९ पृ. १०२, १०५, १०६, चक्राकार सनालपद्म जैन देवी तारा से सम्बद्ध रहा है।

१९ 'आर्कीयलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया', ऐनुअल रिपोर्ट १९३०-३४; भाग २, फलकः ६८, चित्र बी०।

का चित्रण ही पद्मावती से पहचान का मुख्य आधार है। उत्तर और दक्षिण की जंघा की दो मूर्तियो मे यक्षी की भुजाओ में व्याख्यान-अक्षमाला एवं जलपात्र प्रदर्शित है[20]। पश्चिम जंघा की मूर्ति मे दाहिनी भुजा मे पद्म प्रदर्शित है, पर बायीं एक गदा पर स्थित है। गदा का निचला भाग अंकुश की तरह निर्मित है। उल्लेखनीय है कि देवगढ एव खजुराहो की परवर्ती मूर्तियो में पद्मावती के साथ पद्म एवं गदा का चित्रण प्राप्त होता है। मन्दिर के गर्भगृह की पश्चिमी भित्ति की चौथी मूर्ति में तीन सर्पफणों से आच्छादित द्विभुज पद्मावती की दाहिनी भुजा मे पद्म स्थित है, और बायी खण्डित है। लगभग दसवी शती की एक चतुर्भुज मूर्ति त्रिपुरी के तेवर स्थित बालसागर सरोवर के मन्दिर मेसुरक्षित शिल्प पट्ट पर उत्कीर्ण है[21]। सप्त सर्पफणो से मण्डित पद्मासना पद्मावती की भुजाओ मे अभय, सनालपद्म एवं कलश प्रदर्शित है। स्पष्ट है कि दिगम्बर स्थलों पर दशवी शती तक केवल सर्पफणो (३, ५ या ७) एव भुजा मे पद्म का प्रदर्शन ही नियमित हो सका था। यक्षी के साथ कुक्कुट-सर्प एवं पाश, अकुश जैसे पारम्परिक आयुधो के प्रदर्शन की परम्परा ग्यारहवी शती मे ही प्रारम्भ होती है।

पद्मावती की ग्यारहवीं-बारहवीं शती की कई दिगम्बर परम्परा की मूर्तियां देवगढ, खजुराहो, लखनऊ संग्रहालय एव शहडोल से प्राप्त होती है। चतुर्भुज पद्मावती की ललित मुद्रा मे आसीन दो मूर्तियाँ लखनऊ संग्रहालय मे सुरक्षित है। किसी अज्ञात स्थल से प्राप्त पहली मूर्ति (जी: ३१६—११वी शती) मे सप्त सर्पफणों से आच्छादित पद्मावती पद्म पर विराजमान है। यक्षी की भुजाओ मे भग्न, पद्म, पद्मकलिका एव कलश प्रदर्शित है। दो उपासको, मालाधरों एव चामरधारिणी सेविकाओं से सेव्यमान पद्मावती के शीर्ष भाग मे तीन सर्पफणो से मण्डित पार्श्वनाथ की लघु आकृति भी उत्कीर्ण है। वाराणसी से प्राप्त दूसरी मूर्ति (जी-७३—११वी १२वी शती) मे ऊँची पीठिका पर अवस्थित पद्मावती पाच सर्पफणों से मण्डित है। यक्षी के करों मे अभय, पद्म-कलिका, पुस्तिका एवं कलश प्रदर्शित है। यद्यपि भुजाओ की सामग्री यक्षी की १६वी यक्षी निर्वाणी से पहचान को प्रेरित करता है, पर सर्पफणों का चित्रण पद्मावती के अंकन का सूचक है। पद्मावती के साथ पद्म एवं कलश का प्रदर्शन प्रारम्भ से ही लोकप्रिय रहा है, और सम्भवत. पद्म एव कलश के अंकन की पूर्व परम्परा ने ही कलाकार को पुस्तिका के प्रदर्शन को भी प्रेरित किया होगा। स्मरणीय है कि पद्मावती की प्राचीनतम मूर्ति (देवगढ़) मे भी पद्म, कलश एवं लेखनी पट्टा (?) का चित्रण प्राप्त होता है।

खजुराहो से भी चतुर्भुज पद्मावती की तीन मूर्तियां (११वी शती) प्राप्त होती है। सभी मूर्तियाँ मन्दिरों के उत्तरागो पर उत्कीर्ण है। आदिनाथ मन्दिर एवं मन्दिर: २२ की दो मूर्तियो मे पद्मावती के मस्तक पर पांच सर्पफणो का घटाटोप प्रदर्शित है। दोनो ही उदाहरणों में वाहन सम्भवतः कुक्कुट है। आदिनाथ मन्दिर की आसीन मूर्ति मे पद्मावती अभय, पाश, पद्मकलिका एवं जलपात्र से युक्त है। मन्दिर: २२ की स्थानक मूर्ति मे यक्षी के करो मे वरद, पद्म, अस्पष्ट एव भग्न है। जार्डिन संग्रहालय (१४६७) की एक अन्य आसीन मूर्ति में सप्त सर्पफणो से आच्छादित पद्मावती का कुक्कुट वाहन आसन के समीप ही उत्कीर्ण है। यक्षी की तीन भुजाओ में वरद, पाश, अकुश प्रदर्शित है, और चौथी भुजा भग्न है। यक्षी के अकन में अपराजितपृच्छा की परम्परा का निर्वाह किया गया है। उपर्युक्त मूर्तियों के अध्ययन से स्पष्ट है कि अन्य दिगम्बर स्थलों के समान ही खजुराहो में भी पद्मावती के साथ सर्पफणों (५ या ७) एव पद्म के प्रदर्शन में नियमितता प्राप्त होती है। साथ ही अन्य पारम्परिक आयुधो (पाश एव अकुश) का भी चित्रण प्राप्त होता है। वाहन रूप मे कुक्कुट-सर्प के स्थान पर केवल कुक्कुट का ही अकन किया गया।

देवगढ़ में पद्मावती की द्विभुज, चतुर्भुज एवं द्वादश-भुज मूर्तियाँ उत्कीर्ण की गईं। उल्लेखनीय है कि जहाँ यक्षी का चतुर्भुज एवं द्वादश भुज स्वरूपों में अंकन ११वीं शती में ही प्रारम्भ हो गया था, वही द्विभुज मूर्तियाँ बारहवी शती की कृतियाँ है। देवगढ से द्विभुज पद्मावती

२०. उत्तर के उदाहरण में वाम हस्त खण्डित है।

२१. शास्त्री, ए. एम, 'त्रिपुरी का जैन पुरातत्त्व', 'जैन-चिन्तन', वर्ष २, अक २, पृ. ७१।

की दो मूर्तियां प्राप्त होती है जो मन्दिर: १२ (दक्षिणी भाग) एवं १६ के मानस्तम्भो पर उत्कीर्ण है। दोनों उदाहरणों मे यक्षी के मस्तक पर त्रिसर्पफणो का छत्र प्रदर्शित है। पहली स्थानक मूर्ति मे पद्मावती वरद एवं सनालपद्म से युक्त है। शीर्षभाग में लघु जिन आकृति से युक्त दूसरी मूर्ति मे यक्षी पुष्प एवं फल धारण करती है। देवगढ़ से ग्यारहवीं-बारहवीं शती की ललितमुद्रा में आसीन एवं पांच सर्पफणो से मण्डित तीन चतुर्भुज मूर्तियाँ प्राप्त होती है। मन्दिर : १ के मानस्तम्भ (११वी शती) की मूर्ति मे कुक्कुट-सर्प से युक्त पद्मावती की भुजाओं मे धनुष, गदा एवं पाश खण्डित है। मन्दिर : १ की ही दो अन्य मानस्तम्भों (१२वी शती) की मूर्तियों मे पद्मावती पद्मासन पर विराजमान है, और उसके करों में वरद, पद्म, पद्म एवं जलपात्र स्थित है। एक उदाहरण मे शीर्ष भाग में पांच सर्पफणो से सुशोभित लघु जिन आकृति भी उत्कीर्ण है।

द्वादशभुज पद्मावती की एक विशिष्ट मूर्ति देवगढ के मन्दिर : ११ के समक्ष के मानस्तम्भ (१०५६) पर उत्कीर्ण है। पांच सर्पफणों से मण्डित एवं ललितमुद्रा मे आसीन पद्मावती का वाहन कुर्कुट-सर्प समीप ही उत्कीर्ण है। यक्षी की भुजाओं मे वरद बाण, अंकुश, सनाल पद्म, शृंखला, दण्ड, छत्र, वज्र, सर्प (एकफणा), पाश, धनुष एवं मातुलिंग प्रदर्शित है। यक्षी के निरूपण मे वाहन एवं कुछ सीमा तक आयुधो के सन्दर्भ मे दिगम्बर परम्परा का निर्वाह किया गया है।

पद्मावती का द्विभुज एवं द्वादशभुज स्वरूपो में अंकन अपारम्परिक है। ग्यारहवीं शती की दो मूर्तियों मे जहाँ वाहन कुर्कुट-सर्प है, वहीं बारहवी शती की अन्य मूर्तियो मे यक्षी पद्मवाहना है। स्पष्ट है कि दिगम्बर परम्परा के अनुरूप ही देवगढ मे यक्षी के वाहन रूप मे पद्म एवं कुक्कुट-सर्प दोनों ही को उत्कीर्ण किया गया। आयुधो मे अन्य स्थलो के समान ही पद्म का प्रदर्शन लोकप्रिय रहा है। तीन या पाच सर्पफणो से सुशोभित यक्षी के साथ गदा, धनुष, अंकुश, पाश आदि का चित्रण भी प्राप्त होना है।

द्वादशभुज पद्मावती की एक अन्य मूर्ति (११वी शती) शहडोल (म० प्र०) से प्राप्त होती है, और सम्प्रति ठाकुर साहब संग्रह मे सुरक्षित है[२२]। पद्मावती के शीर्ष-भाग मे सप्त सर्पफणो से आच्छादित पार्श्वनाथ की पद्मासनस्थ मूर्ति उत्कीर्ण है। किरीटमुकुट एवं पाच सर्पफणो से सुशोभित यक्षी ध्यानमुद्रा मे दोनो पैर मोड़कर पद्म पर विराजमान है। पद्मासन के नीचे वाहन कूर्म चित्रित है। पद्मावती के साथ कूर्मवाहन का प्रदर्शन परम्परा विरुद्ध है, और सम्भवत: धरण यक्ष के कूर्म वाहन से प्रभावित है। पद्मावती की भुजाओं मे वरद, खड्ग, परशु, बाण, वज्र, चक्र (छल्ला), फलक, गदा, अंकुश, धनुष, सर्प एवं पद्म प्रदर्शित है। यक्षी के दक्षिण एवं वाम पार्श्वों में सर्पफण से आच्छादित दो नाग-नागी आकृतियाँ आमूर्तित है। समीप ही दो उपासक एवं चामरधारी आकृतियाँ भी चित्रित है। वाहन कूर्म के अतिरिक्त अन्य दृष्टियों से यक्षी के निरूपण मे दिगम्बर परम्परा का आंशिक निर्वाह किया गया है।

जिन संयुक्त मूर्तियां—पार्श्वनाथ मूर्तियों मे सर्पफणों से युक्त पारम्परिक यक्षी के चित्रण के अत्यन्त सीमित उदाहरण प्राप्त होते है। अधिकतर उदाहरणों मे सामान्य लक्षणों वाली यक्षी उत्कीर्ण है। केवल कुछ ही उदाहरणो मे यक्षी चतुर्भुजा है। सभी उदाहरणो मे वाहन अनुपस्थित है।

लखनऊ संग्रहालय की दसवी शती की दो मूर्तियों (जे—८८२, ४०.१२१) मे सामान्य लक्षणो वाली द्विभुज यक्षी की भुजाओ मे अभय (या सनालपद्म) एवं फल प्रदर्शित है। तीसरी मूर्ति (जे—७९४—११वी शती) मे पीठिका के मध्य मे पाच सर्पफणो से मंडित चतुर्भुज पद्मावती की ध्यान मुद्रा मे आसीन मूर्ति उत्कीर्ण है। यक्षी की भुजाओ में अभय, पद्म, एवं कलश प्रदर्शित है।

देवगढ की ६ मूर्तियो मे सामान्य लक्षणो वाली द्विभुज यक्षी की भुजाओ मे अभय (या वरद) एवं कलश (या फल) प्रदर्शित है। एक उदाहरण मे यक्षी तीन सर्पफणों से आच्छादित है। मन्दिर : १२ के ५४ भाग मे असुरक्षित पार्श्वनाथ मूर्ति (११वी शती) मे तीन सर्पफणो से मंडित चतुर्भुज यक्षी आमूर्तित है। यक्षी की

२२. 'अमेरिकन इन्स्टीट्यूट आफ इण्डियन स्टडीज', वाराणसी—चित्र संग्रह : ए ७ ५३।

ऊर्ध्व भुजाओं के आयुध अस्पष्ट है, पर निचली मे अभय एव कलश प्रदर्शित है। स्पष्ट है कि देवगढ में पद्मावती की स्वतन्त्र मूर्तियो की लोकप्रियता के बाद भी जिन-सयुक्त मूर्तियों मे पद्मावती के पारस्परिक स्वरूप को अभिव्यक्त करने का प्रयास नही किया गया। उसी स्थल की स्वतन्त्र मूर्तियों में प्राप्त विशेषताओं को भी उनमें नहीं प्रदर्शित किया गया। सर्पफण भी केवल दो ही उदाहरणों मे प्रदर्शित है।

अन्य स्थलो के विपरीत खजुराहो में पार्श्वनाथ के सर्पफणोसे युक्त यक्षी का चित्रण विशेष लोकप्रिय रहा है। खुले सग्रहालय (के ५, ११वी शती) की एक मूर्ति तीन सर्पफणों मे मंडित द्विभुज यक्षी की एक अवशिष्ट भुजा मे सम्भवतः पद्म स्थित है। खजुराहो संग्रहालय (१६१८) की दूसरी मूर्ति में तीन सर्पफणों से आच्छादित द्विभुज यक्षी की वाम भुजा में फल प्रदर्शित है, पर दक्षिण भुजा की सामग्री अस्पष्ट है। खुले सग्रहालय की ग्यारहवीं शती की दो अन्य मूर्तियों में यक्षी चतुर्भुज है। एक उदाहरण (के०-१००) में सर्पफणों से युक्त यक्षी की दो अवशिष्ट दक्षिण भुजाओ में अभय एवं पद्म प्रदर्शित है। दूसरी मूर्ति (के०-६८) मे पाँच सर्पफणों से आच्छादित यक्षी ध्यान मुद्रा में आसीन है। यक्षी के करों मे अभय, सर्प (त्रिफणा), अस्पष्ट एव जलपात्र प्रदर्शित है। स्पष्ट है कि केवल अन्तिम दो मूर्तियों मे ही पद्मावती को विशिष्ट स्वरूप में अभिव्यक्त किया गया।

उड़ीसा—खण्डगिरि की नवमुनि एवं बारभुजी गुफाओं के सामूहिक अंकनों मे भी पार्श्वनाथ के साथ पद्मावती आमूर्तित है। नवमुनि गुफा में पार्श्व के साथ उत्कीर्णित द्विभुज यक्षी ललितमुद्रा में पद्मासन पर विराजमान है। जटामुकुट से सुशोभित त्रिनेत्र यक्षी की भुजाओं में अभय एवं पद्म प्रदर्शित है। आसन के नीचे उत्कीर्ण अस्पष्ट नुकीली आकृति कहीं कुक्कुट-सर्प तो नही है ?[२३] यक्षी का चित्रण अपारम्परिक है। बारभुजी गुफा में पार्श्व के साथ पाँच सर्पफणों से मण्डित अष्टभुज पद्मावती आमूर्तित है। पद्म पर विराजमान यक्षी की दक्षिण भुजाओं मे वरद बाण, खड्ग, चक्र (?), एवं वाम मे धनुष, खेटक, सनालपद्म प्रदर्शित है।[२४] यक्षी के निरूपण में वाहन, सर्पफणों एवं कुछ सीमा तक आयुधों (पद्म) के सन्दर्भ मे दिगम्बर परम्परा का निर्वाह किया गया है।

दक्षिण भारत—तांत्रिक प्रभाव के फलस्वरूप दक्षिण भारत में पद्मावती को विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। वह दक्षिण भारत की तीन सर्वाधिक लोकप्रिय यक्षियों (अम्बिका, पद्मावती एवं ज्वालामालिनी) में से एक है। कर्नाटक में पद्मावती सर्वाधिक लोकप्रिय यक्षी रही है।[२५] यद्यपि पद्मावती का सम्प्रदाय काफी प्राचीन रहा है, परन्तु दसवी शती के बाद के अभिलेखिकी साक्ष्यों मे निरन्तर पद्मावती का उल्लेख प्राप्त होता है। शिलाहार एवं रट्ट राजवंशों और कुछ अन्य विशिष्ट व्यक्तियो के मध्य पद्मावती का पूजन विशेष लोकप्रिय रहा है, जो अपनी प्रशस्तियो मे 'पद्मावती देवी-लब्ध-वरप्रसाद' आदि उपाधियो का उल्लेख करते थे। साथ ही कर्नाटक के विभिन्न स्थलो से ग्यारहवी से तेरहवी शती के मध्य की कई पद्मावती मूर्तिया प्राप्त होती हैं।[२६] कर्नाटक के धारवाड़ जिले मे ही मल्लिषेण सूरि ने 'भैरव पद्मावती-कल्प' एव 'ज्वालिनी-कल्प' जैसे तांत्रिक ग्रन्थों की रचना की, जो पद्मावती एव ज्वालिनी की विशेष प्रतिष्ठा की ही सूचक है।[२७]

कन्नड क्षेत्र से प्राप्त पार्श्वनाथ मूर्ति (१०वी-११वी शती) मे एक सर्पफण से युक्त पद्मावती की दो भुजाओ मे पद्म एवं अभय प्रदर्शित है।[२८] कन्नड़ शोध सस्थान संग्रहालय की पार्श्वनाथ मूर्ति मे चतुर्भुज पद्मावती पद्म,

---

२३. मित्रा, देबल, 'शासनदेवीज इन दि खण्डगिरि केव्स' जर्नल एशियाटिक सोसाइटी (बंगाल) खंड १, अंक २, १६५६, पृ. १२६।

२४. मित्रा, देबल "शासनदेवीज खंडगिरि", पृ० १३३।

२५. देसाई, पी० बी०, जैनिज्म इन साऊथ इण्डिया, शोलापुर, १६५७, पृ० १६३।

२६. तदेव, पृ० १६३।

२७. तदेव, पृ० १०।

२८. हाडवे, डब्ल्यू एस. "नोट्स आन टू जैन मेण्टल इमेजैज" रुपम अंक १७, जनवरी १६२४, पृ० ४८-४६।

पाश, गदा, (या अंकुश) एवं फल धारण करती है।[२९] इसी संग्रहालय मे चतुर्भुज पद्मावती की ललित मुद्रा मे आसीन दो स्वतन्त्र मूर्तियां भी सुरक्षित है। पहली मूर्ति (के० एम० ८४) में एक सर्पफण से मण्डित यक्षी का वाहन कुक्कुट-सर्प है। यक्षी की दोनों दक्षिण भुजाएं खण्डित है, और वाम में पाश एव फल प्रदर्शित है। यक्षी की किरीट मुकुट मे लघु जिन आकृति उत्कीर्ण है।[३०] दूसरी मूर्ति मे पाँच सर्पफणो से सुशोभित पदमावती की भुजाओं मे फल, अकुश, पाश एव पद्म प्रदर्शित है। यक्षी का वाहन हंस है।[३१] बादामी की गुफा: ५ के सभक्ष की दीवार पर भी ललित मुद्रा मे आसीन चतुर्भुज यक्षी (?) आमूर्तित है। आसन के नीचे उत्कीर्ण वाहन सम्भवतः हंस (या क्रौंच पक्षी) है। सर्पफणों से विहीन यक्षी के करो मे अभय, अंकुश, पाश एव फल प्रदर्शित है।[३२]

तमिलनाडु के कलुगुमलाई से भी चतुर्भुज पद्मावती की ललितासीन मूर्ति (१०वी-११वी शती) प्राप्त होती है। शीर्ष भाग में सर्पफण से मंडित यक्षी फल, सर्प, अंकुश एव पाश धारण करती है।[३३]

कर्नाटक से प्राप्त तीन चतुर्भुज पद्मावती सम्प्रति प्रिंस आव वेल्स म्यूजियम, बम्बई मे सुरक्षित है।[३४] तीनो उदाहरणो मे एक सर्पफण से सुशोभित पद्मावती ललित मुद्रा मे विराजमान है। पहली मूर्ति मे यक्षी की तीन अवशिष्ट भुजाओं मे पद्म, पाश, एव अंकुश प्रदर्शित है। दूसरी मूर्ति मे एक अवशिष्ट भुजा मे अंकुश (ऊर्ध्व दक्षिण) स्थित है। तीसरी मूर्ति मे आसन के नीचे उत्कीर्ण पक्षी वाहन सम्भवतः कुक्कुट या शुक है। यक्षी वरद, अंकुश, पाश एव सर्प से युक्त है।

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि दक्षिण भारतीय श्वेताम्बर परम्परा के अनुरूप ही मूर्त अंकनों मे पद्मावती के साथ पाश, अंकुश एवं पद्म का प्रदर्शन लोकप्रिय रहा है। शीर्ष भाग मे सर्पफण एव वाहन रूप मे कुक्कुट सर्प (या कुक्कुट) का चित्रण भी परम्परासम्मत है। कुछ उदाहरणों मे वाहन रूप मे हंस का चित्रण दक्षिण भारतीय दिगम्बर परम्परा का अनुपालन है। हंस वाहन मे युक्त मूर्तियो मे भी आयुधो का प्रदर्शन श्वेताम्बर परम्परा से ही निर्देशित रहा है।

सम्पूर्ण अध्ययन से स्पष्ट है कि दसवी शती तक सर्वत्र यक्षी का द्विभुज स्वरूप ही लोकप्रिय रहा है परन्तु ग्यारहवी शती से यक्षी का चतुर्भुज स्वरूप में निरूपण प्रारम्भ हो जाता है। जिन-सयुक्त मूर्तियों मे पद्मावती के साथ वाहन एवं विशिष्ट आयुध सामान्यतः नहीं प्रदर्शित किये गये है। केवल कुछ उदाहरणों मे ही सर्प एव पद्म के प्रदर्शन मे परम्परा का निर्वाह किया गया है। श्वेताम्बर परम्परा मे केवल विमलवसही (देवकुलिका : ४) एव ओसिया (महावीर मन्दिर : बलानक) के दो उदाहरणो मे ही क्रमश. पारम्परिक एव विशिष्ट लक्षणो वाली यक्षी आमूर्तित है, जबकि दिगम्बर स्थलो पर कई उदाहरणो मे विशिष्ट लक्षणो वाली यक्षी का चित्रण प्राप्त होता है, जो कभी पूर्णत. परम्परासम्मत नही है। स्वतंत्र अंकनो मे श्वेताम्बर एव दिगम्बर स्थलो पर वाहन एव विशिष्ट आयुधो (पाश, अंकुश एव पद्म) के सन्दर्भ मे परम्परा का अपेक्षाकृत अधिक पालन किया गया है। तीन, पाँच या सात सर्पफणो से सुशोभित यक्षी का वाहन सामान्यतः कुक्कुट-सर्प (या कुक्कुट) रहा है। दिगम्बर स्थलो पर यक्षी की दो भुजाओं में पद्म का प्रदर्शन विशेष लोकप्रिय रहा रहा है। कुछ स्थलो की बहुभुजी मूर्तियो मे वाहन रूप मे कुक्कुट-सर्प के साथ ही पद्म एवं कूर्म का चित्रण भी प्राप्त होता है। यक्षी की भुजाओं मे पद्म के साथ ही सर्प[३५] का प्रदर्शन भी प्राप्त होता है। बहुभुजी मूर्तियों मे पाश एव अंकुश केवल देवगढ मे ही चित्रित है। शाहडोल की द्वादशभुजी मूर्ति मे भी पद्म, एव सर्प के साथ अंकुश प्रदर्शित है।

२९. अन्निगैरी, ए० एम० "ए० गाइड टू द कन्नड रिसर्च इन्स्टीच्यूटट म्यूजियम, धारवाड़", १९५८, पृ. १९।

३०. तदेव, पृ० २९।

३१. अन्निगेरी, "गाइड कन्नड़ रिसर्च म्यूजियम, पृ० १९।

३२ माकलिया, हंसमुख धीरजलाल, जैन यक्षज एण्ड यक्षिणीज "बुलेटिन डेकन कालेज रिसर्च इन्स्टीट्यूच", खं० १, १९४०, पृ० १६१।

३३. देसाई, पी. बी., "जैनिज्म साऊथ इण्डिया", पृ. ६५।

३४ माकलिया, "जैन यक्षाज एण्ड यक्षिणीज" पृ० १५८-१५९।

३५ भलरपट्टन एव बारभुजी गुफा के दो उदाहरणो मे सर्प अनुपस्थित है।

मान्धातृ नगर मडेश्वर प्रशस्ति का मंत्री वस्तुपाल से कोई सम्बन्ध नहीं !

□ श्री अगरचन्द नाहटा, बीकानेर

कभी-कभी विशिष्ट व्यक्ति की भी कुछ ऐसी धारणा बन जाती है कि विरोधी बातों की ओर लक्ष्य न देकर या अवहेलना करके अपनी धारणा को पुष्ट करने के लिए तर्क उपस्थित करता है। उसका मन अपनी धारणा के इर्द-गिर्द ही घूमता रहता है इससे सहज ही कोई ऐसी गलती हो जाती है जिसकी ऐसे व्यक्ति से उम्मीद की नही जा सकती। इसी का एक उदाहरण प्रस्तुत लेख मे दिया जा रहा है।

आगम प्रभाकर स्वर्गीय मुनिश्री पुण्यविजय जी बहुत ही गम्भीर एवं ठोस विद्वान् तथा माध्यस्थ वृत्ति वाले उदार महापुरुष थे। उनके प्रति मेरे मन में बहुत श्रद्धा है। उनके दीक्षा पर्याय की षष्ठि पूर्ति का समारम्भ संवत् २०२४ मे बड़ौदा में मनाया गया। इस उपलक्ष्य मे ज्ञानाजलि नामक एक ग्रंथ संवत २०२४ के वसन्त पंचमी को सागर गच्छ जैन उपाश्रय बड़ौदा से प्रकाशित हुआ है। इस ग्रंथ में पूज्य पुण्य विजय जी के लेखो का संग्रह होने के साथ-साथ उनके अभिनन्दन में लिखे हुए विद्वानों के लेख प्रकाशित हुए हैं। उनके लिखित एव संपादित ग्रंथों की सूची इसमें दी गई है। ग्रंथ बहुत-ही महत्त्वपूर्ण है। डा॰ भोगीलाल सांडेसर, डा॰ उमाकान्त शाह, कान्तिलाल कौरा, रतिलाल देसाई इस ग्रंथ के सम्पादक हैं। गुजराती, हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजी चार भाषाओं में इसकी सामग्री संकलित है। पूज्य पुण्यविजय जी सम्पादन के काम में ही अधिक लगे रहे इसलिए निबन्ध या लेख बहुत कम ही लिखे। अतः उनके सम्पादित ग्रंथों की भूमिका प्रस्तावना आदि भी इस ग्रंथ मे संकलित कर ली गई है। अभिनन्दन ग्रंथ के स्वरूप और साइज के अनुसार इस ग्रथ का मूल्य १५ रुपया बहुत ही उचित एवं सस्ता है। पूज्य पुण्यविजय जी का उसके बाद बम्वई मे अचानक स्वर्गवास हो गया। अतः अभी-अभी आत्मानन्द जैन सभा भावनगर की मासिक पत्रिका का विशेषाक पूज्य पुण्यविजय जी के स्मृति में प्रकाशित हुआ है वह प्रस्तुत ज्ञानांजलि के पूर्ति रूप मे समझा जा सकता है।

उपर्युक्त ज्ञानांजलि के पृष्ठ २६७ से ३२४ में पुण्य विजय जी का एक महत्वपूर्ण निबन्ध प्रकाशित हुआ है जिसका शीर्षक है—'पुण्यश्लोक महामात्य वस्तुपाल ना अप्रसिद्ध शिलालेखो तथा प्रशस्तियो लेखो।' महामात्य वस्तुपाल और तेजपाल अपने साहित्य, कला व धर्म प्रेम के लिए बहुत ही प्रसिद्ध व्यक्ति हैं। राजनीति में भी उनकी कीर्ति अप्रमन रही है। आबू का दूसरा कलापूर्ण मंदिर इन्हीं का बनवाया हुआ है जो लुणीक बसही के नाम से प्रसिद्ध है। इन मंत्री और बन्धु युगल ने तीर्थाधिराज शत्रुंजय और गिरनार पर भी जैन मंदिर बनवाये थे। इनमें से शत्रुजय मन्दिर के दो विशाल और महत्वपूर्ण शिलालेख अब तक अज्ञात थे। अतः उन दोनों शिलालेखों के फोटो सहित पाठ इस लेख में देने के साथ साथ पूज्य पुण्यविजय जी को श्री लावण्यविजय जी जैन ज्ञान भण्डार राधनपुर से १५वीं शताब्दि के अन्त की लिखी हुई एक प्रति प्राप्त हुई जिसमें वस्तुपाल सम्बन्धी १० प्रशस्तियां लिखी हुई है। उन प्रशस्ति लेखों को भी इस लेख में प्रकाशित किया गया है और सब प्रशस्तियों का गुजराती में सारांश भी दे दिया गया है। वस्तुपाल सम्बन्धी इन प्रशस्तियों को प्रकाशित करने का श्रेय पूज्य पुण्यविजय जी को ही है।

इन प्रशस्तियो सम्बन्धी उक्त लेख को मैं कल वैसे

ही पढ़ रहा था तो उसमें अन्तिम प्रशस्ति के अन्त में लिखी हुई पंक्ति पढ़कर मुझे पंक्ति और इस प्रशस्ति सम्बन्धी पुण्यविजय जी का विवरण पढ़ कर मुझे अपने संग्रह—श्री अभय जैन ग्रन्थालय बीकानेर की इस प्रशस्ति वाली प्राचीन प्रति का स्मरण हो आया। हमारे संग्रह की प्रति नं० ५२३४ में खण्ड प्रशस्ति नामक दशावतार सम्बन्धी १०२ श्लोकों के काव्य लिखे जाने के बाद मान्धातृ नगर मडेश्वर प्रशस्ति काव्यानि के पांच श्लोक लिखे हुए है। ६ पत्रों की यह प्रति संवत् १४९१ ज्येष्ठ वदी १४ को लिखी हुई हैं। अर्थात् मुनि पुण्यविजय जी को वस्तुपाल की प्रशस्तियों वाली जो प्रति प्राप्त हुई उसके समकालीन ५४० वर्ष पुरानी यह प्रति है।

पूज्य पुण्यविजय जी को प्राप्त प्रति मे वस्तुपाल की ७ प्रशस्तिया तो ४ श्लोक से ५४ श्लोको तक की है। ८वीं प्रशस्ति पं० जगसिह रचित एक श्लोक की है और नवी प्रशस्ति ३ श्लोक की है। इसके बाद मान्धातृ नगर मडेश्वर प्रशस्ति के पांच श्लोक लिखे हुए है। अतः पूज्य पुण्यविजय जी की यह सहज धारणा हो गई जब पहले की ९ प्रशस्तियां वस्तुपाल सम्बन्धी है तो १०वी मान्धातृ नगर मडेश्वर प्रशस्ति भी वस्तुपाल सम्बन्धी ही होनी चाहिए। इस प्रशस्ति का परिचय देते हुए उन्होंने लिखा है कि इस प्रशस्ति मे उसके रचयिता का नाम नही दिया गया है। अन्त की पुष्पिका लेख से मालूम होता है कि मान्धातृ नगर के मडेश्वर नामक शिलालेख की यह प्रशस्ति है। इसके प्रथम दो पद्य शंकर की पूजा भक्ति के रूप मे है। इन श्लोकों में वस्तुपाल का नाम नही है। इसी तरह अन्तिम पाचवें पद्य में प्रशस्ति के मुख्य नायक के पत्नी का नाम शीला बतलाया गया है इसमे यह प्रशस्ति वस्तुपाल की है या नहीं, शंका उपस्थित होना स्वाभाविक ही है। संभव है कि शिलालेख पर से परम्परा से नकल करते हुए मूल प्रशस्ति का कुछ भाग लेखको के दोष से भुलाए जाने से लुप्त हो गया हो, पर जिस प्रति मे वस्तुपाल की ही प्रशस्तियों का सग्रह है उसी प्रति में उनके साथ ही लिखी हुई यह प्रशस्ति वस्तुपाल की ही होनी चाहिए, ऐसा माना जा सकता है। इसके उपरांत वस्तुपाल ने शिवालयों के पुनरुद्धार और इसी तरह शिव की पूजा-दर्शन करने के उल्लेख तो उनके समय की ही रचनाओं में मिलता है। इससे प्रस्तुत प्रशस्ति वस्तुपाल की नही है, ऐसा मानने का कोई कारण नही है। यदि यह प्रतिपादन सत्य हो तो वस्तुपाल की पत्नी सोखुना नाम को सुसंस्कृत करके कदाचित शिला के नाम से यहां निर्दिष्ट किया गया हो ऐसा अनुमान होता है।

पर वास्तव मे इस प्रशस्ति का वस्तुपाल से कोई सम्बन्ध नही है। शीलेति शब्द की जगह हमारी प्रति में शीतेति पाठ लिखा हुआ है। यह प्रशस्ति मान्धात नगर के मडेश्वर शिवालय की हीं है जो पांच श्लोकों मे ही पूर्ण है और जैसा मुनि श्री ने अनुमान किया है। इसके तीन श्लोक वस्तुपाल सम्बन्धी नही है न उनकी पत्नी का संस्कृत नामातर शीला ही इसमें किया गया है।

मान्धातृ नगर यह नाम भी मूल प्रसिद्ध नाम का सस्कृतिकरण है। मान्धाता नाम का जो पौराणिक राजा हुआ है उसके नाम से या उसकी स्मृति में जो नगर बसाया गया उसका नाम यहा मान्धातृ नगर समझना चाहिए। यह नगर कौन सा है इसपर विचार करना चाहिये।

———

वराङ्गचरित में राजनीति

□ डा० रमेशचन्द जैन, बिजनौर

राज्य—वराङ्गचरित में राज्य के लिए देश[1], जनपद[2], विषय[3] तथा राज्य[4] शब्दों का प्रयोग हुआ है। एक राज्य के अन्तर्गत अनेक राष्ट्र आते थे। राष्ट्र शब्द से अभिप्राय प्रान्त से था[5]। राज्य की परिधि बड़ी विशाल थी और उसके अन्तर्गत राजा के अतिरिक्त सेवक, मित्र, कोश, दण्ड, आमात्य जनता, दुर्ग[6], ग्राम[7], नगर[8], पत्तन[9] (सामुद्रिक नगर), आकर, (खनिकों की बस्तियां), मडम्ब, खेट[10], व्रज[11] (ग्वालो की वस्तियां), पथ, कानन (जगल), नदी, गिरि (पर्वत), झरने[12], समस्त वाहन तथा रत्न[13] सभी आ जाते थे। राज्य का सद्भाव कर्मभूमि मे ही बतलाया गया है। भोगभूमि राज्य वगैरह का सद्भाव नही था[14]। वराङ्गचरित मे राजतन्त्रात्मक शासन के दर्शन होते है। इस शासन प्रणाली मे यद्यपि राजा सर्वोपरि था किन्तु जनता की सर्वतोमुखी प्रगति के लिए वह सदैव सचेष्ट रहता था। उसके शासन मे अन्याय नही होता था[15]। राजा की यह भावना रहती थी कि उसके राज्य मे गोधनादि सम्पत्ति की वृद्धि तथा सुभिक्ष हो, जनता की मानसिक तथा शारीरिक स्थिति ऐसी हो कि वह सदा ही उत्सव भोग आदि मना सके, धर्म तथा आश्रमो का पालन करने वाले पुरुष मर्यादा का उल्लघन न करें। गुणीजनों की कीर्ति चिरकाल तक पृथ्वी पर विद्यमान रहे तथा समस्त दोषो का नाश हो। राजा स्वय शत्रुओ को जीतने मे समर्थ, जिनधर्म का अनुयायी तथा न्यायमार्ग के अनुसार प्रजा का पालन करने वाला हो[16]। इस प्रकार की भावना से युक्त राजा के राज्य की शोभा देखते ही बनती थी। छोटी छोटी ग्वालो की बस्तियाँ ग्रामों की समानता धारण करती थी और श्रेष्ठ ग्राम नगर के तुल्य हो जाते थे और नगर का तो कहना ही क्या वे अपनी सम्पन्नता के कारण इन्द्र की अलकापुरी का भी उपहास करते थे[17]। ऐसे नगर सब प्रकार के उपद्रवों से रहित होते थे। किसी अनुचित भय को वहाँ स्थान नही होता था। दोषो में फँसने की वहां आशङ्का नही होती थी। वहाँ पर सदा ही दान महोत्सव, मान सत्कार तथा विविध उत्सव चलते रहते

---

१. वराङ्गचरित १२।४४, २१।५६
२. वही २०।२७
३. वही २०।६२
४. वही २९।२३
५. वही ११।६७
६. वही २९।४०
७. वही ८।५०
८. वही
९. वही ११।६७
१०. वही १२।४४
११. वही २१।४७
१२. वही १६।११
१३. वही ११।६७
१४. वही ७।११
१५. वही २८।१६
१६. देशो भवत्वधिक गोधनाढय:
 सुभिक्षनित्योत्सव भोगयुक्त:।
 राजा जितारिर्जिनधर्मभक्तो
 न्यायेन पापात्सकलां धरित्रीम्॥
 पाखण्डिन: स्वाश्रमवासिनश्च कृता
 स्वसंस्थां न विलङ्घयन्तु।
 यशांसि तिष्ठन्तु चिरं पृथिव्या
 दोषा:प्रणाशं सकला सकला: प्रयान्तु॥
 जटासिह नन्दि: वराङ्ग च० २३।९८-९९
१७. व्रजास्तु ते ग्राम समानतां गता:
 पुरोपमाग्रामपरास्तदाभवन्।
 पुरं जहोसव च वज्रिण:
 पुरं रराजशक्यप्रतिमो महीपति:॥
 वराङ्ग च० २१।४७

थे। भोगों की प्रचुर सामग्री वहाँ विद्यमान रहती थी, सम्पत्ति की कोई सीमा नहीं होती थी। इस प्रकार वहाँ के निवासी अपने को कृतार्थ मानते थे।[१८] राज्यशासन करने वाले व्यक्ति को बहुत बड़े उत्तरदायित्व का पालन करना पड़ता था। अत: कभी-कभी राज्य विरक्ति का कारण भी हो जाता था। एक स्थान पर कहा गया है कि राज्य अनेक दु:खों का कारण है, इससे चित्त सदा आकुल रहता है, यह शोक का मूल है। वैरों का निवास है तथा हजारों क्लेशों का मूल है। अन्त में इसका फल तुमड़ी के समान तिक्त होता है। बड़े बड़े राज्यों की धुरा को धारण करने वालों की भी दुर्गति होती है[१९]।

राज्य विस्तार—यद्यपि अधिकांश प्रतापी राजाओं का उद्देश्य राज्य का विस्तार समुद्र पर्यन्त करने का रहता था[२०] तथापि इसे व्यवहार रूप देने के लिए पर्याप्त शक्ति और नीतिज्ञता आदि की आवश्यकता होती थी। अत: सामर्थ्य तथा कार्य के अनुसार राजाओं के भी मनु, चक्रवर्ती, वासुदेव (नारायण) प्रतिनारायण, नृप, सामन्त आदि अनेक भेद थे। वराङ्गचरित के २७वें पर्व में मनु, चक्रवर्ती, वासुदेव तथा प्रतिनारायणों के नामों का उल्लेख प्राप्त होता है। अन्यत्र अनेक राजाओं और सामन्तों की जानकारी प्राप्त होती है। एक राजा के आधीन अनेक सामन्त राजा रहते थे। शत्रु का आक्रमण होने पर इन सामन्त राजाओं की अनुकूलता, प्रतिकूलता का बड़ा प्रभाव पड़ता था। मथुरा के राजा इन्द्रसेन ने जब ललितपुराधीश देवसेन पर आक्रमण किया तो उसकी सेना में अंग, बंग, मगध, कलिङ्ग, सुह्य, पुण्ड्र, कुरु, अश्मक, अभीरक, अवन्ति, कोशल, मत्स्य, सौराष्ट्र, विन्ध्यपाल, महेन्द्र, सौवीर, सैन्धव, काश्मीर, कुन्त, चरक, असित, ओद्र, विदर्भ विदिशा पाञ्चाल आदि देशों के राजा लोग अपनी विशाल सेना के साथ सम्मिलित हुए थे[२१]। राजा वराङ्ग ने सागरवृद्धि, धनवृद्धि, वसुवित, अनन्तसेन, देवसेन, चित्रसेन, अजितसेन तथा प्रतिप्रधान को क्रमश: विदर्भ, कोशल, कलिङ्ग, पल्लवदेश, काशी, विदिशा, अमातिराष्ट्र (अवन्ति के राष्ट्र) तथा मालवदेश का राज्य दिया था[२२]।

राजा के गुण—वराङ्गचरित में धर्मसेन और वराङ्ग आदि राजाओं के गुणों का वर्णन किया गया है। इन गुणों को देखने पर ऐसा लगता है कि जटासिंहनन्दि उपर्युक्त राजाओं के बहाने श्रेष्ठ राजा के गुणों का ही वर्णन कर रहे है। इस दृष्टि से एक अच्छे राजा के निम्नलिखित गुण प्राप्त होते है—

राजा को आख्यायिका, गणित तथा काव्य के रस को जानने वाला, गुरुजनों की सेवा का व्यसनी, दृढ मैत्री रखने वाला, प्रमाद, अहकार, मोह तथा ईर्ष्या से रहित, सज्जनों और भली वस्तुओं का सग्रह करने वाला, स्थिर मित्रों वाला, मधुरभाषी, निर्लोभी निपुण और बन्धु-बान्धवों का हितैषी होना चाहिए[२३]। उसका आन्तरिक और बाह्य व्यक्तित्व इस प्रकार का हो कि वह सौन्दर्य द्वारा कामदेव को, न्याय निपुणता से शुक्राचार्य को, शारीरिक कान्ति से चन्द्रमा को, प्रसिद्ध यश के द्वारा इन्द्र को, दीप्ति के द्वारा सूर्य को, गम्भीरता तथा सहनशीलता से समुद्र को और दण्ड के द्वारा यमराज को भी तिरस्कृत कर दे[२४]। अपनी स्वाभाविक विनय से उत्पन्न उदार आचरणों तथा महान् गुणों के द्वारा वह उन लोगों के भी मन को मुग्ध कर ले, जिन्होंने उसके विरुद्ध वैर की दृढ गाठ बाध ली हो[२५]। वह कुल, शील,

---

१८. वराङ्ग च० २१।४५

१९. राज्यं हि राजन्बहुदु:खमूलं
चिन्ताकुलं व्याकृतिशोकमूलम्।
वैरास्पदं क्लेशसहस्रमूलं किंपाक पाक प्रतिम तदन्ते ॥
दुरन्तता राज्यधुरंधुराणां धर्मस्थितानां सुखभागिनो च।
विजानता साधुसमुत्थितस्य कथं रति: स्यान्मम
राज्यभोगे ॥ वराङ्ग च० २९।२३।२४

२०. वराङ्ग च० २०।७५, २१।४६

२१. वही १६।३२-३४

२२. वही २१।५४-५७

२३. वराङ्ग च० १।४८-४९

२४. रूपेणकाममथ नीतिबलेन शुक्रं
कान्त्याशशाङ्कममरेन्द्रमुदारकीर्त्या।
दीप्त्यादिवा करमगाधतया समुद्रं
दण्डेन दण्डधरमप्यतिशिष्य एव ॥
वराङ्ग च० १।५०

२५. वराङ्ग चरित १।५४

पराक्रम, ज्ञान, धर्म तथा नीति से बढ़चढ़ कर हो[२६]। राजा को चाहिए कि उसके अनुगामी सेवक उससे सन्तुष्ट रहें तथा प्रत्येक कार्य को तत्परता से करें। उसके मित्र समीप में हों और वह हर समय सम्बन्धियों के आश्रित न रहें[२७]। प्रबुद्ध और स्थिर होना राजा का बहुत बड़ा गुण है। जो व्यक्ति स्वयं जागता है वही दूसरों को जगा सकता है। जो स्वयं स्थिर है वह दूसरों की डगमग अवस्था का अन्त कर सकता है। जो स्वयं नही जागता है और जिसकी स्थिति अत्यन्त डावाँडोल है वह दूसरों को न तो प्रबुद्ध कर सकता है और न स्थिर कर सकता है[२८]। राजा राजसभा मे पहले जो घोषणा करता है उसके विपरीत आचरण करना अयुक्त तथा धर्म के अत्यन्त विरुद्ध है इस प्रकार के कार्य का सज्जनपुरुष परिहास करते हैं[२९]। राजा की कीर्ति सब जगह फैली होनी चाहिए कि वह न्यायनीति में पारङ्गत, दुष्टों को दण्ड देने वाला, प्रजाओं का हितैषी और दयावान् है[३०]। राजा धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थों का इस ढंग से सेवन करे कि उनमें से किसी एक का अन्य से विरोध न हो। इस व्यवस्थित क्रम को अपनाने वाला राजा अपनी विजय पताका फहरा देता है[३१]। राजा की दिनचर्या ऐसी होनी चाहिए कि वह प्रातः से सन्ध्या समय तक पुण्यमय उत्सवो मे व्यस्त रहे। अपने स्नेही बन्धु, बान्धव, मित्र तथा अर्थिजनों को भेंट आदि देता रहे[३२]। ऐसे राजा की प्रत्येक चेष्टा प्रजा की दृष्टि मे प्रामाणिक होती है[३३]। अतः वह उस पर अडिग विश्वास रखती है। राजा का विवेक आपत्तियों में पड़ जाने पर भी कम न हो, संकट के समय भी वह किसी प्रकार की असमर्थता का अनुभव न करे तथा उसे अपने कार्यो का इतना अधिक ध्यान हो कि कर्त्तव्य, अकर्त्तव्य, शत्रुपक्ष—आत्मपक्ष तथा मित्र और शत्रु के स्वभाव को जानने में उसे देर न लगे[३४]। जिस राजा का अभ्युदय बढ़ता है उसके पास अङ्गनायें, अच्छे मित्र तथा बान्धव, उत्तम रत्न, श्रेष्ठ हाथी, सुलक्षण अश्व, दृढ रथ आदि हर्ष तथा उल्लास के नूतन साधन अनायास ही आते रहते है[३५]। राजा का यह कर्त्तव्य है कि वह राज्य मे पढ़े हुए निराश्रित बच्चे, बुड्ढों तथा स्त्रियों, अत्यधिक काम लिए जाने के कारण स्वास्थ्य नष्ट हो जाने पर किसी भी कार्य के अयोग्य श्रमिकों, अनाथों, अन्धों दीनों तथा भयङ्कर रोगों में फँसे हुए लोगों की सामर्थ्य असामर्थ्य तथा उनकी शारीरिक-मानसिक, दुर्बलता आदि का पता लगाकर उनके भरणपोषण का प्रबन्ध करे[३६]। जिन लोगो का एकमात्र काम धर्मसाधन हो, उसे गुरु के समान मान कर पूजा करे तथा जिन लोगों ने पहिले किए हुए वैर को क्षमा याचना करके शान्त करा दिया हो उनका अपने पुत्रों के समान भरणपोषण करे किन्तु जो अविवेकी घमण्ड में चूर होकर बहुत बढ़चढ़ कर चले अथवा दूसरो को कुछ न समझें उन लोगों को अपने देश से निकाल दे[३७]। जो अधिकारी अथवा प्रजाजन स्वभाव से ही कोमल हों, नियमों का पालन करते हुए जीवन व्यतीत करें, अपने कर्त्तव्यों आदि को उपयुक्त समय के भीतर कर दें, उन लोगों को समझने तथा पुरस्कार आदि देने में वह अत्यन्त तीव्र हो[३८]। राजा को प्रजा का अत्यधिक प्यारा होना चाहिए। वह-सब परिस्थितियो में शान्त रहे और शत्रुओं का उन्मूलन करता

---

२६. वराङ्ग च० २।१०

२७. वही २।३०

२८. स्वयं प्रबुद्धः प्रतिबोधयेत्परान् ।
परान् प्रतिष्ठापयेत स्वयं स्थितः ।।
स्वयंबुद्धस्त्वनवस्थितः कथं ।
परानवस्थापनरोधनक्षमः ।। वराङ्ग च० १३।३४

२९. वराङ्ग च० १६।६

३०. न्यायविद्दुष्टनिग्राही धर्मराजः प्रजाहितः ।
दयावानिति सर्वत्र कीर्तिस्ते विश्रुता भुवि ।।
वराङ्ग च० १५-५०

३१. वही २४।१, २२।१८

३२. वही २८।१

३३. वही २८।६८ ३४. वही २२।४

३५. जटासिंहनन्दि : वराङ्ग चरित २१।७६

३६. स्त्रीबालवृद्धाश्रमदुर्गतानामनाथदीनान्धरुजान्वितानाम् ।
बलाबलं सारमसारतां च विज्ञाय धीमानथ संबभार ।।
वही २२।५

३७. वही २२।६ ३८. वही २२।८

हुआ अपनी ऋद्धियों को बढ़ाता रहे[३९]।

शासन—राजा का शासन इतना प्रचण्ड हो कि लोग उसके जनपद या राजधानी में चारो वर्ण और आश्रमो की मर्यादाओं को लाँघने का साहस न करे। सब धर्मों के अनुयायी अपने अपने शास्त्रों के अनुसार आचरण करें। बालक, वृद्ध, अज्ञ तथा विद्वान् सभी अपने कर्त्तव्यो का पालन करें[४०]। यदि कोई पुरुष मन से भी उसका बुरा करने का विचार लाए या विरुद्ध कार्य करे तो वह उसके राज्य में एक क्षण भी ठहरने का साहस न करे। वह इतना भयभीत हो जाय कि अपने को इधर उधर छिपाता फिरे ताकि भूख प्यास की वेदना से उसका पेट, गाल और आँखें धँस जाय तथा दुर्बलता और थकान से उसका पृष्ठदण्ड झुक जाय। राजा का शासन इतना अधिक प्रभावमय हो कि शत्रु उसकी आज्ञा उल्लंघन न करें। उसके सब कार्य अपने पराक्रम के बल पर सफल हो जाँय। समस्त वसुन्धरा की रक्षा भी करता हुआ वह इन्द्र के समान मालूम दे[४१]। जब कोई शत्रु उसके सामने सिर उठाये तब वह अपनी उत्साह शक्ति, पराक्रम, धैर्य और साहस से युक्त हो जाय किन्तु यही राजा जब सच्चे गुरुओं, मातृत्व के कारण आदरणीय स्त्रियों तथा सज्जन पुरुषों के सामने पहुचे तो उसका आचरण, सत्य, सरलता, शान्ति, दया तथा आत्मनिग्रहादि भावो से युक्त हो जाय[४२]। राजा विधिपूर्वक प्रजा का पालन करे। जो लोग किसी प्रकार के कुकर्म करें उनको वह दण्ड दे। निरुपाय व्यक्तियों, ज्ञान अथवा किसी भी प्रकार की शिक्षा प्राप्त न करने के कारण आजीविका उपार्जन में असमर्थ, दरिद्र तथा अशरण व्यक्तियों का वह राज्य की ओर से पालन करे। जो शील की मर्यादा को तोड़े वे राजा के हाथ बड़ा भारी दण्ड पायें[४३]।

उत्तराधिकार—सामान्यतया राज्य का उत्तराधिकारी राजा के ज्येष्ठ पुत्र को बनाया जाता था।[४५] किन्तु यदि ज्येष्ठ पुत्र की अपेक्षा कनिष्ठ पुत्र अधिक योग्य हुआ तो उसे राज्य सिंहासनाभिषिक्त किया जाता था। वरांगचरित के बारहवें सर्ग से ज्ञात होता है कि कुमार सुषेण यद्यपि वरांग से बड़े थे किन्तु महाराज धर्मसेन ने मंत्रियों की सलाह से वरांग को ही राजा बनाया; क्योंकि कुमार वरांग अधिक योग्य थे। ऐसे समय राजा को गृह कलह का भी सामना करना पड़ता था। राजा वरांग को विमाता की असूया का शिकार होना पड़ा। राजा धर्मसेन ने वरांग को इसीलिए युवराज बनाया; क्योंकि कुमार वरांग ने सब विद्याओ और व्यायामों को केवल पढ़ा ही नही था अपितु उनका आचरण करके प्रायोगिक अनुभव भी प्राप्त किया था। वह नीतिशास्त्र के समस्त अङ्गों को जानने वाला तथा समस्त ललितकलाओं और विधि विधानों में पारंगत था। वृद्धजनो की सेवा का उसे बड़ा चाव था। उसके मन मे संसार का हित करने की कामना थी। वह बुद्धिमान और पुरुषार्थी था, प्रजा के प्रति उदार था।[४७] प्रजा समझती थी कि कुमार वरांग विनम्र, कार्यकुशल, कृतज्ञ और विद्वान् है।[४८] महाराज धर्मसेन सब लोगो से कुमार के उदार गुणों की प्रशंसा सुनते थे तो उनका हृदय प्रसन्नता से आप्लावित हो उठता था ऐसे योग्य पुत्र के कारण वे अपने को कृतकृत्य मानते थे; क्योंकि प्रजाओं को सुखी बनाना उन्हे परमप्रिय था।[४९]

राज्याभिषेकके समय दी जाने वाली शिक्षा—राज्याभिषेक के समय पिता अथवा गुरुजन राजपुत्र को शिक्षा देते थे। स्वाभाविक ही है कि जो गुरुजन स्वयं गुणी और और विद्वान् होते है वे अपने पुत्र को उसके ही कल्याण के लिए अपनी बहुज्ञता के अनुकूल उत्तर देते हैं।[५०] इसी

३९. वही २२।२१
४०. जटासिंहनन्दि : वराङ्गचरित १।५१
४१. वही १।५२
४२. वही २१।७५
४३. वही २२।३
४४. वही १९।६९

४५. वराङ्ग च० १२।६
४६. वही २।१६
४७. वही २।४७
४८. वही ११।५५
४९. वही ११।५३
५०. वही २९।४२

परम्परा का निर्वाह वरांग चरित में मिलता है। राजा वराग कुमार सुगात्र का राज्याभिषेक करने से पहले शिक्षा देते है :—

हे सुगात्र ! जो अपने पूर्व पुरुष है, गुरुजन है, विद्वान् है, उदार विचारशील है, दयामय कार्यों मे लीन है तथा आर्यकुलों मे उत्पन्न हुए हैं ऐसे समस्त पुरुषों का विश्वास तथा आदर करना, प्रत्येक अवस्था मे मधुर वचन कहना। इनके सिवा जो माननीय है उनको सदा सम्मान देना।[५१] शत्रुओं पर नीतिपूर्वक विजय प्राप्त करना। दुष्ट तथा अशिष्ट लोगों को दण्ड देना। अपराध करने के पश्चात् जो तुम्हारी शरण में आ जाये उनकी उसी प्रकार रक्षा करना जिस प्रकार मनुष्य अपने सगे पुत्रों की करता है।[५२] जो लँगडे-लूले हैं, जिनकी आँखें फूट गई है, मूक है, बहिरे है, अनाथ स्त्रियाँ है, जिनके शरीर जीर्णशीर्ण हो गए हैं, सम्पत्ति जिनसे विमुख है, जो जीविकाहीन है, जिनके अभिभावक नहीं है, किसी कार्य को करते-करते जो श्रान्त हो गये है तथा जो सदा रोगी रहते है इनका बिना किसी भेद-भाव के भरणपोषण करना। जो पुरुष दूसरों के द्वारा तिरस्कृत हुए है अथवा अचानक विपत्ति मे पड गए है उनका भली भाँति पालन करना[५३]। धर्म-मार्ग का अनुसरण करते हुए सम्पत्ति कमाना, अर्थ की विराधना न करते हुए कामभोग करना। उतने ही धर्म को पालन करना जो तुम्हारे काम सेवन मे विरोध न पैदा करता हो। तीनो पुरुषार्थो का अनुपात के साथ सेवन करने का यह शाश्वत लौकिक नियम है[५४]। जब कभी दान दो तो इसी भावना देना कि त्याग करना तुम्हारा कर्त्तव्य है। ऐसा करने से गृहीता के प्रति तुम्हारे मन मे सम्मान की भावना जागृत रहेगी। जब जब तुम्हारे सेवक कोई अपराध करें तो उनके अपराधो की उपेक्षा कर अपने को उनका स्वामी मानकर क्षमा कर देना[५५]। जो अकारण ही वैर करते है, अत्यन्त दोषयुक्त है तथा प्रमादी हे, नैतिकता के पथ से भ्रष्ट हो जाते है। जिन पुरुषों का स्वभाव अत्यन्त चंचल होता है तथा जो व्यसनो मे उलझ जाते है ऐसे पुरुष को लक्ष्मी निश्चित रूप मे छोड़ देती है, ऐसा लोक मे कहा जाता है[५६]। इसके विपरीत जो पुरुषार्थी है, दीनता को पास तक नही फटकने देते है। सदा ही किसी न किसी कार्य में जुटे रहते है, शास्त्र ज्ञान मे पारङ्गत है, शान्ति और दया जिनका स्वभाव बन गया है तथा जो सत्य, शौच, दम तथा उत्साह से युक्त है ऐसे लोगो के पास सम्पत्तिया दौडी आती है[५७]।

यौवराज्याभिषेक—किसी शुभ, तिथि, करण और मुहूर्त मे जब कि ग्रह सौम्य अवस्था को प्राप्त कर उच्चस्थान मे स्थित होते थे उस समय राज्य प्राप्त करने वाले राजपुत्र को पूर्वदिशा की ओर मुख कर बैठा दिया जाता था। उस समय आनन्द के बाजे बजाये जाते थे। सबसे पहिले अठारह श्रेणियों के प्रधान पुरुष सुगन्धित जल से चरणो का अभिषेक करते थे। उस जल मे चंदन घुला हुआ होता था। तथा विविध प्रकार के मणि और रत्न भी छोड दिये जाते थे। इसके उपरान्त सामन्त राजा, श्रेष्ठ भूपति भोजप्रमुख (भुक्तियों=प्रान्तों के अधिपति) अमात्य, सावत्सर (ज्योतिषी, पुरोहित आदि)

---

५१. वृद्धान्गुरून्प्राज्ञतमानुदारान्
दयापरानार्यकलांश्च नित्यम्।
विश्रम्भपूर्वं मधुरैर्वचोभिर्मन्यस्व मान्यानथमानदानैः॥
वराङ्ग च० २९।३३

५२. वराङ्ग च० २९।३४

५३. पङ्ग्वन्धमूकान्वधिरान्स्त्रियश्च
क्षीणान्दरिद्रानगतीननाथान्।
श्रान्तान्सरोगांश्चविषण्ण
सम्यक्पराभिभूतान्परिपालयस्व॥ वराङ्ग च० २९।३५

५४. धर्माविरोधेन समर्जयार्थानर्थाविरोधेन भजस्व कामान्।
कामाविरोधेन कुरुष्व धर्म सनातनो लौकिक एप धर्मः॥
वराङ्ग च० २९।३६

५५ दानव्यमित्येव जनाय वित्त प्रदेहि सन्मानपुरस्सरेण।
भृत्यापराधानविगण्य वत्स क्षमस्व सर्वानहमीशतेति॥
वही २९।३७

५६ निवद्धवैरानतिदोपशीलान्प्रमादिनो नीतिवहिष्कृताश्च।
चलस्वभावान्व्यसनान्तराश्च
जहातिलक्ष्मीरिति लोकवाद.॥ वही २९।३८

५७ अदीनसत्त्वान् क्रियया समेतान्
श्रुतान्वितान्क्षान्तिदयोपपन्नान्।
सत्येन शौचेन दमेन युक्तानुत्साहिन श्रीस्वयमभ्युपैति॥
वही २९।३९

हिन्दी-जैन पदों में आत्म सम्बोधन

प्रकाश चन्द्र जैन

हिन्दी साहित्य के विविध रूपो मे गेय पदो का अपना एक मौलिक व्यक्तित्व है। गीति काव्य का सीधा सम्बन्ध हृदय से है। हृदय की अनुभूति विशेष साधन पाकर संगीत के आवरण में गेय पदो मे प्रस्फुटित हो उठती है। गेय पद लिखते समय हृदय इतना रस-विभोर हो जाता है कि उसमें तर्क, बुद्धि आदि का कवि को स्मरण ही नही रहता।

हिन्दी गेय पदो के रचनाकारो मे जैन कवियो को नहीं भुलाया जा सकता है। अभी तक प्राप्त जैन कवियों की पद रचनाएं हमारे जैन समाज के लिए गौरवपूर्ण निधिया है। जैन पदो मे प्राय: विषय सामग्री प्रभुस्तवन, आध्यात्मिकता एव कुछ-कुछ शृङ्गार, विरह एवं भक्ति भावना से समन्वत है। इन सभी विषयो मे सम्बन्धित पदो मे सगीतात्मिकता, गेयता, रागात्मकता एव माधुर्य तो पाया ही जाता है साथ-ही-साथ भाषा का परिष्कार, भावो की स्पष्टता तथा रस की गहनता भी प्रचुरता से निहित हैं।

जैन कवियो द्वारा रचित गेय पद हमे प्रचुर मात्रा मे मिलते है। सूर, मीरा, तुलसी, कबीर आदि कवियो की तरह जैन कवियो के इन पदो का जैन सम्प्रदाय मे विशेष महत्व रहा है। भक्तगण रस-विभोर होकर बड़े आह्लाद के साथ इन पदो का गायन करते हुए आस-पास के वातावरण को रसार्द्र कर देते है।

विषय की दृष्टि से उक्त पदो का कई भागो में वर्गीकरण किया जा सकता है। परन्तु अधिकाश पद भक्ति तथा अध्यात्म भावना पर ही आधारित है। ससार की असारता, मन की मूढता, जीव की विषय-लोलुपता की निन्दा, भगवान की महिमा का वर्णन तथा आत्म-निन्दा आदि विषयो को लेकर प्रचुरता से पदों की रचना की गई है।

यहा मै जैन कवियों द्वारा रचित ऐसे पदो का वर्णन करूंगा जिनमे उन्होंने अपनी आत्मा को समझाया है। प्राय: यह पद-रचयिताओं की परम्परा रही है कि वे भक्ति विभोर होकर ईश्वर मे इतने तन्मय हो जाते है कि उन्हें अपना व्यक्तित्व बहुत तुच्छ, निन्दनीय, विकार-ग्रस्त एवं विषय-लोलुप दिखाई देने लगता है। वे बार-बार अपनी दयनीय दशा को देखकर मन को या आत्मा को सम्बोधित कर कर्तव्य का ज्ञान कराने लगते हैं। यह बात विशेषरूप से स्मरणीय है कि जैन कवि कभी भी कोरे उपदेशक के रूप मे समाज के सामने नहीं आया है। वह अपनी आत्मा का उद्धार करने के बाद ही दूसरों को अपना अनुकरण

तथा मन्त्री आनन्द के साथ रत्नों के कलश उठाकर कुमार का मस्तकाभिषेक करते थे। उनके रत्नकुम्भों मे भी पवित्र तीर्थोदक भरा रहता था अन्त में स्वयं राजा युवराज पद का द्योतक पट्ट (मुकुट तथा दुपट्टा) बांधता था। महाराज की आज्ञा से आठ चामरधारिणी युवतियाँ चँवर ढोना आरम्भ करती थी। अन्त मे राजा बच्चे से लेकर वृद्धपर्यन्त अपने कुटुम्बी और परिचारकों को, राज्य के सब नगरों, राष्ट्रों (राज्यों), पत्तनों (सामुद्रिक नगरों), समस्त वाहनों, (रथादि) यानो तथा रत्नों को अपने पुत्र को सौप देता था। उस समय वह उपस्थित नागरिको तथा कर्मचारियों से यह भी कहता था कि आप लोग जिस प्रकार मेरे प्रति स्नेह मे बँधे हुए चित्त वाले थे तथा मेरी आज्ञा का पालन करते थे उसी प्रकार मेरे पुत्र पर प्रेम करें और उसके शासन को मानें[५८]।

राज्याभिषेक करने वालों की श्रेणी मे भोज प्रमुखो (भोजमुख्या) का नाम आया है[५९]। भोजो की शासन-प्रणाली भौज्य कहलाती थी, जिसका ब्राह्मण ग्रन्थो मे उल्लेख हुआ है। इस शासन प्रणाली में गणराज्य की स्थापना मान्य थी। ऐतरेय के अनुसार यह पद्धति सात्वत राजाओ (यादवों) में प्रचलित थी। महाभारत के अनुसार यादवों का अन्धकवृष्णि नामक संघ था। अतः भौज्य शासन गणराज्य का एक विशिष्ट प्रकार का शासन था[६०]। ●

५८. वराङ्ग च० ११।६१-६८ ५९. वही ११।६४
६०. बलदेव उपाध्याय वैदिक साहित्य और संस्कृति पृ. ४७२

कराने की बात सोचता है, यही कारण है कि इन पदों को पढ़कर सीधा हृदय पर प्रभाव पडता है। जो बात सच्चे मन से कही जाती है उसका प्रभाव दूसरों के मन पर पड़ना अवश्यम्भावी है।

जैन कवियों मे प० रूपचन्द, बनारसीदास, जगतराम द्यानतराम, भूधरदास, बुधजन एव दौलतराम आदि ऐसे कवि है जिन्होने जो कुछ भी लिखा उसका सम्बन्ध किसी न किसी प्रकार से आत्मा से जुड़ता चला गया है। आत्मा के ऊपर लिखे गए इन कवियों के पद पाठको तथा श्रोताओ को आध्यात्मिकता का सन्देश देते हुए प्रतीत होते हैं।

कविवर भट्टारक कुमुदचन्द्र ने राजस्थानी हिन्दी मे अपने अधिकाश पद लिखे है। इन्होंने यद्यपि आध्यात्मिक पद कम ही लिखे है फिर भी इनके जो भी पद आत्मा या चेतना को सम्बोधित कर लिखे गये है, वे बेजोड़ है। चेतन को समझाते हुए कविवर कहते है कि:—

चेतन चेतत किउं बावरे।
विषय विषे लपटाय रह्यो कहा,
दिन-दिन छीजत जात आपरे।
तन, धन, यौवन चपल सुपन को,
योग मिल्यो जेस्यो नदी नाउ रे।
काहे रे मूढ़ न समझत अजहूं,
कुमुद चन्द्र प्रभु पद यश गाउं रे।।२।।

निश्चित रूप से कवि कुमुदचन्द्र आत्मा की गूढ़ता से विकल हैं तथा तन, धन, यौवन को चंचल कर इनका गर्व न करने का सन्देश देना चाहते है।

पण्डित रूपचन्द सत्रहवीं शताब्दी मे हुए थे। उनकी अधिकांश रचनाएँ आध्यात्मिक रस मे डूबी हुई है। आत्मा को सम्बोधित करते हुए कवि ने बहुत से पद लिखे है। उनके एक पद का नमूना देखिए:—

मानस जनमु वृथा तं खोयो।
करम-करम करि आइ मिल्यो हो,
निद्य करम करि करि सु विगोयो।
भाग विसेस सुधा रस पायो,
सो तं चरननि कौ मल धोयो।
चितामनि फेक्यो बाइस को,
कुंजर भरि-भरि ईन्धन ढोयो।
धन की तृषा प्रीति बनिता की,
भूलि रह्यो वृष तं मुख गोयो।
सुख कं हेत विषय-रस सेये,
घिरत के कारन सलिल विलोयो।
माति रह्यो प्रसाद मद मदिरा,
अरु कन्दर्प सर्प विष भोयो।
रूप चन्द चेत्यो न चितायो,
मोह नींद निश्चल ह्वै सोयो।

उक्त पद में कविवर रूपचन्द भी आत्मा को सासारिक विषय भोगो से मन को हटाने का सन्देश देते हैं— "माति रह्यो प्रसाद मद-मदिरा" मे अनुप्रास का विन्यास दृष्टव्य है। इनके प्रत्येक पद इसी प्रकार मन को सम्बोधित करके कर्त्तव्य का ज्ञान कराया गया है।

बनारसीदास प्रतिभा सम्पन्न एवं दृढ़ निश्चय वाले कवि थे। इनकी रचनाओ की साहित्यिकता अनुपम है। प्रत्येक पद से अध्यात्म रस टपक कर श्रोता की आंखो मे अश्रु कण बन जाता है।

कविवर अपने मन की दुविधा को प्रगट करते हुए कहते हैं—

दु विधा कब जैहैं या मन की।
कब निज नाथ निरंजन सुमिरौ, तज सेवा जन-जन की।
कब रुचि सौं पीवं दृग चातक, बूंद अखय पद धन की।
कब सुभ ध्यान धरौं समता गहि, करूं न ममता तन की।
कब धट अन्तर रहै निरन्तर, दिढ़ता सुगुर वचन की।
कब सुख लहौं भेद परमारथ, मिटै धारना धन की।
कब घर छांड़ि होहुं एकाकी, लिए लालसा बन की।
ऐसी दसा होय कब मेरी, हौं बलि बलि वा इनकी।

वास्तव मे कवि को निर्दोष, निर्विकार बनने की बड़ी उत्सुकता है। वह ऐसे संयोग की प्रतीक्षा मे है, जब उसकी साधना पूरी होगी।

जगजीवन कवि आगरा निवासी थे। वे कवि बनारसी दास के बड़े प्रशसक थे। इनके छोटे-छोटे पदों में भावगम्भीर्य है। इन्हे भी संसार की असारता पर रोष है—

जगत सब दीसत धन की छाया।
पुत्र, कलत्र, मित्र, तन, संपति,
उदय पुद्गल जुरि आया,

भव परनति बरषागम सोहै,
आश्रव पवन बहाया ।
इन्द्रिय विषय लहरि बड़ता है,
देखत जाय बिलाया ।
राग दोष बगु पंकति दीरघ,
मोह गहत घर राया ।
सुमति बिरहनी दुःखदायक है,
कुमति संजोग निभाया ।
निज संपति रत्नत्रय गहि करि,
मुनि जन नर मन भाया ।
पहन अनन्त चतुष्टय मन्दिर,
जग-जीवन सुख पाया ।
हो मन मेरा तू धरम नै जाणंदा ।
जा सेथे ते शिव सुख पावै,
सो तुम नांहि बिछाव दा ।

कविवर जगजीवन मन को अज्ञानी तथा विवेकरहित बता कर उसे अपने को पहचानने का सन्देश देना चाहते हैं।

जगतराम भी हिन्दी के अच्छे कवि थे। इन्होंने स्तुति परक तथा आत्मबोधक पदों की रचना की है। इनका एक आत्म-बोधक पद देखिए:—

नहिं गोरो नहिं कारो चेतन, अपनो रूप निहारो।
दर्शन ज्ञान भई चिन्मूरत, सकल करम ते न्यारो रे।
जाके बिन पहिचान जगत में सह्यो महा दुख भारी रे॥

उक्त पंक्तियों में कवि ने आत्मा को शुद्ध चैतन्यमय तथा विकार रहित बताया है। वह न तो काली है न गोरी है।

कविवर द्यानतराय हिन्दी के उन मूर्धन्य कवियों मे से एक हैं जिन्होने भजन, पूजन कविता तथा गोत्र पदो की रचना की है। इनका भाषा और भावों पर पूरा अधिकार था। इनके पदों में अध्यात्म रस पूर्णरूप से भरा हुआ है। विषय भोगों में लिप्त प्राणियों को निलिप्त होने का संदेश देते हुए कवि कहते है कि—

तू तो समझ, समझ रे भाई।
निश दिन विषय भोग लिपटाता धरम वचन ना सुहाई।
करमन का लै आसन मांड्यो बाहिर लोक रिझाई।
कहा भयो वक ध्यान धरे तें, जो मन बिरन रहाई।
मास-मास उपवास किए तें, काया बहुत सुखाई।
क्रोध मान छल लोभ न जीत्यौ, कारज कौन सराई।
मन वच काय जोग थिर करके, त्यागो विषय कषाई।
द्यानत स्वर्ग मोक्ष सुखदाई, सतगुरु सीख बताई।

कवि द्यानत राय ने कहा—यथो वक ध्यान धरे ते, मास-मास उपवास किए तैं, आदि वाक्य अवश्य ही केवल बाह्याडम्बरो को प्रधानता देने वालों को पीड़ित करेंगे। परन्तु मन के शुद्ध किए बिना उनकी निःसारता निःसन्देह है।

कवि भूधरदास भी हिन्दी के जैन कवियो मे अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते है। इनकी भाषा, भाव, शैली तथा आध्यात्मिकता बहुत बेजोड़ है।

गरब नहिं कीजे रे, ऐ नर निपट गंवार।
झूंठी काया झूंठी माया, छाया क्यों लखि लीजे रे।
कै छिन सांझ सुहागरु जोवन,
कै दिन जग में जीजे रे।
बेगा चेत विलम्ब तजो नर,
बंध बढ़ै नित कीजे रे।
भूधर पल पल हो है भारी,
ज्यों ज्यों कमरी भीजे रे॥

उक्त पद्य मे कविवर भूधरदास ने मानव के मन को चेताया है कि तू आत्म कल्याण में जितनी देर लगायेगा उतनी ही तेरी पाप रूपी कबली भीग कर भारी होती जाएगी।

बख्तराम साह राजस्थान के निवासी थे। इनके पदो मे भी आत्म सम्बोधन की प्रधानता है:—

चेतन तैं सब सुधि विसरानी भइया।
झूंठो जग सांचो करि मान्यो,
सुनी नहीं सतगुरु की बानी भइया।
भ्रमत फिरत चहुं गति में अब तो,
भूख त्रिसा सही नींद नसानी भइया।
ये पुद्गल जड़ जान सदा ही,
तेरो तो निज रूप सयानी भइया।
बखतराम सिव सुख तब पैहै,
ह्वै है तब जिन मत सरधानी भइया।

जब तक जिनवाणी में श्रद्धा नहीं होती तब तक हे चेतन, तेरी सद्गति की कोई आशा नहीं है।

कवि नवलराम १८वी शताब्दी मे हुए थे। इनके पदो मे भक्ति की प्रधानता है। परन्तु आध्यात्मिकता की झलक सर्वत्र पाई जाती है—

अरे मन सुमरि देव रघुराय ॥
जनम-जनम संचित ते पातिक,
तत्छिन जाय विलाय।
त्यागि विषय अरु लग शुभ कारज,
जिन वाणी मन लाय।
ऐ संसार क्षार सागर में,
और न कोई सहाय।

जयपुर निवासी कविवर बुधजन जैन हिन्दी साहित्य के गौरव रत्न है। आप के पदो में आत्मा परमात्मा एवं संसार की असारता का बड़े प्रभावक ढंग से वर्णन हुआ है। मानव जीवन दुर्लभता को समझाते हुए कवि मन से कहता है कि—

अरे जिया तैं निज कारिज क्यों न कियो ॥
या भव को सुरपति अति तरसैं।
सो तो सहज पाय लीयो।
मिथ्या जहर कह्यो गुण तजिबों।
तैं अपनाय पीयो।
दया दान पूजा संजम में।
कबहुं चित न दियो।
बुधजन औसर कठिन मिल्या है।
निश्चय धारि हियो।
अब निजमत सरधा दिढ़ करो।
तब तेरो सफल जीयो।

दौलत राम प्रसिद्ध कवि हो गए है। आपके पदो की भाषा खड़ी हिन्दी है। इनका भाषा पर पूरा अधिकार था। इनके आध्यात्मिक पद संसार की क्षणिकता, जीवन की दुर्लभता तथा जिनमत की महानता से भरे हुए है। एक पद देखिए—

जिया जग धोके की टाट।
झूठा उद्यम लोक करत है, जिसमें निश दिन घाटी।
जान बूझ कर अंध बने हो, आंखिन बांधी पाटी।
निकल जाएंगे प्राण छिनक में, पड़ी रहेगी माटी।
दौलत राम समझ मन अपने, दिल की खोल कपाटी।

दौलत राम जी का ऊपर लिखा गया पद संसार की नश्वरता का डंका बजा रहा है। इनका प्रत्येक पद इसी प्रकार प्रभावक तथा भावों को स्पष्ट करने वाला है।

छत्रपति १९वीं शताब्दी के कवि है। इनके पदों मे माधुर्य तथा स्पष्टता है।

आयु सब यों ही बीती जाय।
बरस अयन रितु मास महूरत,
पल छिन समय सुभाय।
बन न सकत जप तप व्रत संजम,
पूजन भजन उपाय।
मिथ्या विषय कषाय काज में,
फंसो न निकसो जाए।
धनि वे साधु लगै परमारथ,
साधन में उमगाय।
छत्त सफल जीवन तिनही का,
हम सब शिथिल न पाय ॥

पण्डित महाजन सीकर के रहने वाले थे। इन्होंने चेतन को समझाते हुए कहा है कि हे चेतन तू तो अपना भव संसार मे भ्रमण करते करते यो ही खोए जा रहा है—

जीव तू भ्रमत भ्रमत भव खोयो।
जब चेत भयो तब रोयो।
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण तप,
यह धन धूरि विगोयो।
विषय भोग गत रसको रसियो,
छिन-छिन में अति सोयो।
क्रोध, मान छल लोभ भयो,
तब इनही में उरझोयो।
मोह राम के किंकर ये सब,
इनके बस ह्वै लुटोयो।
मोह निवार संवार सो आयो,
आतम हित स्वर जोयो।
बुध महाचन्द्र चन्द्र सम होकर,
उज्जवल चित्र रखोयो।

पण्डित फागचन्द्र को संस्कृत एवं हिन्दी पर एक सा अधिकार था। आपके पदों में अध्यात्म चिंतन बहुत उच्चकोटि का पाया जाता है। इनका एक पद देखिये.—

अरे हो अज्ञानी तूने कठिन मनुष भव पायो।
लोचन रहित मनुष के कर में,
ज्यों बटेर खग आयो।

सो तू खोवत विषयन मांही,
धरम नहीं चित लायो ।
भागचन्द्र उपदेश मान अब,
जो श्री गुरु फरमायो ।

भागचन्द्र द्वारा रचित सभी आध्यात्मिक पदों मे आत्मा को समझाया गया है कि वह कुपथ को त्याग कर सुपथ पर अग्रसर हो ।

अन्य भी हिन्दी के कवियो के ऐसे पद मिलते है, जिनमे आत्मा, चेतन या मन को अपना उद्धार करने के लिए उपदेश दिया गया है ।

कविगण जब ससार की असारता का अनुभव कर लेते है तब अनायास ही उनके हृदय की अनुभूति इस प्रकार के पदों द्वारा फूट पड़ती है ।

इस प्रकार के पद हमारी साहित्यिक निधि है । इनमे निहित को तत्वों खोजने का कार्य प्रतिदिन बढते जाना चाहिए ।

●

भारतीय जैन कला को कलचुरि नरेशों का योगदान

□ श्री शिवकुमार नामदेव

राजनीतिक दृष्टिकोण से प्राचीन भारतीय इतिहास मे कलचुरि नरेशो का महत्वपूर्ण स्थान है। छठवी शती से लेकर १८वी शती तक इन नरेशों ने भारत के उत्तर अथवा दक्षिण किसी न किसी भूभाग पर शासन किया। प्राच्य भारतीय इतिहास के अतीत को गौरवयुक्त बनाने मे इन नरेशो ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इस काल के विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न कलाकारों द्वारा निर्मित हिन्दू, जैन एव बौद्ध देवी देवताओं तथ सुर सुन्दरियों की मूर्तियाँ दर्शनीय है। यद्यपि इस काल के अनेक गगन-चुम्बी देवालयो का केवल नाम शेष रह गया है परन्तु अवशिष्ट देवालयों एवं विद्यमान शिल्पकृतियाँ उन कलाकारो एव उनके संरक्षक नरेशों की स्मृतियों को अक्षुण्ण रखे हुए है।

यद्यपि अधिकांश कलचुरि नरेश शैव मतानुयायी थे किन्तु उन्होंने एक आदर्श हिन्दू नृपति की भांति धार्मिक स्वतंत्रता की नीति का अनुगमन किया, परिणामत उनके काल मे हिन्दू, जैन एवं बौद्ध मत स्वतंत्र रूप से पल्लवित हुए। यही कारण है कि जहाँ कलचुरि नरेशो द्वारा सरक्षित धर्म की मूर्तियाँ एवं देवालय प्राप्त होते है वही जैन धर्म की प्रतिमाओ का बाहुल्य भी है।

कलचुरि नरेशों के काल में जैन धर्म का अत्यधिक प्रसार था। पुरातात्विक अध्ययन से इस विषय पर पर्याप्त प्रकाश पडता है। जबलपुर जिले के बहुरीबद नामक स्थल से एक विशाल जैन तीर्थंकर शांतिनाथ की अभिलेखयुक्त प्रतिमा प्राप्त हुई है। आचार्य मिराशी जी का अनुमान है सोहागपुर (शहडोल, म० प्र०) मे जैन देवालय थे। कल्याण मे कलचुरि नरेशो का शासन यद्यपि अल्पकालीन था किन्तु वहा जैन धर्म का अच्छा प्रसार था। ई० १२०० मे कलचुरि राजमंत्री रेचम्पय ने श्रवण बेलगोला मे शातिनाथ भगवान की प्रतिमा प्रतिष्ठित करायी थी। 'बासवपुराण एवं विज्जल चरित' में जैन एवं शैव मतानुयायियो के मध्य हुए संघर्ष का वर्णन है। सोमनाथ के देवालय पर, जैनो पर अत्याचार के चित्र आज भी उत्कीर्ण है। फ्लीट के मतानुसार विज्जल के शासनकाल मे जैन धर्म प्रमुख था। स्वयं विज्जल नरेश ने अनेकों जैन मन्दिर बनवाये थे। संवत् १०८४ मे कीर्तिसेट्टि ने पोन्नवति वेलहुगे और वेण्णूर में श्री पार्श्वनाथ के मन्दिर बनवाये थे।

कलचुरि कला मे जैन धर्म से सम्बन्धित प्रतिमायें बहुतायत से प्राप्त हुई है, जिनमे तीर्थंकर, शासन देवियां एवं श्रुत देविया है। सभी मूर्तिया शास्त्रीय नियमो पर आधारित है। यद्यपि कुछ ग्रन्थो मे उनके लांक्षण एवं यक्ष यक्षिणियो आदि के सम्बन्ध में एक मत नही है। तीर्थंकर की प्रतिमायें स्थानक एव आसन मुद्राओ मे प्राप्त हुई है। स्थानक मूर्तियो मे केवल शातिनाथ एव महावीर की मूर्तिया ही प्राप्त हुई है। आसन मूर्तियों मे ऋषभनाथ की मूर्तिया सर्वाधिक है। इसके अतिरिक्त अंबिका एवं सरस्वती की प्रतिमायें भी शास्त्रीय नियमो पर निर्मित की गई है।

कलचुरिकालीन जैन प्रतिमायें बौद्धों की अपेक्षा बहुतायत से प्राप्त हुई है। ये प्रतिमाये जबलपुर जिले मे कारीतलाई, कुम्भी, कुलान, बहुरीबद, मझौली एवं

जबलपुर, बिलासपुर जिले मे अड़भार, धनपुर, मल्लार, पेन्ड्रा, रतनपुर, रीवां जिले मे गुर्गी एवं रीवां, शहडोल जिले में सिंहपुर एवं सोहागपुर रायपुर के महंत घासीराम सग्रहालय, रामवन (सतना) के तुलसी संग्रहालय एवं छतरपुर के धुबेला संग्रहालय मे कलचुरिकालीन प्रतिमायें संग्रहीत है। इसके अतिरिक्त मडला जिले में शहपुरा एवं बिभौली से जैन धर्म की मूर्तियां प्राप्त हुई है। प्राप्त प्रतिमाओं मे सर्वाधिक प्रतिमायें प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ की हैं। कारीतलाई से तीर्थंकरों की द्विमूर्तिकायें भी प्राप्त हुई है। प्राप्त मूर्तियों को हम निम्न वर्गो में विभाजित कर सकते हैं—

अ—तीर्थंकर मूर्तियां।
ब—शासन देवियां।
स—श्रुत देवियां।
द—अन्य चित्रण।

अ—तीर्थंकर प्रतिमायें

कलचुरि कला मे प्राप्त तीर्थंकर प्रतिमाओं को तीन वर्ग मे विभाजित किया जा सकता है—आसन, स्थानक एवं संयुक्त तीर्थंकर मूर्तिया।

१. आसन मूर्तियां—आसन प्रतिमाओं मे सबसे अधिक मूर्तिया आदिनाथ की है। आदिनाथ की प्रतिमायें कारी तलाई, तेवर (जबलपुर) मल्लार, रतनपुर आदि स्थलों से प्राप्त हुई हैं।

भगवान ऋषभनाथ की कारीतलाई से प्राप्त एक प्रतिमा, जो सम्प्रति रायपुर सग्रहालय की निधि है, मे आदिनाथ एक उच्च चौकी पर विराजमान हैं। ४' ६" ऊँची इस प्रतिमा मे तीर्थंकर को पद्मासन मे ध्यानस्थ बैठे हुए दिखाया गया है। दुर्भाग्य से उनका मस्तक, दक्षिण हस्त एवं वाम घुटना खंडित है। हृदय पर श्रीवत्स का प्रतीक है और मस्तक के पीछे प्रभामण्डल है, जिसके ऊपर त्रिछत्र है। त्रिछत्र के दोनो पार्श्व पर एक-एक महावत युक्त गज खड़ा है। छत्र के ऊपर दुदभिक और गजों के नीचे युगल विद्याधर है, जो नभ मार्ग से पुष्पवृष्टि कर रहा है। विद्याधरों के नीचे एक ओर सौधर्मेन्द्र और दूसरी ओर ईशानेन्द्र अपने हाथ मे चंवर लिये हुए आदिनाथ के परिचारक रूप मे खड़े है।

प्रतिमा की अलंकृत चौकी की पट्टी भूल पर तीर्थंकर का लांछन वृषभ चित्रित है। वृषभ के नीचे चौकी के ठीक मध्य मे धर्मचक्र बना है, जिसके दोनों ओर एक-एक सिंह है। सिंहासन के दक्षिण पार्श्व पर ऋषभनाथ को शासनदेव गोमुख एवं वाम पार्श्व पर उनकी शासनदेवी चक्रेश्वरी ललितासन मे बैठी हुई चित्रित की गई है। प्रतिमा शास्त्रीय अध्ययन के दृष्टिकोण से हम इसका काल १०वी ११वी शती के मध्य मान सकते हैं।

तेवर से प्राप्त ७' ४" आकार की भगवान ऋषभनाथ की एक प्रतिमा जबलपुर के हनुमान ताल जैन मन्दिर में संरक्षित है। कला की दृष्टि से इस प्रतिमा मे सजीवता है। प्रतिमा के अग-प्रत्यंगसुन्दर एव सुडौल हैं। मस्तक पर चित्रित घुघराले केश आकर्षक है। उभय स्कध पर केश गुच्छ लटक रहे है।

सपरिकर पद्मासनस्थ इस प्रतिमा की प्रभावलि की रेखायें अति सूक्ष्म है। प्रभावलि के मध्य में छत्र दण्ड है जो ऊपर की ओर जाकर क्रमशः तीन ओर वर्तुलपत्र लिए हुए है। छत्र दण्ड के ऊपर विशाल छत्र लगभग २' ८" के लगभग है। सबसे ऊपर दो हस्ति शुण्ड से शुण्ड सटाये हुये इस प्रकार चित्रित किये गये हैं मानों वे छत्र को थामे हुये हो। हस्तियों के शूर्पकर्ण के उठे हुये भाग उनके गाल की खिंची हुई रेखायें एव आंखों के ऊपर का खिचाव कला की उच्चता के द्योतक है। परिकर पर हस्ति, पद्म पर आधृत है। छत्र के नीचे दोनो पार्श्व पर यक्ष एवं चार अप्सरायें नभ मे उड़ती हुई चित्रित है। गधर्व पुष्प की मालायें लिये हुए हैं। परिचारक के नीचे दोनों पार्श्व पर नारियों की खड़ी आकृतियां है। नारियों के अंग प्रत्यंग पर चित्रित आभूषणों की भरमार है। कला की दृष्टि से यह प्रतिमा कलचुरि कला की सर्वोच्च जैन प्रतिमा है।

आदिनाथ के अतिरिक्त आसन प्रतिमाओं में सिंहपुर से १०वी शती में निर्मित द्वितीय तीर्थंकर अजितनाथ, रतनपुर से १०वी ११वीं शती के मध्य निर्मित आठवें जैन तीर्थंकर चन्द्रप्रभ, जबलपुर संग्रहालय में संरक्षित सोलहवें तीर्थंकर शांतिनाथ, धुबेला संग्रहालय में सरक्षित बाइसवें तीर्थंकर नेमिनाथ की प्रतिमायें अल्पमात्र में प्राप्त हुई है। आदिनाथ अतिरिक्त कलचुरिकालीन जैन तीर्थङ्करों की प्रतिमाओं में सर्वाधिक तेईसवें तीर्थंकर भगवान

पार्श्वनाथ की प्रतिमायें हैं।

पार्श्वनाथ की प्रतिमायें अड़भार, कारीतलाई, पेन्ड्रा, सिहपुर एवं शहपुरा से प्राप्त हुई है। कारीतलाई से प्राप्त रायपुर संग्रहालय में संरक्षित, ३' ६" आकार की १०वीं ११वी शती के मध्य निर्मित इस चतुर्विंशति पट्ट में मूलनायक प्रतिमा तेईसवे तीर्थंकर पार्श्वनाथ की है। वे पद्मासन मे ध्यानस्थ बैठे है। उनके नेत्र अर्धनिमीलित हे और दृष्टि नासिका के अग्रभाग पर स्थिर है। पार्श्वनाथ की ठुड्डी नुकीली, कान लबे, केश घुघराले और उष्णीषवद्ध है। उनकी छाती पर श्री वृक्ष का प्रतीक है। पार्श्वनाथ को सर्प पर विराजमान चित्रित किया गया है, जिसकी पूछ नीचे लटक रही और फैले हुए सप्तफण का छत्र तीर्थंकर के मस्तक के ऊपर तना हुआ है। सप्तफण के छत्र के ऊपर कल्पद्रुम के लटकते हुए पत्ते और उनके ऊपर दुंदभिक है। फण के दोनों ओर एक-एक हाथी है जिस पर बैठे हुए महावत के तन का ऊपरी भाग खंडित है। हाथियों के नीचे दोनो ओर एक-एक विद्याधर है जो हाथ मे पुष्पमाला लिए है।

तीर्थंकर के दायें सौधर्मेन्द्र एवं बाई ओर ईशानेन्द्र चंवरी लिए हुए खड़े है। पार्श्वनाथ के तीन ओर की पट्टियों पर अन्य तीर्थङ्करों की छोटी-छोटी प्रतिमायें बनी है। दाहिने ओर की पट्टी पर ६ और बायें ओर की पट्टी पर ८ प्रतिमायें है। शेष ६ तीर्थङ्करो की प्रतिमायें ऊपर की आड़ी पट्टी पर बनी हुई थी जो अब खडित हो गया है। इस प्रकार मूलनायक को मिलाकर इस प्रतिमा मे कुल २४ तीर्थङ्कर हैं। प्रतिमा की चौकी पर दो सिहों के मध्य धर्म चक्र स्थित है। सिंहों के पास क्रमशः धरणेन्द्र एव पद्मावती बैठे है। उनके मस्तक पर भी फण है।

अन्तिम तीर्थङ्करभगवान महावीर की एक ही आसन प्रतिमा कारीतलाई से प्राप्त हुई है। ३' ५" आकार की इस प्रतिमा मे महावीर उच्च सिहासन पर उत्थित पद्मासन मे ध्यानस्थ बैठे है। उनके केश घुघराले तथा तथा उष्णीपबद्ध है और उनके हृदय पर श्रीवृक्ष का चिह्न है। प्रतिमा का तेजोमण्डल युक्त ऊपरी भाग तथा वाम पार्श्व खडित है। तीर्थङ्कर के दक्षिण पार्श्व मे पट्टी पर उनके परिचारक सौधर्मेन्द्र खड़े है तथा अन्य तीर्थङ्करों की चार पद्मासन स्थित प्रतिमायें शेष हैं।

उच्च चौकी पर मध्य में धर्मचक्र के ऊपर महावीर का लाछन सिह अंकित है। लाछन के दोनों पार्श्व पर एक-एक सिंह चित्रित किये गये है। धर्मचक्र के नीचे एक स्त्री लेटी हुई है जो चरणों मे पड़े रहने का संकेत है। महावीर का यक्ष मातंग अंजलिबद्ध खड़ा है किन्तु यक्षी सिद्धायिका चंवरी लिए हुए है। इसके दोनों ओर पूजा करते भक्त चित्रित किये गये हैं।

२. तीर्थंकरों की स्थानक मूर्तियां

कलचुरि कला मे तीर्थङ्करों की स्थानक प्रतिमायें बहुत ही कम मात्रा मे प्राप्त हुई है। स्थानक प्रतिमाओ मे शातिनाथ एव महावीर की प्रतिमायें है। इसके अतिरिक्त कारीतलाई से प्राप्त खड़े तीर्थङ्कर की प्रतिमा प्राप्त हुई है परन्तु प्रतिमा पर किसी प्रकार के लांछन न होने के कारण तीर्थङ्कर की पहिचान सम्भव नही है।

सोलहवें तीर्थङ्कर भगवान शातिनाथ की प्रतिमायें कारीतलाई एवं बहुरीबंद से प्राप्त हुई है। कारीतलाई से प्राप्त प्रतिमा मे शांतिनाथ कायोत्सर्ग आसन में खड़े है। उनका मस्तक खंडित है। हृदय पर श्रीवृक्ष का चिन्ह, मस्तक के पीछे प्रभामण्डल, मस्तक के ऊपर त्रिछत्र और पुष्पमालाओं से युक्त विद्याधर तथा तीर्थङ्कर के दायें-बायें परिचारक इन्द्र आदि स्पष्ट चित्रित किये गये है। शांतिनाथ के पादपीठ पर दो सिहों के मध्य हिरन चित्रित किया गया है जो इनका लांछन है। इनका यक्ष गरुड और यक्षी महामानसी चौकी पर स्थित है।

अन्तिम तीर्थङ्कर भगवान महावीर की ४' ४" × १' ६" आकार की एक प्रतिमा जबलपुर से प्राप्त हुई थी जो आजकल फिलेडेलफिया म्यूजियम आफ आर्ट संग्रहालय में संरक्षित है। १०वी शती मे निर्मित, श्यामबादामी बलुआ पाषाण से निर्मित महावीर की यह नग्न प्रतिमा कायोत्सर्ग मुद्रा में खडी है। हृदय पर श्रीवत्स का चिन्ह अंकित है। मूर्ति के हाथ घुटने तक लंबे है। मूर्ति के नीचे दो लघु पार्श्वरक्षक है उनके सामने एक-एक भक्त घुटने के भार पर बैठे है। महावीर के शीर्ष के दोनों पार्श्व पर एक-एक उड़ते हुए गंधर्व अंकित है। महावीर के मस्तक के ऊपर तीन छत्र हैं। छत्र के किनारे दो

हस्ति अंकित है। मूर्ति में अंकित सिंह के कारण यह प्रतिमा महावीर की ज्ञात होती है।

३. तीर्थंकरों की संयुक्त प्रतिमायें

कलचुरिकला मे तीर्थकरों की सयुक्त प्रतिमाये आसन एवं स्थानक दोनों मुद्राओ मे प्राप्त हुई है। इनमे स्थानक सयुक्त प्रतिमायें अधिक है। बाईसवे तीर्थकर नेमिनाथ की गोमेध एवं अबिका सहित आसन प्रतिमा धुबेला संग्रहालय मे संरक्षित है। तीर्थकर नेमिनाथ की प्रतिमा दोनों की अपेक्षा लघु है। नेमिनाथ दोनों के मध्य ध्यानस्थ बैठे है। उनके नीचे यक्ष गोमेध एव यक्षी अम्बिका है। गोमेघ दाहिने और अम्बिका बायें ललितासन मुद्रा मे बैठे है। द्विभुजी गोमेघ के वामहस्त में पद्म एवं अबिका के वाम हस्त मे एक शिशु है। गोमेध के दाहिने पैर के निकट भी दोनों ओर दो-दो पूजक है।

कलचुरिकालीन तीर्थकरो की स्थानक सयुक्त मूर्तिया, आसन मूर्तियो की तुलना मे ज्यादा है। सयुक्त स्थानक मूर्तियो मे—ऋषभनाथ एव अजितनाथ, अजितनाथ एव संभवनाथ, पुष्पदंत एव शीतलनाथ, धर्मनाथ एव शातिनाथ, मल्लिनाथ एव मुनिसुव्रतनाथ तथा पार्श्वनाथ एव नेमिनाथ की मूर्तिया है। इनमे से अधिकाश द्विमूर्तिकायें कारीतलाई से प्राप्त हुई है।

कारीतलाई से प्राप्त लालबलुआ पत्थर से निर्मित ४' ७" आकार की अजितनाथ एव सभवनाथ की द्विमूर्तिका प्राप्त हुई है जो सम्प्रति रायपुर सग्रहालय मे है। १०वी शती मे निर्मित द्वितीय जैन तीर्थकर अजितनाथ एवं तृतीय जैन तीर्थकर सभवनाथ की इस द्विमूर्तिका मे दोनों तीर्थकर कायोत्सर्ग आसन मे खडे है। तीर्थङ्करो के हाथ एव मस्तक खडित है। दोनो के मस्तक के पीछे तेजोमण्डल, एक-एक छत्र, एक-एक दुदभिक, गजो के युगल और पुष्प मालाये लिये हुये विद्याधर अकित है। उनके अलग-अलग परिचारक के रूप में सौधर्म एवं ईशान स्वर्ग के इन्द्र चावर लिये हुये खडे है। तीर्थङ्करो के चरणो के निकट श्रद्धालु भक्त जन उनकी पूजा करते हुए दिखलाये गये है।

दोनों तीर्थंकर अलग-अलग पादपीठ पर खडे है। अजितनाथ के पादपीठ पर हस्ति एवं संभवनाथ के पादपीठ पर वानर अकित हैं। दोनों के साथ उनके यक्ष एवं यक्षी क्रमशः महायक्ष एवं रोहिणी तथा त्रिमुख एवं प्रज्ञप्ति है। चौकी पर सिंहो के जोड़े एवं धर्मचक्र है।

ब—शासन देवियाँ

कलचुरि कला मे जैन शासन देवियो की प्रतिमाये आसन एव स्थानक मुद्राओं मे प्राप्त हुई हैं। इसके अतिरिक्त इनकी संयुक्त प्रतिमायें भी प्राप्त हुई है। आसन प्रतिमाओं मे अम्बिका एवं चक्रेश्वरी की प्रतिमायें प्रमुख है। इनके अतिरिक्त सोहागपुर से कुछ अन्य शासन देवियो की मूर्तियां प्राप्त हुई है जिनकी उचित लाछन क अभाव में समीकरण संभव नही है।

कारीतलाई से प्राप्त सफेद छीटेदार लाल बलुआ पाषाण निर्मित आम्रादेवी की एक प्रतिमा प्राप्त हुई है। इस प्रतिमा में बाईसवें जैन तीर्थङ्कर नेमिनाथ की शासन देवी अंबिका ललितासन में सिंहारूढ है, जो उनका वाहन है। द्विभुजी यक्षी के दक्षिण कर मे आम्रलुबि एव वाम कर से अपने कनिष्ठ पुत्र प्रियशंकर को सम्हाले है। प्रियशकर उसकी गोद मे बैठा है। ज्येष्ठ पुत्र शुभकर अपनी माता के दक्षिण पाद के निकट बैठा है। अम्बिका का चेहरा मुस्कराता हुआ है। मस्तक के ऊपर स्थित आम्रवृक्ष वाला भाग खंडित है। अम्बिका का केशविन्यास मनोहर है। अग पर यथोचित आभूषण है। यक्षी के दोनो ओर एक-एक परिचारिका खड़ी है। दक्षिण पार्श्व की परिचारिका अपने वाम कर से अधोवस्त्र को सम्हाले हुये है तथा दक्षिण कर मे पद्म है।

स्थानक शासन देवियो मे से मात्र अबिका की प्रतिमा ही प्राप्त हुई है। कारीतलाई से प्राप्त ३' १" आकार की इस प्रतिमा मे देवी अम्बिका आम्रवृक्ष के नीचे एक सादी चौकी पर त्रिभंगी मुद्रा मे खडी है। दोनो पुत्रो—प्रियंकर एवं शुभंकर की स्थिति उपरिवर्णित प्रतिमा के सदृश्य ही है। यक्षी के तन पर विविध आभूषण है।

आम्रवृक्ष पर बाईसवें जैन तीर्थङ्कर नेमिनाथ की छोटी सी पद्मासन प्रतिमा है। वृक्ष के दोनो ओर खड़ी एक-एक विद्याधरी पुष्पवृष्टि करती दिखाई गई है। अम्बिका की पूजक एक स्त्री उसके दायें ओर है और

पुजारी पुरुष वाम पार्श्व में अंजलिबद्ध खड़ा है। यक्षी का वाहन सिंह उसके पैरों के पीछे है।

कलचुरि कला में देवियों की संयुक्त प्रतिमायें अत्यधिक अल्पमात्रा में है। कारीतलाई से एक जैन देवालय के चौखट का खण्ड प्राप्त हुआ है, जिसके दाहिने ओर के अर्धभाग मे कोई तीर्थङ्कर पद्मासन मे बैठे है। उनके दोनों ओर एक-एक तीर्थङ्कर कायोत्सर्ग आसन मे ध्यानस्थ खड़े है। धुर छोर पर मकर और पुरुष है।

बायें ओर के अर्धभाग के ऊपर एक विद्याधर अंकित है और नीचे आले मे अम्बिका और पद्मावती एक साथ ललितासन मे बैठी है। दोनो देवियां क्रमश नेमिनाथ एवं पार्श्वनाथ की यक्षी है। अम्बिका की गोद मे शिशु और पद्मावती के मस्तक पर सर्प का फण है।

स—श्रुत देवि ां

कलचुरि कला मे श्रुत देविया कम मात्रा मे उपलब्ध हुई है। कारीतलाई से एक सरस्वती की प्रतिमा प्राप्त हुई है जो रायपुर सग्रहालय मे है। जैन देवी देवताओ मे ज्ञान की अधिष्ठात्री सरस्वती देवी का विशिष्ट स्थान है। दिगम्बर सम्प्रदाय क अनुसार इनका वाहन मोर एव श्वेताम्बर सम्प्रदाय के अनुसार हंस है। कुछ आचार्यों ने इसे चतुर्भुजा एवं कुछ ने द्विभुजा बतलाया है।

सरस्वती की यह प्रतिमा अत्यन्त खडितावस्था मे प्राप्त हुई है। देवी का मस्तक और हाथ खडित है पर तेजोमण्डल पूर्ण एव स्पष्ट है। ललितासनारूढ देवी के तन पर विभिन्न आभूषण है। चतुर्भुजी देवी के दक्षिण निचले एव वाम ऊर्ध्व हाथ मे वीणा है। नीचे एक भक्त देवी की पूजा कर रहा है। दोनो ओर विद्याधर है।

ड—अन्य चित्रण

कलचुरि कला मे उपरोक्त वर्गो के अतिरिक्त अन्य चित्रण मे सर्वतोभद्रिका एवं सहस्र जिनबिब का वर्णन किया जा सकता है। कारीतलाई से प्राप्त एक शिखराकार शिल्प मे चारो ओर एक-एक तीर्थङ्कर पद्मासन मे ध्यानस्थ बैठे है। चार तीर्थङ्करो मे से केवल पार्श्वनाथ ही स्पष्ट रूपेण पहिचाने जा सकते है। अन्य तीर्थङ्करो मे सम्भवतः ऋषभनाथ, नेमिनाथ एव महावीर है क्योकि सर्वतोभद्रिका प्रतिमाओ मे चार विशिष्ट तीर्थङ्करो की ही प्रतिमायें निर्मित की जाती थी।

रायपुर संग्रहालय में कारीतलाई से प्राप्त एक स्तभाकृति शिल्पखण्ड पर जो ऊपर क्रमशः सकरा होता गया है, सहस्र जिन बिंब उत्कीर्ण है। यह जैन ग्रंथो में वर्णित सहस्रकूट जिन चैत्यालय का प्रतीक है। इसके चारो ओर छोटी-छोटी बहुत सी जिन प्रतिमायें अंकित है। सभी जिन प्रतिमायें पद्मासन मे सहस्र की सख्या मे है। इस शिल्पखण्ड मे ७ पक्तिया है; इन पक्तियों मे प्रतिमाओ की सख्या इस प्रकार है— ऊपर की प्रथम पंक्ति मे प्रत्येक ओर तीन-तीन, दूसरी पक्ति मे प्रत्येक ओर पाच-पाच, तीसरी से पाचवी पक्ति मे प्रत्येक ओर छै-छै, छठी पक्ति मे प्रत्येक ओर सात-सात एवं सातवी पक्ति मे प्रत्येक ओर सात-सात। इन सभी प्रतिमाओ के मस्तक के पीछे पद्माकृति एव तेजोमण्डल है।

उपरोक्त मूर्तियो के वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि कलचुरि मूर्तिकारो ने जैन प्रतिमाओ के निर्माण मे शास्त्रीय नियमो का पूर्णरूपेण ध्यान रखा है। तत्कालीन जैन प्रतिमाओ मे यद्यपि रूप रम्यता के साथ-साथ सामान्य से सामान्य बातो को प्रकट करने का पूरा प्रयत्न किया है। किन्तु इस मूर्तिकला पर गुप्तकालीन मूर्तिकला का प्रभाव अवश्य पड़ा है। इसके बावजूद भी यह निश्चित रूपेण कहा जा सकता है कि कलचुरि कालीन जैन प्रतिमाओ मे कुछ रूढ़ियों का दृढ़ता से पालन किया गया है।

गुप्तकाल मे कला का जो रूप प्रतिष्ठित हुआ उसका विकसित रूप हम गुर्जर प्रतिहारों एव चदेलो की कला मे पाते है और कलचुरियों ने इससे प्रेरणा प्राप्त की थी। कलचुरिकालीन जैन प्रतिमाओ मे चदेलो की अपेक्षा अधिक भाव प्रदर्शन मिलता है, साथ ही साथ अंगो के विन्यास मे भावाभिव्यक्ति मिलती है। चदेल कला की अपेक्षा इस कला मे अधिक सौकमार्य, उत्तम अगविन्यास एव सुन्दर भावों की अभिव्यक्ति के साथ-साथ शरीरगत एव भावगत लक्षण इन प्रतिमाओं मे उत्कृष्ट है। आभूषणो का प्रयोग चदेलो पर परमारों से कम मात्रा हुआ है। कला मे मौलिकता के अधिक दर्शन होते है।

●

वर्धमान पुराण के सोलहवें अधिकार पर विचार

□ यशवन्त कुमार मलैया

खटौरा वासी नवलसाह चदेरिया ने विक्रम सं० १८२५ में श्री वर्धमानपुराण की रचना की थी। उन्होने इसके सोलहवें अधिकार मे आत्म-परिचय लिखा है जिसमे प्रसङ्गतः कुछ जाति-विषयक चर्चा की है। यह कुछ दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। एक तो विवरण क्रमबद्ध रूप से रखने का प्रयास किया गया है, दूसरे कुछ ऐसे तथ्यो और मान्यताओं का उल्लेख है जिनका कही अन्यत्र उल्लेख नहीं है। प्रस्तुत लेख मे इस विषयवस्तु का तुलनात्मक विश्लेषण करने का प्रयास किया जा रहा है।

वर्धमानपुराण की जो हस्तलिखित प्रतिया उपलब्ध है, उनके पाठों में कही-कही अंतर है। ऐसा प्रतीत होता है कभी प्रतिलिपिकारो ने यहा-वहा सुधार करने का प्रयास किया होगा। मुद्रित ग्रथ शुद्धतर प्रति पर आधारित प्रतीत होता है कारण उसमे उपलब्ध पाठातर स्वाभाविक है और ग्रंथ की भाषा के साथ एकरस लगते है।

षोडश अधिकार मे कवि ने अपने आत्मपरिचय मे क्रमबद्ध रूप से अपना वर्ण, अपने वैश्य वर्ण की चौरासी जातिया, स्वजाति के तीनों भेद, फिर गोलापूर्व जाति के अट्ठावन 'बैंक', अपने 'बैंक' के चार 'खेरे, और फिर निज कुल के इतिहास का स्वयं तक वर्णन किया है।

कवि ने अपना वर्ण वैश्य और फिर वैश्यों मे चौरासी जातियां लिखी हैं। यहा पर यह बात ध्यान करने की है कि वणिक् और वैश्य शब्द शास्त्रीय दृष्टि से पर्यायवाची नही है। इनका समतुल्य प्रयोग नही किया जा सकता। फिर भी उत्तर भारत की समस्त जैन जातियां वैश्य ही है (सभवंतः कुछ अपवादो को छोड़कर)। दक्षिण में वैश्यों के अलावा ब्राह्मण व शूद्र वर्ण के भी जैन है"[२]। ओसवाल, अग्रवाल, श्रीमाल आदि जातियों मे जो वैष्णव ह, उन्हें ब्राह्मण उच्च वैश्य मानकर उपवीत देते है। वैसे भी वैदिक आचार मे यज्ञोपवीत पहनने आदि को छोड़कर वैश्यों व मच्छूद्रों के अधिकार मे विशेष अन्तर नही है[१]।

कवि ने ८४ वैश्य जातियां गिनाई है। ८४ नामों के सकलन के पीछे ८४ अक का मोह ही है। ८४ वैश्य जातियों की अनेक नामावलिया मिलती है। अठारहवी शताब्दी की 'फूलमाल पच्चीसी' में ८४ जैन जातिया गिनाई गई है। टाड ने ८४ वणिक् जातियों की नामावली दी है। 'राजस्थानी जातियो की खोज' में ८४ वैश्य जातियों की एक अन्य नामावली दी है। कभी-कभी ब्राह्मणों में गौड़ों और द्रविणों मे कुल मिलाकर ८४ ब्राह्मण जातियाँ कही जाती है, कभी कहा जाता है गुर्जर ब्राह्मणों और गुर्जर बनियों के ही ८४ भेद है। खंडेलवाल जैनों के और खण्डेलवाल ब्राह्मणो के ८४ ही गोत्र कहे जाते हैं।

वैश्य जातियों के ८४ नामों की अलग-अलग सूचियो में कुछ नाम आपस मे मिलते हे, कुछ नही मिलते। टाड ने एक जैन यति का उल्लेख किया है जो वणिक् जाति की सूची सग्रह कर रहे थे। लगभग १८०० नामो के एकत्र करने के बाद उन्होंने एक अन्य यति से १५० अन्य नामों की सूची पाई, जिससे उन्होने असंभव मानकर यह काम स्थगित कर दिया। टाड की सूची मे राजस्थान वाली जातियाँ ही है। वर्धमान पुराण की सूची मे कुछ बुंदेलखण्ड की जातियाँ भी है।

नवलशाह चदेरिया ने ८४ नामो को अपनी जानकारी के आधार पर तीन भागो मे बाँटा है। पहले साढ़े बारह अर्थात् तेरह प्रसिद्ध जैन जातियाँ गिनाई गयी है।

---

१. हिंदी विश्वकोष, १९२३ ई०, भाग ६, पृ० ६०१

२. The Gazetteer of India, Vol. 1, 1965, p. 541.

३. Ghurye G.S., 'Caste and Race in India, 1932, p. 86.

फिर ग्यारह जातियाँ गिनाई है जो कवि के ज्ञान के अनुसार अंशतः जैन है या जैन धर्म से प्रभावित है। इनके बाद अन्य ६०० वैश्य जातियाँ गिनाई गई है।

साढे बारह का अंक परंपरागत सा लगता है। ठीक यही साढे बारह जातियां 'परवार-मूर-गोत्रावली' में गिनाई गई है। १६३६ ई० की 'सिहासन-बत्तीसी' मे साढे बारह वैश्य जातियों का उल्लेख है[४]। महाराष्ट्रीय देशस्थ ब्राह्मणों के साढे बारह ज्ञाति के सच्छूद्र (मराठा आदि)[५] यजमान कहे जाते है।

वर्धमान पुराण मे साढे बारह प्रसिद्ध जैन जातियों को 'पांत इक भात' अर्थात् एक पंक्ति मे एक ही समान उच्चता वाली कहा गया है। पाठातर मे 'धरम सनेही जानो आन' है जो समानार्थी है। परवार-मूर-गोत्रावली मे यही १२।। जातियाँ समान कही गई है। यह जैनो मे परस्पर समता एव भ्रातृभाव का द्योतक है।

इसके बाद कवि ने ग्यारह अन्य जातियां गिनाई है, जिनमें उसके विचार से, 'जैन लगार' अर्थात जैनत्व का प्रभाव विद्यमान है। जैसा कि हम आगे देखेगे, ये या तो अभी भी अशतः जैन है या पूर्वकाल मे थी। इनके पश्चात् साठ अन्य वैश्य जातियो के नाम है। इनमे से भी कुछ जातियो में जैन वर्ग विद्यमान है, पर सभवत दूरस्थ होने से कवि को इस बात का ज्ञान न था।

जातियो के नाम इस प्रकार है।

साढ़े बारह जैन जातियाँ :

१. गोलापूरब, २ गोलालारे, ३. गोलसिघारे, ४. परवार, ५. जैसवार ६. हूमडे, ७. कठनेरे, ८. खण्डेलवाल, ९. बहरिया, १०. श्रीमाल ११. लमेंचू, १२. ओसवाल, १३. अग्रवाल (आधी जाति)

'जैन लगार' वाली जातियाँ :

१४. जिनचेरे, १५. बाधेलवार, १६ पद्मावति पुरवार, १७ ठम्सर १८. गृहपति, १९. नेमा, २०. असैटी, २१, पल्लिवार २२ पोरवार, २३ ढढतबाल, २४. माहेश्वरवार

अन्य वैश्य जातियाँ :

२६ पण्डितवाल, २६. डोडिया, २७. सहेलवाल, २८. हरसौरा, २९. गोरवार, ३०. नारायना, ३१. सीहोरा, ३२. भटनागर, ३३. चीतोरा, ३४. भटेरा ३५. हरिग्रा, ३६. धाकरा, ३७. बाचनगरिया, ३८. मोर, ३९. वाइडाको, ३०. नागर, ३१. जलाहर, ३२. नरसिगपुरी, ३३. कपोला, ३४. डोसीवाल, ३५. नगेंद्रा, ३६. गौड. ३७. श्रीगौड़, ३८. गागड़, ३९. डाख, ४०. डायली, ४१. बधनौरा, ४२. सोरावान, ४३. धन्नेरा, ४४. कथेरा, ४५. कोरवाल, ४६. सूरीवाल, ४७. रैकवार, ४८. सिंधैवाल, ४९. सिरैया, ५०. लाड, ५१. लड़ेलवाल, ५२. जोरा, ५३. जंबूसरा, ५४. सेटिया, ५५ चतुरथ, ५६ पचम, ५७. अच्चिरवाल, ५८. अजुध्यापूर्व, ५९ नानावाल, ६० मडाहर, ६१. कोरटवाल, ६२. करहिया, ६३. अनदीरह, ६४. हरदौरह, ६५. जेहरवार, ६६. जेहरी, ६७ माघ, ६८. नासिया, ६९ कोलपुरी, ७०. यमचौरा, ७१. मैसनपुरवार, ७२. वेस, ७३. पवडा, ७४ ओमट।

इनमे से कुछ का सक्षिप्त परिचय उपयोगी होगा। गोला पूरब बुंदेलखण्ड के निवासी है। यह कवि की जाति है जिसका उसने आगे परिचय दिया है। गोलापूर्व एक ब्राह्मण जाति का भी नाम है[६] जो कृषि से निर्वाह करते है। किसी-किसी के मत से ये सनाढ्य-ब्राह्मण के अंतर्गत है[७]। गोलापूरव जैन बीसबिसे, दसबिसे, और पचबिसे भागों में विभक्त है, जिनमे दसबिसे भेद नष्ट हो चुका है। इस जाति के ग्यारवी शताब्दी से शिलालेख मिलते है। गोलालारे (गोलाराडे) और गोलसिघारे भी विशेषकर बुंदेलखण्ड के निवासी है, जिनके बारे में अनुमान किया जाता है कि ये और गोलापूर्व किसी एक ही गोला नामक स्थान के निवासी होंगे। गोलाराडे जाति के शिलालेख बारहवी शताब्दी से मिलते है। परवार बुंदेलखण्ड की सबसे प्रसिद्ध जैन जाति है। इन्हे लेखो मे पौरपट्ट या पुरवाड कहा गया है। बुंदेलखण्ड के जैनों में

४. 'नरेणा का इतिहास' डा. कैलाश चन्द्र जैन, अनेकात, नवम्बर ७१, पृ० २१८।

५. 'ब्राह्मणोत्पत्तिमार्त्तण्ड' हरिकृष्ण शास्त्री, १९४८ ई० पृ० १४३।

६. Caste in India: J.H. Hutton, p. 281.

७. हिंदी विश्वकोष, भा० ६, पृ० ६०१।

सबसे अधिक जनसंख्या इन्ही की है। अधिकतर गौरवर्ण होते हैं। ये पोरवाड़ो (प्राग्वाट) से भिन्न है[८]। ग्यारहवी शताब्दी से इनके शिलालेख मिलते है। जैसवाल उ० प्र० के रायबरेली जिले मे स्थित जैस या जायस नामक प्राचीन नगर के अधिवासी थे। सूफी कवि 'जायसी' यही के थे। अनेक जातियाँ इसी को अपना आदि स्थान बताती हैं[९]। बरई (पनवाडी) जाति मे[१०], कुर्मियों में, खटीको मे, चमारों मे[११], और कलार जाति में एवं राजपूतों मे जैसवाल नाम के विभाग है। कैलाशचन्द्र जैन के विचार से जैसवाल जैसलमेर से निकले है। लेकिन जैसवालों द्वारा प्रतिष्ठित अनेकों जैन मूर्तियाँ सं० १२०० और बाद की अहार (बुंदेलखन्ड) में है[१२], जबकि जैसलमेर की स्थापना सं० १२२० के आसपास हुई थी, और यह अहार से काफी दूरी पर है। हूमड़ राजस्थान, गुजरात, मालवा व महाराष्ट्र मे निवास करते है[१३]। ये दसा-बीसा भेदों मे विभक्त है। ग्यारहवी शताब्दी से इनके उल्लेख मिलते है। खण्डेलवाल राजस्थान स्थित खण्डेला नगर संभूत है। ये जैन और वैष्णव दोनो ही है। सं० १८५० की श्रावकोत्पत्तिप्रकरणम् में इनके ८२ गोत्रों की उत्पत्ति राजपूत कुलों से, और २ गोत्रों की उत्पत्ति सोनी कुलो से कही गयी है। हो सकता है ये दो कुल सोनगरा चौहानों के हों ये ही ८४ सरावगी है। कभी कभी इनके ७२ गोत्र भी कहे जाते है। वैष्णवो मे कभी-कभी खण्डेलवाल-ब्राह्मणों से या खण्डु ऋषि आदि से उत्पत्ति कही जाती है पर खण्डेला नगर से ही मान्य है। खण्डेलवाल-ब्राह्मण गौड़-ब्राह्मणों के अंतर्गत है[१४], राजस्थान मे ही उनका वास है। इनमे भी ८४ गोत्र है। खंडेलवाल जैनों के बारहवी शताब्दी से उल्लेख मिलते है। बरहिया वरैया का ही रूपातर है। मुरैना के गुरु गोपालदास जी वरैया इसी जाति के थे। श्री माल जाति का आदि वास दक्षिणी राजस्थान स्थित भीनमाल स्थान मे था, जो कभी श्रीमाल नाम से विख्यात था। यह स्थान विद्वान ब्राह्मणों के वास के कारण चौहानों की ब्रह्मपुरी कहलाता था। श्रीमाली ब्राह्मण यही से हुए है। कैलाशचन्द्र जैन के मत से श्री माली जैन आठवी शताब्दी मे सभवत: रत्नप्रभसूरि द्वारा[१५] स्थापित हुए। ब्राह्मणोत्पत्ति मार्त्तण्ड के मत से अमरसिह जैन ने श्री माली वैश्यो को जैनमत मे लिया। श्रीमाली वैश्यो मे दसा-बीसा भेद है। बीसा सभी श्रावक है, दशा श्रावक व मेश्री (वैष्णव) दोनों है।[१६,१७] अतः आदि से ही जैन रहे होगे। श्रीमाली-ब्राह्मणो मे से कुछ ओसवाल जैनो के गोर उपाध्याय है, ये ही भोजक कहलाते है। श्रीमाल जैन राजस्थान, गुजरात में विशेषकर वसते है। लमेंचू मूर्तिलेखों आदि मे लबकचुकान्वय नाम से प्रसिद्ध है। दशवो-ग्यारहवी शताब्दी से इनके उल्लेख मिलते है[१८]। इनका निकास लबकाचन नामक नगर से हुआ जान पडता है। ओसवाल सुप्रसिद्ध जैन जाति है। राजस्थान स्थित ओसिया या उपकेश नामक प्राचीन नगर से, रत्नाप्रभसूरि द्वारा आठवी शताब्दी मे इस जाति का निर्माण हुआ। आरंभ में अठारह कुल थे। मुसलमानो के भय से अनेक क्षत्रिय-गण वैश्य होकर इसमे मिलते रहे है[१९,२०]। इस प्रकार कुल १४४४ गोत्र निर्मित हुए ऐसा कहा जाता है। अक्सर ये राजपूतो की ही तरह गौरवर्ण होते है। ये श्वेताबर जैन ही है, कोई कोई दिगम्बर जैन या वैष्णव भी है। दसा-बीसा भेद है। जनसख्या मे वैश्यो मे अग्रवालो के बाद इनका ही स्थान

८. जैन समाज की कुछ उप जातियाँ, परमानंद शास्त्री, अनेकांत, जून ६६, पृ० ५०।
९. हि० वि०, भा० ८ पृ० २६२।
१०. 'Caste and Race in India', p. 31.
११. The Caste System of Northern India, E.A.H Blunt. 1931, p. 53,55,209.
१२. अन्यत्र सं० ११४५ एव ११६० की भी है।
१३. हि० वि० ६, पृ० ३६७।
१४. वही, भा० ४, पृ० ७१८।
१५. K.C. Jain. 'Ancient cities and towns of Rajasthan,, p. 183.
१६. ब्रा०, पृ० ११७।
१७ हि० वि०, भा० २२, पृ० ३७२।
१८. चद्रवाड का इतिहास, परमानंद जैन शास्त्री, अनेकात, दिसम्बर ७१, पृ० १८६।
१९. रमेशचंद्र गुणार्थी, 'राजस्थानी जातियों की खोज', पृ० ५९।
२०. K.C. Jain, p. 191.

है। अग्गरवार या अग्रवाल सर्वाधिक विख्यात वैश्य जाति है। इनकी ही सख्या सर्वाधिक है। हरियाणा के हिसार जिले में आग्रोतक या आग्रोहा स्थानसे इनका विकास हुआ। इनमे साढे सत्रह गोत्र है। दसा-बीसा भेद है ये अधिकतर वैष्णव ही है, फिर भी जैनो की सख्या कम नही है। बारहवी शताब्दी से इनके उल्लेख मिलते है। कठनेरे प्रसिद्ध नही है, कठनेर नामक किसी स्थान से निकले जान पड़ते है।

वघेरवार राजस्थान मे केकड़ी से १०-११ मील दूर बघेरा नामक स्थान के पूर्व निवासी थे। वर्तमान मे इनका निवास विशेष रूप से राजस्थान, महाराष्ट्र और मालवा मे है। पडित आशाधर जी व चित्तौड़ कीर्ति स्तभ के निर्माणक शाह जीजा इसी जाति के थे। इनके बारहवी शताब्दी से लेख आदि मिलते है। पद्मावती पुरवार जाति का निकास पद्मावती नामक नगर से हुआ है जो आजकल ग्वालियर मे पद्मपवाया नामक ग्राम के रूप मे अवस्थित है। पद्मावती पुरवार एक ब्राह्मण जाति भी है।

गृहपति जाति वर्तमान मे गहोई कहलाती है वर्तमान मे ये वैष्णव है पर प्राचीन काल मे अधिकतर धर्मनिष्ठ जैन रहे है। बुंदेलखण्ड मे अहार, खजुराहो आदि स्थानों में इनके मदिर, व जिनमूर्तियाँ मिलती है। दशवी से तेरहवी शताब्दी तक कितनी ही प्रतिष्ठायें इनके द्वारा हुई है। गृहपति जाति के पाणाशाह ने बुंदेलखण्ड मे अनेक भोंयरे निर्माण कराये थे। इनके बारे मे कई किवदंतियाँ कही जाती है। इनमे कुछ शैव भी होते थे। एक गृहपति द्वारा खजुराहो में शिवालय बनाये जाने का उल्लेख है। यह वैश्य जाति प्राचीन प्रतीत होती है प्राचीन साहित्य मे विशेषकर बैश्य साहित्य में बहुधा ही वैश्यो के लिये गृहपति शब्द प्रयुक्त हुआ है। चित्तौड़ मे प्राप्त आठवीं शताब्दी के एक लेख मे[२१] गृहपति जाति के मानभङ्ग नामक शासक द्वारा शिवालय और कूडादि के निर्माण का उल्लेख है। इनमे १२ गोत्र है। तीन भागों में विभक्त है। अधिकतर निवास बुंदेलखण्ड मे है, पिण्डारियों के भय से कुछ उ० प्र० मे भी जा बसे है[२२]। नेमा जाति बुंदेलखण्ड और मालवा में बसती है, नरसिंहपुर जिले में अधिक सख्या में है। लगभग सभी वैष्णव है, जैन भी हैं, जो धीरे धीरे वैष्णवो के प्रभाव मे आते जा रहे हैं। इनमे बीसा, दसा और पचा भेद है। असैटी या असाटी बुंदेलखण्ड के वैष्णव है, फिर भी आचार-व्यवहार में जैनो से प्रभावित है। गणेशप्रसाद जी वर्णी इसी जाति मे उत्पन्न हुये थे।

पल्लीवाल राजस्थान मे जोधपुर राज्य मे स्थित पल्ली नामक प्राचीन नगर के अधिवासी थे। ये जैन और वैष्णव मतावलबी है आगरा, जौनपुर आदि स्थानों में बहुतेरे पल्लीवालों का वास है। पल्ली नगर पर पहले पल्लीवाल ब्राह्मणो का प्रभुत्व था, जिन्हें राठौरों ने सन ११५६ ई. मे परास्त किया। इसके बाद पल्लीवाल ब्राह्मण यतस्ततः जाकर बस गये[२३]। पोरवार मूलतः राजस्थान और गुजरात के वासी है। इनमें जैन और वैष्णव दोनों ही है। इनमे दसा-बीसा भेद है। ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीमाल और पोरवाल निकटवासी थे। कहा है श्रीमाल नगर मे जो पूर्व दिशा मे रहते थे, वे ही प्राग्वाट् या पोरवाल कहलाये[२४,२५]। आबू के प्रसिद्ध देवालय इन्ही के बनवाये है। दसवी शताब्दी से इनके उल्लेख मिलते है। माहेश्वरी या महेसरी जाति के बारे में ऐसा प्रसिद्ध है कि झूझन् (राजस्थान) के पास लुहार्गल क्षेत्र पर कुछ राजपूत, यज्ञ में बाधा डालने पर मुनियों के श्रापवश पाषाण हुए, पीछे महेश्वर, पार्वती की कृपा से पुनर्जीवित होकर वैश्यत्व ग्रहण किया[२६]। इनकी उत्पत्ति खडेला, इदौर के निकट महिष्मती, राजस्थान में डीडवाना आदि से बताते है पर मुजफ्फरनगर के माहेश्वरियों का कहना है कि उनका मूलस्थान भरतपुर के पास महेशन नगर मे था[२७], यह ही सभावित लगता है। बिडला आदि कोट्याधीशो के उदय से ये मारवाडियों मे सर्वाधिक सपन्न माने जाते हैं। इनके ७६ गोत्रों को कभी तो

२१. K.C. Jain, p. 22[?].
२२. हि० वि०, भाग ६, पृ० २६२।
२३. वही, भा० १३, पृ० १४७।
२४. ब्रा०. पृ० १००।
२५. K.C. Jain, p. 163.
२६ ब्रा, पृ० ५७०।
२७. हि० वि०, भा० २२, पृ० ३७५।

विभिन्न राजपूत कुलो से संभूत कहते है, कभी पूर्ण जाति को झाला राजपूतो से उत्पन्न बताते है[२८]। इनमें जैन अल्प ही है।'

डौडिया-वैश्य डौडिया-क्षत्रियों के समस्थानिक लगते हैं। संभव है ये और डीडू, जो माहेश्वरियों का भेद है, एक ही हो। हरसौरा राजस्थान के नागौर जिले मे स्थित हरसौर के[२९] वासी थे। हरसोला ब्राह्मण इनके समस्थानिक थे। गोरवार या गोरावर वैश्य गोलवार-ब्राह्मणों के समस्थानिक है। औदीच्यसहस्र-ब्राह्मणो को उदयपुर के राजा ने गोल आदि बाईस गाँव दान किये जिससे वे गोलवार ब्राह्मण हुए। नारायना जाति नरेणा नगर से निकली है जो अजमेर से ६६ मील दूर स्थित है[३०]। चीतोरा या चित्तौडा चित्तौड़गढ़ के वासी थे। कोई-कोई इन्हे उन ब्राह्मणो का वंशधर कहते हे जो चित्तौड मे बसने के पूर्व ब्रह्मकर्म त्याग चुके थे। इनके द्वारा प्रतिष्ठापित जैन मदिर व मूर्तियाँ बारहवी शती से मिलते है[३१]। धाकरा या धर्कट जाति के दसवी शतावदी से मूर्तिलेख मिलते है। दिगबर श्वेतांबर दोनों ही रहे है. पर वर्तमान मे परिचय नही मिल सका। धाकड नाम की एक कृषक जाति राजस्थान और महाभारत मे अवश्य है। मोर या मोढ जाति गुजरात मे है, इनमे कुछ जैन भी होते है। महात्मा गाधी इसी के थे। नागर-वैश्य और नागर-ब्राह्मण बडनगर वासी थे। ये अधिकतर गुजरात मे है। कपोल बनिये सौराष्ट्र मे स्थित कडोल-ब्राह्मणो के यजमान थे[३२]। रैकवार हो सकता है गुजरात के रायकवाल ब्राह्मणों के समस्थानिक हो। इस नाम के सूर्यवशी क्षत्रिय और धीवर भी होते है। लाड या लाट-गुजरात स्थित लाट देश वासी थे। ये गुजरात, राजस्थान, बरार आदि प्रदेशो मे बसते है[३३]। बहुत से जैन भी है। जबसरा गुजरात के भड़ोंच जिले मे स्थित जम्बुसर के वासी लगते है। पंचम राजस्थान, की ही कोई जाति लगती है। वैसे कर्णाटक में एक पचम जाति है, जिसमें कुछ तो जैन हैं, शेष लिंगायत है[३४]। अजुध्यापूर्व अयोध्यावासी-वैश्य लगते है। ये उ० प्र० बुंदेलखण्ड और बिहार में रहते है[३५] इस नाम के विभाग अन्य जातियों में भी है[३६]। कुछ समय से इस जाति मे कही कही हलवाई, मडभूजे प्रविष्ट हो गये है। पवड या पवाडे राजस्थान के उत्तर मे, पंजाब में है। श्वेताबर जैन है। वेस या बैस नामक कई जातियाँ बिहार कुमायूँ, महाराष्ट्र व उ० प्र० है।

भटेरा या भट्नेरा, भट्नेर नामक स्थान से और कोरटा नामक स्थान से (राजस्थान मे) निकले जान पडते है। इनके अलावा चतुरथ, जलाहर, नरसिंगपुरी, नगेद्रा, बघनौरा, गौड श्रीगौड और सहेलवाल जातियों के उल्लेख मिलते है।

जिन जातियो के नाम इस सूची मे नही हैं, उनमे से कुछ ये है· मेडतवाल, सांभरिया (सभर), अजमेरा, नागदा, नगौरिया, कनौजिया, खडायते (खण्डियात), श्री श्रीमाल, हथुण्डिया, मेवाडा।

देखा जाये तो जातियों को पहिचानने का प्रयास विशेष सफल नही रहा है। कई जातियों का तो नाम ही शेष रहा है। सभव है वर्धमान पुराणकार ने भी कई के केवल नाम ही सुने हो बघेलवाल, पोरवाल आदि कुछ जातियो को अग्रवाल, ओसवाल आदि के साथ क्यों नही रखा गया यह स्पष्ट नहीं है। फिर भी सभी जातियो को तीन वर्गों मे रखने का प्रयास उचित ही लगता है। बुंदेलखण्ड स्थित समैया और चन्नागरे जातियों का नाम किसी भी वर्ग मे न होना आश्चर्यजनक है। ये तारणपथी दिगंबर जैन है, ताराणपथ परवार जातीय तारणस्वामी द्वारा सोलहवी सदी मे स्थापित हुआ था। मूर्ति के स्थान पर शास्त्र-पूजा करते है। पहले अन्य जैनों मे अधिक सपर्क नही था पर अब एकाकार ही हो गये है। समैया जातीय सागरवासी भगवादास शोभालाल जैन बुंदेलखण्ड के जैनों से सर्वाधिक संपन्न माने जाते है।

---

२८. 'क्षत्रिय वंशावली' ठाकुर गनपतसिंह, पृ० ५५।

२९. K C, Jain p 330

३०. K.C Jain p. 316.

३१. अनेकांत, अक्टू० ७२, पृ० २०८।

३२. ब्रा०, पृ० ४०२।

३३. हि० वि०. भा० २०, पृ० २४०।

३४. हि० वि०,

३५. वि० थि०, भा० २२, पृ० ३८५।

३६. E A.H. Blunt, p. 341.

फूलमाल पच्चीसी व वर्धमान पुल्लण की सूचीओं में तीस के लगभग जातियां उभयनिष्ट हैं।

आगे कवि ने गोलापूर्वों की उत्पत्ति के बारे में कहा है। गोयलगढ के वासियों की आदिजिन द्वारा गोलापूर्व जाति की स्थापना कही गई है। इस कथन का आधार क्या है और गोयलगढ मे किस स्थान का तात्पर्य है कह नहीं सकते। गोलापूर्व, गोलालारे व गोलसिंगारे किसी गोला स्थान के वासी थे यह माना जाता है, पर इसकी पहिचान करना कठिन है। श्री आदिजिन के ईक्ष्वाकुवंशीय होने का स्मरण किया जाना उद्देश्यपूर्ण लगता है, गोलापूर्व ईक्ष्वाकुवंशीय हैं ऐसी श्रुति रही है इसी प्रकार इन जातियों को इनसे संभूत बताते हैं—

गोलालारे-ईक्ष्वाकु
गोलसिंगारे-ईक्ष्वाकु
जैसवाल-यदु
लमेचू-यदु

अग्रवालो मे गर्ग गोत्र यदुवंश का है ऐसा कहते हैं[३७]। पर ये उल्लेख बहुत प्राचीन नही हैं, इससे कोई निष्कर्ष निकालना संभव नही है। यह उल्लेखनीय है कि चौबीस तीर्थंकरों में से बाईस कश्यप गोत्रीय ईक्ष्वाकु और दो गौतम गोत्रीय हरिवंश के कहे जाते हैं[३८]।

उत्पत्ति के बाद गोलापूर्वों के तीन भेद बताये जाते हैं, बिसबिसे, दसविसे और पचविसे। दसविसे भेद कवि के समय से रहा होगा, इस समय न तो शेष है और न ही अन्यत्र इनका उल्लेख है। दसा-वीसा आदि भेद अनेकों वैश्य जातियों में है, इस प्रकार (दो या तीन) भेद कब बने, इसके बारे मे निश्चित जानकारी नही मिलती। किसी-किसी ब्राह्मण जाति मे यह भेद है। कान्यकुब्ज ब्राह्मणो में विशेष सूक्ष्मता से यह विचार है। इनमें सैकड़ों वंशकर्ता-पुरुषो मे प्रत्येक के लिये वंशमर्यादा सूचक अंक निश्चित है जिसे विश्वा कहते है।[३९] उत्तम छः गोत्रों मे यह दो से लेकर बीस तक है। मध्यम दश गोत्रों में एक से लेकर दस एक है। विश्वा की मर्यादा से विवाह-संबंध करना ऐसा रिवाज रहा है। किसी-किसी के मत से यह सं० १२३६ में कन्नौज नरेश जयचंद के समय में निश्चित किये गये।

इसके बाद ५८ 'बैंक' गिनाये गये है। बैंक का अर्थ सामान्य रूप से गोत्र ही है, पर कवि ने आगे गोत्र शब्द का भिन्न अर्थ में प्रयोग किया है। ५८ बैंक वाला छंद अलग-अलग प्रतियो मे अलग-अलग है। सभी मे संख्या तो ५८ ही है पर कुछ बैंक नाम ऐसे है जो एक प्रति मे हैं, तो दूसरी मे नही हैं। क्रम मे भी कहीं-कहीं अंतर है। ऐसा प्रतीत होता है बाद मे प्रतिलिपिकारों ने यह पाया होगा कि मूल ग्रंथ मे कुछ ऐसे बैंक नाम है जो उन्हे ज्ञात नही है और कुछ बैंक नाम जो उन्हें ज्ञात है, ग्रंथ मे नहीं है। उनने इच्छानुसार छंद मे परिवर्तन कर लिया होगा। इस प्रकार उपलब्ध कुल बैंकों के नाम ७६-७७ तक हो जाते हैं। वर्तमान में ३३ बैंक ही शेष हैं।

इसके बाद कवि निजकुल का वर्णन करता है। कवि ने अपने बैंक चदोरिया में चार 'खेरे' बताये हैं-बड़, परधार, खाम औहै गेरूचौरा। आजकल किसी को 'खेरे' संबंधी ज्ञान नहीं है। चदोरियों के पूर्वज कभी चार ग्रामों मे निवास किया करते होंगे जिन के आधार पर उनके चार खेरे कहे जाने लगे।

आगे कहा गया है चतुर्थ काल के आदि में गोल्हन-शाह चदेरी स्थान मे रहते थे जो 'बड़' चदोरिया थे और जिनका 'गोत्र' प्रजापति था। ये बहुत पहिले हुये होंगे, जिससे कवि ने उन्हे चतुर्थ काल मे ही मान लिया। साहु गोल्हण इस प्रकार के नाम बारहवी शताब्दी के मूर्ति पूजा के आसपास लोकप्रिय थे। अहार के अठारहवीं शताब्दी के मूर्तिलेखो मे गल्हण, रल्हण, खेल्हण, गल्हण, देल्हण, कल्हण ऐसे नाम है।

इनके गोत्र को प्रजापति कहा गया है। स्पष्टतः गोत्र व बैंक शब्द भिन्न अर्थों मे प्रयुक्त है। यह दोहरी गोत्र व्यवस्था का प्रतीक है। कई जातियो मे दो प्रकार से गोत्र व्यवस्था है। एक तो सामान्य गोत्र, जिन पर विवाह आदि मे विचार करते है, दूसरे ब्राह्मणीय गोत्र जिनका विशेष महत्व नही होता। १३८२ ई० के लेख

---

३७. अनेकांत. अक्टूबर १६७२, पृ० १६४।

३८. हि० वि० भा० ८ पृ० ४३६।

३९. कान्यकुब्ज वंशावली, नारायण प्रसाद मिश्र, १६५६ ई०।

दर्शन और लोकजीवन

पुखराज जैन

दर्शन के दो पहलू रहे है, 'जीवन के प्रति प्रतिबद्ध-दृष्टि' से समाज संगठन और व्यवहार के आदर्शों के बारे में सोचना तथा किसी एक जीवन और समाज से परे शाश्वत मूल्यों और सत्य के बारे मे सोचना। जिन दर्शनो में इन दोनों पहलुओं मे तालमेल रहा है वे लोक-अभिमुख रहे है और फैले बढे है। जिनमे ऐसा तालमेल अधिक दिन बैठ नही सका वे अवरुद्ध हो गये सड गये।

दर्शन सिर्फ बोध नही होता। वह मानव की खोजने और रचने की शक्ति और इच्छा का परिणाम है। अपने जीवन, अपने आसपास के समाज, अपनी और प्रकृति के बीज के सौन्दर्यानुभव को लेकर जिज्ञासा और कल्पना मिश्रित उडानें और तर्क दृष्टि लगातार नई नई दार्शनिक परिकल्पनाये, स्वप्न तथा आदर्श रचते है। जीवन की वास्तविकताओ के बीच ये परिकल्पनाये जब अधूरी सिद्ध होने लगती है तो सृजनशील मस्तिष्क फिर से कोशिश करता है। इतिहास के माध्यम से ये स्वप्न और आदश हमारे शरीर मे घुलते जाते है, हमारी प्रवृत्ति का अग बनते जाते है। प्रकृति और समाज के द्वारा फेकी गयी चुनौतियो और कठिनाइयो को इसी के बल पर हम स्वीकार करते है, हल करते है। एक जीवित समाज अपनी भीतरी शक्ति को पूरी सचेतता के साथ बढाता है, पुनर्गठित करता है। यह सचेतता उस लोच मे निहित होता है जो समाज आदर्शो और वास्तविकताओ को एक दूसरे से कहने नही देती बल्कि दोनो को एक दूसरे के अनुकूल बनाती चलती है।

दर्शन की शास्त्रीय व्याख्या मे उसी हद तक महत्व-पूर्ण होती है जिस हद तक वे सामान्यजन को बेहतर जीवन जीने के लिए प्रेरित करती है, बल देती है। कोई भी अच्छा दशन असंख्य किस्से कहानियों के रूप मे फैलता है। लोकमत इन कहानियो और इनके पात्रो को अपनी रुचि, अच्छाई बुराई को अपनी समझ और भावुकता के द्वारा नये अर्थ देता है। साथ ही वह इनसे अपने को बनाता और बदलता भी है। इन कहानियो, मिथों से खुद संवारने और अपनी अनुभूति, कोमलता तथा कल्पना-शीलता से इन्हे संवारने का क्रम एक साथ और लगातार चलता है। यही सांस्कृतिक जिदगी है।

भारतीय दर्शन के विभिन्न मतो मे अक्सर एक सार-भूत एकता दिखाई देती है। जीवन जीने के स्तर पर

में कश्यप गोत्र के खन्डेलवाल महाजनो का उल्लेख है[४०]। यह चौरासी गोत्रों से भिन्न है। राजपूतों मे ब्राह्मणीय गोत्रों की अपेक्षा 'कुल' टालना महत्व-पूर्ण मानते है। कई जातियों का ब्राह्मणीय गोत्र सपूर्ण जाति मे एक ही है जैसे ओझा लुहार व कलवार सभी कश्यप गोत्रीय है[४१]। वर्तमान मे गोलापूर्वो मे प्रजापति आदि नामवाली गोत्र व्यवस्था पूर्ण रूप से विस्मृत हो चुकी है।

गोल्हण साहु आदि पूर्वजो के चदेरी मे रहने से ही चंदोरिया बैंक हुआ होगा।

गोल्हन साहु के उल्लेख के बाद कवि विस्तार-भय से बीच का वर्णन छोड देता है। फिर भीषम साहु के बारे मे लिखा है जो ओरछा स्टेट मे भेलसी ग्राम मे रहते थे। इनने १६५१ स० मे गजरथ चलवाकर सिंघई पद पाया। कालांतर मे उनके वशज खटोला ग्राम मे बसे मलहरा के पास जा बसे जहा भीषम साहु के छ पीढियो बाद हुए नवलसाह ने स० १८२५ मे वर्धमान पुराण की रचना की।

जाति सबंधी विशिष्ट परिचय के लिये अनेकांत जून १९६९ मे 'जैन समाज की कुछ उपजातियां दृष्टव्य हैं।

★

४०. K.C. Jain, p 386.

४१. Hutton, p. 55.

प्राणी मात्र के प्रति एक जैसी उदात्तता, व्यवहार के सूक्ष्म से सूक्ष्म स्तरों पर किसी प्राणी को तकलीफ न देने का आग्रह तथा भौतिक सम्पति के प्रति एक सीमा के बाद निर्लिप्तता विभिन्न सिद्धान्तो मे मिलेगी। यही कारण है कि ममता और अहिसा जैसे शब्दो को जितने एक साथ गहरे और विविधता भरे अर्थ भारतीय दर्शन के इतिहास मे मिले है उतने दुनिया के किसी और भाग या युग मे नही मिले।

ममता और अहिसा के अर्थ किसी भी समाज के विवेक के स्तर को बताने के लिए काफी है। भारतीय दर्शन मे जिस तरह ममता के आर्थिक, सामाजिक और आध्यात्मिक पहलुओं पर विचार हुआ तथा अहिसा के सूक्ष्म अर्थो को समझा, बढाया गया वह दर्शन की लोक जीवन के प्रति गहरी आस्था को प्रकट करता है।

सत्य अपने आप मे कोई निरपेक्ष तत्त्व नहीं है बल्कि यह देखने के कोण मे निहित है। रूढ सैद्धान्तिक व्याख्या हमे सम्यक ज्ञान से दूर करती है उसके नजदीक नही ले जाती। दुनिया के इतिहास मे धर्म और दर्शन तब बिगडे है जब उन्होंने दृष्टि की इस वैज्ञानिकता को छोड दिया है। जैन मीमासा ने इस बात को स्याद्वाद् के रूप मे हमारे सामने रखा।

सत्य अपने विभिन्न पहलुओं मे निहित है। उसकी खोज के समय पूर्वाग्रहों को छोडकर सम्यक् दृष्टि अपनानी चाहिए। जैन आचार्यो ने जीवन के बहुमुखी स्वरूप की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए कहा था कि सब कुछ जानने का अर्थ है असीमित जानना। तब ज्ञान की कोई सीमा नही रहती। और यह सर्वज्ञता साधारण तौर पर सम्भव नही है। एक कडे नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक अनुशासन से ही यह सर्वज्ञता प्राप्त हो सकती है। लेकिन यह कडा अनुशासन समाज का निषेध नही होना चाहिए। अक्सर अनुशासन के प्रयत्न एकागी हो जाते है। जब अनुशासन कुछ रूढ नियमों मे बधकर चलने का पर्याय हो जाता है तो यह व्यक्तित्व के विकास की बजाय व्यक्तित्व के अवरोध के अवसर ही पैदा करता है। किसी भी नियम या जीवन पद्धति को व्यक्ति के नैसर्गिक गुणों को, प्रेम और करुणा को अपरिमित बढाना चाहिए। अगर इसके विपरीत वह इन्हे घटाता है तो उस पद्धति के खोट की जाँच होनी चाहिए। जैन आचार्य इस बारे मे बहुत सचेष्ट और आग्रहशील थे।

साधारण व्यक्ति के विकास के लिए जैन आचार्यों ने सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्र की बात की थी। साधारण इच्छाओं से ऊपर उठकर बेहतर व्यक्ति बनने की इच्छा, बेहतर समाज की ओर ले जाती है। व्यक्ति और समाज के बीच एक साथ उठाने का यह रिश्ता टूटना नहीं चाहिए। न कोई व्यक्ति समाज के खराब रहते हुए बहुत ऊपर उठ सकता है, न कोई समाज व्यक्तियो के नैतिक, आध्यात्मिक उत्थान के बिना ऊपर उठ सकता है।

आवश्यक सूचना

अनेकान्त शोध पत्रिका आपके पास नियमित रूप से पहुँच रही है। आशा है आपको इसकी सामग्री रोचक एवं उपयोगी लगती होगी। यदि इसकी विषय सामग्री के स्तर तथा उपयोग को ऊँचा उठाने के लिए आप अपना सुझाव भेजे तो हम उसका सहर्ष स्वागत करेंगे।

जिन ग्राहको का हमें पिछला वार्षिक चन्दा प्राप्त नहीं हुआ है, उन्हें भी हम यह अंक भेज रहे है आशा है इस अक को प्राप्त करते ही चन्दा भेज कर हमे सहयोग प्रदान करेंगे।

--सम्पादक

दर्शन और लोकजीवन

पुखराज जैन

दर्शन के दो पहलू रहे है, 'जीवन के प्रति प्रतिबद्ध-दृष्टि' से समाज संगठन और व्यवहार के आदर्शों के बारे में सोचना तथा किसी एक जीवन और समाज से परे शाश्वत मूल्यों और सत्य के बारे में सोचना । जिन दर्शनों में इन दोनों पहलुओं मे तालमेल रहा है वे लोक-अभिमुख रहे हैं और फैले बढे है । जिनमे ऐसा तालमेल अधिक दिन बैठ नहीं सका वे अवरुद्ध हो गये सड़ गये ।

दर्शन सिर्फ बोध नही होता । वह मानव की खोजने और रचने की शक्ति और इच्छा का परिणाम है । अपने जीवन, अपने आसपास के समाज, अपनी और प्रकृति के बीज के सौन्दर्यानुभव को लेकर जिज्ञासा और कल्पना मिश्रित उड़ानें और तर्क दृष्टि लगातार नई नई दार्शनिक परिकल्पनायें, स्वप्न तथा आदर्श रचते है । जीवन की वास्तविकताओ के बीच ये परिकल्पनायें जब अधूरी सिद्ध होने लगती है तो सृजनशील मस्तिष्क फिर से कोशिश करता है । इतिहास के माध्यम से ये स्वप्न और आदश हमारे शरीर मे घुलते जाते है, हमारी प्रवृत्ति का अग बनते जाते है । प्रकृति और समाज के द्वारा फेंकी गयी चुनौतियो और कठिनाइयों को इसी के बल पर हम स्वीकार करते है, हल करते है । एक जीवित समाज अपनी भीतरी शक्ति को पूरी सचेतता के साथ बढाता है, पुनर्गठित करता है । यह सचेतता उस लोच मे निहित होता है जो समाज आदर्शो और वास्तविकताओ को एक दूसरे से कहने नही देती बल्कि दोनो को एक दूसरे के अनुकूल बनाती चलती है ।

दर्शन की शास्त्रीय व्याख्या मे उसी हद तक महत्व-पूर्ण होती हैं जिस हद तक वे सामान्यजन को बेहतर जीवन जीने के लिए प्रेरित करती हैं, बल देती है । कोई भी अच्छा दर्शन असंख्य किस्से कहानियो के रूप मे फैलता है । लोकमत इन कहानियो और इनके पात्रो को अपनी रुचि, अच्छाई बुराई को अपनी समझ और भावु-कता के द्वारा नये अर्थ देता है । साथ ही वह इनसे अपने को बनाता और बदलता भी है । इन कहानियो, मिथों से खुद सँवारने और अपनी अनुभूति, कोमलता तथा कल्पना-शीलता से इन्हे संवारने का क्रम एक साथ और लगातार चलता है । यही सास्कृतिक जिदगी है ।

भारतीय दर्शन के विभिन्न मतों मे अक्सर एक सार-भूत एकता दिखाई देती है । जीवन जीने के स्तर पर

में कश्यप गोत्र के खन्डेलवाल महाजनो का उल्लेख है[४०]। यह चौरासी गोत्रो से भिन्न है । राजपूतों मे ब्राह्मणीय गोत्रों की अपेक्षा 'कुल' टालना महत्व-पूर्ण मानते है । कई जातियों का ब्राह्मणीय गोत्र संपूर्ण जाति मे एक ही है जैसे ओझा लुहार व कलवार सभी कश्यप गोत्रीय है[४१] । वर्तमान में गोलापूर्वो मे प्रजापति आदि नामवाली गोत्र व्यवस्था पूर्ण रूप से विस्मृत हो चुकी है ।

गोल्हण साहु आदि पूर्वजों के चंदेरी मे रहने से ही चंदोरिया बैंक हुआ होगा ।

गोल्हन साहु के उल्लेख के बाद कवि विस्तार-भय मे बीच का वर्णन छोड देता है । फिर भीषम साहु के बारे में लिखा है जो ओरछा स्टेट मे भेलसी ग्राम में रहते थे । इनने १६५१ सं० में गजरथ चलवाकर सिवई पद पाया । कालातर मे उनके वशज खटोला ग्राम मे बसे मलहरा के पास जा बसे जहा भीषम साहु के छ. पीडियो बाद हुए नवलसाह ने सं० १८२५ मे वर्धमान पुराण की रचना की ।

जाति सबंबी विशिष्ट परिचय के लिये अनेकांत जून १९६९ में 'जैन समाज की कुछ उपजातियाँ दृष्टव्य है ।

★

४० K.C. Jain, p. 386.

४१ Hutton, p. 55.

प्राणी मात्र के प्रति एक जैसी उदात्तता, व्यवहार के सूक्ष्म से सूक्ष्म स्तरों पर किसी प्राणी को तकलीफ न देने का आग्रह तथा भौतिक सम्पति के प्रति एक सीमा के बाद निर्लिप्तता विभिन्न सिद्धान्तों मे मिलेगी। यही कारण है कि समता और अहिंसा जैसे शब्दों को जितने एक साथ गहरे और विविधता भरे अर्थ भारतीय दर्शन के इतिहास मे मिले है उतने दुनिया के किसी और भाग या युग मे नही मिले।

समता और अहिंसा के अर्थ किसी भी समाज के विवेक के स्तर को बताने के लिए काफी है। भारतीय दर्शन मे जिस तरह समता के आर्थिक, सामाजिक और आध्यात्मिक पहलुओं पर विचार हुआ तथा अहिंसा के सूक्ष्म अर्थों को समझा, बढाया गया वह दर्शन की लोक जीवन के प्रति गहरी आस्था को प्रकट करता है।

सत्य अपने आप मे कोई निरपेक्ष तत्त्व नही है बल्कि यह देखने के कोण में निहित है। रूढ सैद्धान्तिक व्याख्या हमे सम्यक् ज्ञान से दूर करती है उसके नजदीक नही ले जाती। दुनिया के इतिहास मे धर्म और दर्शन तब बिगडे है जब उन्होने दृष्टि की इस वैज्ञानिकता को छोड दिया है। जैन मीमासा ने इस बात को स्याद्वाद् के रूप मे हमारे सामने रखा।

सत्य अपने विभिन्न पहलुओं मे निहित है। उसकी खोज के समय पूर्वाग्रहों को छोडकर सम्यक् दृष्टि अपनानी चाहिए। जैन आचार्यों ने जीवन के बहुमुखी स्वरूप की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए कहा था कि सब कुछ जानने का अर्थ है असीमित जानना। तब ज्ञान की कोई सीमा नही रहती। और यह सर्वज्ञता साधारण तौर पर सम्भव नही है। एक कडे नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक अनुशासन से ही यह सर्वज्ञता प्राप्त हो सकती है। लेकिन यह कडा अनुशासन समाज का निषेध नही होना चाहिए। अक्सर अनुशासन के प्रयत्न एकागी हो जाते है। जब अनुशासन कुछ रूढ नियमों मे बधकर चलने का पर्याय हो जाता है तो यह व्यक्तित्व के विकास की बजाय व्यक्तित्व के अवरोध के अवसर ही पैदा करता है। किसी भी नियम या जीवन पद्धति को व्यक्ति के नैसर्गिक सुखों को, प्रेम और करुणा को अपरिमित बढाना चाहिए। अगर इसके विपरीत वह इन्हे घटाता है तो उस पद्धति के खोट की जाँच होनी चाहिए। जैन आचार्य इस बारे मे बहुत सचेष्ट और आग्रहशील थे।

साधारण व्यक्ति के विकास के लिए जैन आचार्यों ने सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्र की बात की थी। साधारण इच्छाओं से ऊपर उठकर बेहतर व्यक्ति बनने की इच्छा, बेहतर समाज की ओर ले जाती है। व्यक्ति और समाज के बीच एक साथ उठाने का यह रिश्ता टूटना नही चाहिए। न कोई व्यक्ति समाज के खराब रहते हुए बहुत ऊपर उठ सकता है, न कोई समाज व्यक्तियों के नैतिक, आध्यात्मिक उत्थान के बिना ऊपर उठ सकता है।

आवश्यक सूचना

अनेकान्त शोध पत्रिका आपके पास नियमित रूप से पहुँच रही है। आशा है आपको इसकी सामग्री रोचक एवं उपयोगी लगती होगी। यदि इसकी विषय सामग्री के स्तर तथा उपयोग को ऊँचा उठाने के लिए आप अपना सुझाव भेजें तो हम उसका सहर्ष स्वागत करेंगे।

जिन ग्राहकों का हमें पिछला वार्षिक चन्दा प्राप्त नहीं हुआ है, उन्हें भी हम यह अंक भेज रहे है आशा है इस अंक को प्राप्त करते ही चन्दा भेज कर हमें सहयोग प्रदान करेंगे।

—सम्पादक

R. N. 10591/62

वीर-सेवा-मन्दिर के उपयोगी प्रकाशन

पुरातन जैनवाक्य-सूची : प्राकृत के प्राचीन ४६ मूल-ग्रन्थों की पद्यानुक्रमणी, जिसके साथ ४८ टीकादि ग्रन्थों मे उद्धृत दूसरे पद्यों की भी अनुक्रमणी लगी हुई है। सब मिलाकर २५३५३ पद्य-वाक्यों की सूची। संपादक मुख्तार श्री जुगलकिशोर जी की गवेषणापूर्ण महत्त्व की ७० पृष्ठ की प्रस्तावना से अलकृत, डा० कालीदास नाग, एम. ए., डी. लिट् के प्राक्कथन (Foreword) और डा० ए. एन. उपाध्ये एम. ए., डी. लिट्. की भूमिका (Introduction) से भूषित है। शोध-खोज के विद्वानों के लिए अतीव उपयोगी, बड़ा साइज, सजिल्द। १५-००

आप्तपरीक्षा : श्री विद्यानन्दाचार्य की स्वोपज्ञ सटीक अपूर्व कृति, आप्तों की परीक्षा द्वारा ईश्वर-विषयक सुन्दर विवेचन को लिए हुए, न्यायाचार्य पं दरबारीलालजी के हिन्दी अनुवाद से युक्त, सजिल्द। ८-००

स्वयम्भूस्तोत्र : समन्तभद्रभारती का अपूर्व ग्रन्थ, मुख्तार श्री जुगलकिशोरजी के हिन्दी अनुवाद, तथा महत्त्व की गवेषणापूर्ण प्रस्तावना से सुशोभित। २-००

स्तुतिविद्या : स्वामी समन्तभद्र की अनोखी कृति, पापों के जीतने की कला, सटीक, सानुवाद और श्री जुगलकिशोर मुख्तार की महत्त्व की प्रस्तावनादि से अलंकृत सुन्दर जिल्द-सहित। १-५०

अध्यात्मकमलमार्तण्ड : पचाध्यायीकार कवि राजमल की सुन्दर आध्यात्मिक रचना, हिन्दी-अनुवाद-सहित १-५०

युक्त्यनुशासन : तत्त्वज्ञान से परिपूर्ण, समन्तभद्र की असाधारण कृति, जिसका अभी तक हिन्दी अनुवाद नहीं हुआ था। मुख्तारश्री के हिन्दी अनुवाद और प्रस्तावनादि से अलकृत, सजिल्द। ... १.२५

समीचीन धर्मशास्त्र : स्वामी समन्तभद्र का गृहस्थाचार-विषयक अत्युत्तम प्राचीन ग्रन्थ, मुख्तार श्रीजुगलकिशोर जी के विवेचनात्मक हिन्दी भाष्य और गवेषणात्मक प्रस्तावना से युक्त, सजिल्द। ... ३-००

जैनग्रन्थ-प्रशस्ति संग्रह भा० १ : संस्कृत और प्राकृत के १७१ अप्रकाशित ग्रन्थों की प्रशस्तियों का मंगलाचरण सहित अपूर्व संग्रह, उपयोगी ११ परिशिष्टों और प० परमानन्द शास्त्री की इतिहास-विषयक साहित्य परिचयात्मक प्रस्तावना से अलंकृत, सजिल्द। ४-००

समाधितन्त्र और इष्टोपदेश : अध्यात्मकृति परमानन्द शास्त्री की हिन्दी टीका सहित ४-००

श्रवणबेलगोल और दक्षिण के अन्य जैन तीर्थ। १-२५

अध्यात्मरहस्य : पं० आशाधर की सुन्दर कृति, मुख्तार जी के हिन्दी अनुवाद सहित। ... १-००

जैनग्रन्थ-प्रशस्ति संग्रह भा० २ : अपभ्रंश के १२२ अप्रकाशित ग्रन्थों की प्रशस्तियों का महत्त्वपूर्ण संग्रह। पचपन ग्रन्थकारों के ऐतिहासिक ग्रंथ-परिचय और परिशिष्टों सहित। सं. पं० परमानन्द शास्त्री। सजिल्द। १२-००

न्याय-दीपिका : आ. अभिनव धर्मभूषण की कृति का प्रो० डा० दरबारीलालजी न्यायाचार्य द्वारा स० अनु०। ७-००

जैन साहित्य और इतिहास पर विशद प्रकाश : पृष्ठ संख्या ७४० सजिल्द ५-००

कसायपाहुडसुत्त : मूल ग्रन्थ की रचना आज से दो हजार वर्ष पूर्व श्री गुणधराचार्य ने की, जिस पर श्री यतिवृषभाचार्य ने पन्द्रह सौ वर्ष पूर्व छह हजार श्लोक प्रमाण चूर्णिसूत्र लिखे। सम्पादक प हीरालालजी सिद्धान्त शास्त्री, उपयोगी परिशिष्टों और हिन्दी अनुवाद के साथ बड़े साइज के १००० से भी अधिक पृष्ठों में। पुष्ट कागज और कपड़े की पक्की जिल्द। २०-००

Reality : आ० पूज्यपाद की सर्वार्थसिद्धि का अंग्रेजी में अनुवाद बड़े आकार के ३०० पृ. पक्की जिल्द ६-००

जैन निबन्ध-रत्नावली : श्री मिलापचन्द्र तथा रतनलाल कटारिया ५-००

प्रकाशक—वीरसेवा मन्दिर के लिए, रूपवाणी प्रिंटिंग हाउस, दरियागंज, दिल्ली से मुद्रित।